'कौल-कल्पतरु'
चण्डी
६२ वाँ वर्ष

पूज्य शुक्ल जी की ११६वीं जयन्ती के पावन अवसर पर विशेष प्रस्तुति :

धर्म-मार्ग पर

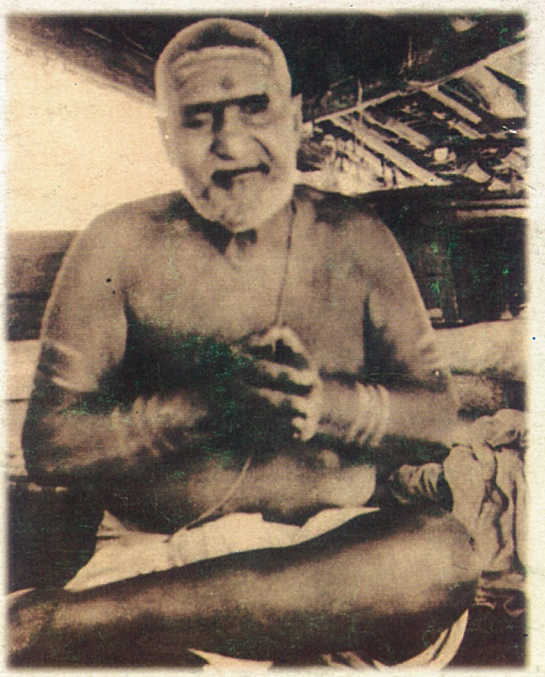

पूज्य शुक्ल जी

(आविर्भाव : वैशाख कृष्ण ३, १९४५ वि० । तिरोभाव : ज्येष्ठ कृष्ण ११, २०२८ वि०)

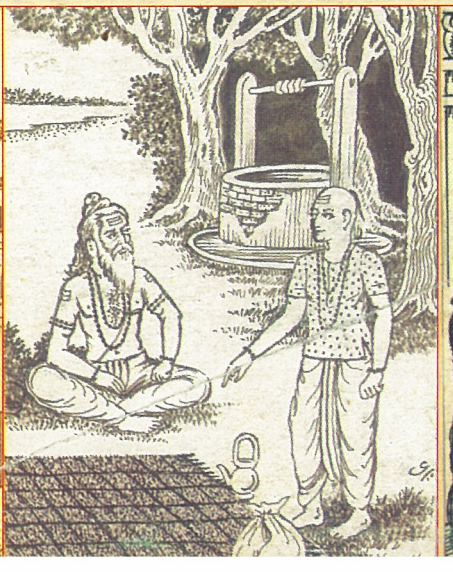

'चण्डी' के प्रवर्त्तक पं० देवीदत्त शुक्ल जी का सन्देश :

साधना-प्रधान देश का विलक्षण अधः-पतन!

'सिद्धि' की चाह में 'सत्य-मार्ग' का त्याग!!

पूर्वजों की राह पर चलें!

हिन्दू-जाति साधकों की जाति रही है। साधकों के देश में आज भ्रान्ति का बाजार धूम-धाम से लगा हुआ है। फलतः 'श्रद्धा' – यहाँ तक कि 'आस्तिकता' का भी बुरी तरह पद-दलन किया जा रहा है! इस दुरवस्था का मूल कारण यही है कि आज हम सचमुच 'साधक' नहीं रहे। हममें 'साधना' के रहस्य का ज्ञान नहीं रहा। हम केवल भ्रान्त विचारों के अनुयायी मात्र हो रहे हैं। हममें न 'आस्तिक' बुद्धि रह गई है और न अपने शास्त्रों पर 'श्रद्धा'! साधना-प्रधान पुण्य-मय देश के निवासियों का यह विलक्षण अधः-पतन है!

बहु-प्रचारित साधकों में दम्भ के सिवा और कुछ नहीं है। न तपस्या है, न 'तन्त्र'-ग्रन्थों का सम्यक् ज्ञान ही है! बस, आडम्बर-मात्र ही उनके पास है। ऐसे बहु-प्रचारितों की बातें सुनकर साधारण जन समझते हैं कि तान्त्रिक दीक्षा ली नहीं कि बात-की-बात में 'सिद्ध' हुए! जब कि बात इसके सर्वथा विपरीत है। 'तान्त्रिक साधना' करने में सारा जीवन भी व्यतीत हो जाता है और 'सिद्धि' नहीं मिलती।

'सिद्धि' साधारण बात नहीं है। यह एक महान् दुर्लभ फलार्थ है। शास्त्र में बताई हुई विधि के अनुसार वर्षों परिश्रम करने पर 'सिद्धि' मिलती है। आज के मानव में यदि इतना धैर्य भी हो, तो इतनी सुविधा कहाँ? बाल-बच्चों, सुख-भोग का मोह प्रति-क्षण उसे चिन्ता-ग्रस्त किए रहता है। 'सत्य' यही है, पर इस 'सत्य' की कौन कदर करे? जहाँ 'सत्य' नहीं, वहाँ 'सिद्धि' कहाँ? परन्तु 'सिद्धि' की चाह सबको है। सभी उसी के फेर में हैं। कौन शास्त्र के विधि-विधानों के चक्कर में पड़े और सो भी उस दशा में, जब उसे अपने आस-पास अनायास ही 'सिद्धि' दिलानेवाले महात्मा पुरुष घूमते दिखाई दे रहे हों !!

'सिद्धि' की चाह में आज हिन्दू-समाज मानव को ही ईश्वर मानने को तैयार है! तैयार ही नहीं—ये दुर्बल-चित्त सर्वत्र मानव को ईश्वर मानकर उनकी पूजा-सेवा में इसलिए निरत दिखाई दे रहे हैं कि वह उन्हें सिद्ध बना दे—न सिद्ध बना दे, तो कम-से-कम उन्हें आधि-व्याधियों से मुक्त रखे! जब लोग इतने निरीह और हीन-बुद्धि हो गए हैं, तब उनका शोषण तो होगा ही। इसमें दोष उन्हीं का है, जिन्होंने 'सत्य-मार्ग' का त्याग किया है अथवा जिन्होंने ईश्वर को भुला दिया है और उपेक्षा कर दी है-अपने उन शास्त्रों की, जो युगों से इस पुण्य-भूमि के निवासियों के पथ-प्रदर्शक रहे हैं।

अतएव भ्रान्तों को सावधान होकर अपनी भूल को समझना चाहिए। यदि वे अपना कल्याण चाहते हों, तो शीघ्र ही उन्हें अपने पूर्वजों की राह पर आ जाना चाहिए। अभी समय है। अभी बहुत नहीं बिगड़ा है। उनके शास्त्र, उनका धर्म आज भी विद्यमान है। वह उन्हें बुला रहा है।

चैत्र—नवरात्र, संवत् २०१० वि०—१७ मार्च, १९५३ ई०

—देवीदत्त शुक्ल

धर्म-मार्ग पर

(अनूठा धार्मिक उपन्यास)

लेखक

'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६

नवीन संस्करण : गुरु-पूर्णिमा, 'दुर्मुख' २०६० वि० (१३ जुलाई, २००३)

अनुक्रमणिका

	पूज्यवर सुकुल जी	तीन
१.	गृह-त्याग	१
२.	बाबा जी का उपदेश	३
३.	बाबा जी से बिछोह	७
४.	मौसा-मौसी का मोह	१३
५.	स्वामी जी के दर्शन	१४
६.	तीर्थ-राज की ओर	१८
७.	तीर्थ-राज प्रयाग में	२३
८.	विन्ध्य-गिरि की यात्रा	२८
९.	श्रीभवानी पाठ-शाला	३५
१०.	गुरुदेव का आदेश	३९
११.	पुनः गृह की ओर	४३
१२.	शशिनाथ का चमत्कार	४६
१३.	त्रिवेदी जी का सत्सङ्ग	५०
१४	धर्म-कार्य का श्रीगणेश	५३
१५.	पुनः प्रयाग की ओर	५९
१६.	प्रयाग का सत्सङ्ग	६१
१७.	शशिनाथ का विवाह	७२
१८.	अनूठी चिकित्सा का प्रभाव	८०
१९.	बाबा जी का सत्सङ्ग	८७
२०.	सेठानी जी का स्नेह	९३
२१.	शशिनाथ की उदार भावना	९६
२२.	सेठ जी का प्रस्ताव	१००
२३.	शशिनाथ की कमाई	१०९
२४.	चण्डिका जी में 'शत-चण्डी'	१११
२५.	गुरु-पूर्णिमा	११७
२६.	स्वामी जी का आमन्त्रण	११८
२७.	अन्तिम आदेश	११९

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन, प्रयाग-६

मूल्य ४५-००

पूज्यवर सुकुल जी

★**'कौल-शिरोमणि' पं० श्रीकालीचरण पन्त जी**

स्मृति-पटल के पूर्व-पूर्व पृष्ठों का बिना सिंहावलोकन किए ही सुखद, नित्य हरी-भरी-सी नितान्त अद्भुत घटनाएँ प्रतिबिम्बित होती जा रही हैं।

सर्व-प्रथम १९२५ ई० में जुलाई मास में **'प्रयाग विश्व-विद्यालय'** में प्रविष्ट होने के लिए **'प्रयाग'** के लिए चला और यह पहला ही अवसर था, जब **'नगाधिराज हिमालय'** के शीतल-तम अङ्क को छोड़कर **'प्रयाग'** जैसे उष्ण स्थान में जाना पड़ा हो। प्रस्थान करने के अनन्तर मार्ग ही में यह निर्णय हो गया कि **'प्रयाग'** पहुँचने के दूसरे ही दिन कल-कल-नादिनी जाह्नवी की **'त्रिवेणी'** में स्नान किया जाए।

बड़े प्रात:-काल ही **'त्रिवेणी'** में जाकर मज्जन-क्रिया की। स्नानानन्तर लौटते समय **अलोपीबाग** के समीप **रेल के पुल** के नीचे सहसा **'समयाचार का वन्दन-श्लोक'** उच्च स्वर से कहा हुआ कर्ण-गोचर हुआ और **'जय बाले !'** ध्वनि कर्ण में गुञ्जारित हो गई। दृष्टि उस ओर गई और देखा कि सामने से आती हुई सुवासिनी को हाथ जोड़े हुए आनन्दातिरेक-दशा में एक भव्य मूर्ति ने ये शब्द उच्चारित किए थे– **भाल में विशाल रक्त इंगूर की बिन्दी, कन्धे पर लाल गमछा, धोती, पानों से भरा हुआ मुँह तथा प्रकृत मुस्कान से उज्ज्वल और रक्तिम स्मित मुख-मण्डल !**

बड़ी ही आह्लाद-मयी मूर्ति वह थी। प्रतीत होता था, मानो कैलाश-स्थित **देवाधि-देव महादेव** का प्रिय (अनुचर) पार्षद-सा हो! मन में बड़ी इच्छा हुई कि इन महात्मा का परिचय ज्ञात किया जाय, पर साथ के छात्रों का पशु-सङ्कट था। एतदर्थ मानसिक नमस्कार-पूर्वक अपने-अपने स्थान को चले गए और मन ने परितोष कर दिया कि इस **तीर्थ-राज** में अनेक शाम्भव विहरते होंगे–**''बहु-रत्ना वसुन्धरा''** और कभी तो उनके दर्शन-लाभ होंगे ही।

दूसरे ही दिन मुझे **कवि-वर डाक्टर सुमित्रानन्दन पन्त जी** के आवास में उनके दर्शनों के लिए जाना था। वहाँ पहुँचने पर देखा कि वे कहीं जाने की जल्दी में हैं। उन्होंने स्वत: ही कहा कि ''चलो, **'इण्डियन प्रेस'** दिखा लाएँ।''

उनकी सुखद सङ्गति का लोभ सम्वरण न कर सका और उनके साथ हो लिया। वहाँ सम्पादक के कमरे में जाने पर आश्चर्य-चकित हो गया कि पूर्वोक्त **'भव्य-मूर्ति'** स्वयं **सम्पादक जी** ही थे!

डाक्टर पन्त साहब ने परिचय दिया कि 'ये **पण्डित श्री देवीदत्त जी शुक्ल** हैं।'

थोड़ी देर के लिए भाई साहब **श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी** प्रेस के अन्यान्य कमरों में चले गए और **सम्पादक जी** के कमरे में मेरे अतिरिक्त कोई न रहा। मैंने धृष्टता से पूछा कि ''आप **'शाक्त'** हैं?''

पान चबाते, मधुर अट्टहास करते **श्रीशुक्ल जी** ने पूछा कि 'आपने कैसे पूछा कि मैं **शाक्त** हूँ?'

तब मैंने कल की घटना, जिससे मैं आकृष्ट हुआ था, सुनाई, तो उन्होंने कहा कि 'इसमें क्या विशेष बात थी?'

मैंने उनसे निवेदन किया कि ''और तो नवीनता कुछ नहीं थी, केवल **'समयाचार'** का **'त्रिपुरा-वन्दन'** पशु के लिए ज्ञातव्य नहीं है। अत: मैंने विचारा कि आप **'शाक्त'** हैं।''

पूज्यवर पण्डित जी ने मधुर हास-पूर्वक बताया कि वे निश्चय ही **'घोर शाक्त'** हैं। तब मैंने उनके आवास का पता लिख लिया। इतने में ही कमरा अन्य व्यक्तियों से भर गया और कोई बात न हो सकी।

हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में **श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी** को सभी जानते होंगे। उन्हीं के अथक परिश्रम से हिन्दी सर्वाङ्ग परिमार्जित रूप से निखर सकी और उनके द्वारा स्वयं चुने हुए उत्तराधिकारी **पं० देवीदत्त जी शुक्ल** ने उसको सर्व-शृङ्गारों से आभूषित कर राष्ट्र-भाषा के सिंहासन पर आसीन कराने का सौभाग्य प्राप्त किया। अपने घोर परिश्रम से उन्होंने अनेक लेखकों तथा कवियों को प्रोत्साहित कर तथा अपने प्रेस के अध्यक्ष की रुचि के अनुकूल सरल-से-सरल-तम शब्दों में गहरी-से-गहरी विचार-धारा व्यक्त करने का नवीन-तम उदाहरण जनता के समक्ष प्रस्तुत किया।

प्रयाग पहुँचने के चौथे दिन छुट्टी के कारण कालेज बन्द था, सन्ध्या समय **सुकुल जी** के आवास को ढूँढ़ने गया। **'कटरा'**-स्थित वह आवास ढूँढ़ने पर बड़ी सरलता-पूर्वक मिल गया। वहाँ पहुँचने पर देखा कि **पूज्यवर सुकुल जी** अपने आवास-स्थान में अपने उसी पूर्व रूप में काष्ठ के तख्त पर आसीन **''विजया-शोधन''** में लगे हैं। उन्होंने **'ध्यान-वन्दन'**-पूर्वक **'सम्विदा'**-ग्रहण की और स-हास्य मधुर शब्दों में मेरा पूरा-पूरा परिचय पूछा और मेरा नाम सुनते ही सारा स्थान उनके अट्टहास से गूँज उठा।

उनके सौहार्द तथा आत्मीयता-प्रदर्शन से हृदय गद्‌गद हो गया। उन्होंने पर्वतीय प्रान्त में **'शाक्त-धर्म'** की स्थिति के विषय में कई प्रश्न किए। वास्तव में उस समय कूर्माञ्चल तथा गढ़वाल में अतिशय उच्च कोटि के शाक्तों की प्रचुरता थी और भाग्य-वश मैं भी इनमें से अधिकांश साधकों के सम्पर्क में आया हुआ था। मैंने उन्हें विस्तार-पूर्वक स्थिति समझाई और वे परम प्रसन्न हुए।

मैंने देखा कि सरल वार्त्तालाप में भी वे अनेक सङ्केतों द्वारा मेरी परीक्षा भी करते जा रहे थे। थोड़ी देर में उनके **'सन्ध्योपासन'** का समय निकट-सा प्रतीत हुआ। अत: मैं भी किसी दूसरे दिन आने की प्रार्थना करके लौटने लगा। उन्होंने मेरे छात्रावास का पता पूछा और जाने की आज्ञा दी। उनका सौजन्यता का व्यवहार तथा आत्मीयता-प्रदर्शन, मधुर हँसी आदि हर किसी को आजन्म वशीभूत करने के लिए पर्याप्त थी।

प्रयाग की गर्मी तथा सर्व-प्रथम **हिमालय** का विछोह मन को खल रहा था। यद्यपि छात्रावास में नए-नए छात्रों से परिचय होता जाता था और छात्रावास के कार्यक्रम रोचक-से हो रहे थे, फिर भी शान्ति और शीतल-शून्यता, जो **पर्वत-राज** की निराली विभूति है, उसका अभाव खटक-सा रहा था।

अचानक एक दिन प्रात:-काल ९ बजे **श्री सुकुल जी** कमरे में पधारे। उनको प्रणाम-आसनादि देकर चाय मँगवाई, जिसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया। केवल मात्र छोटा टुकड़ा मिष्टान्न तथा जल ही ग्रहण किया। उन्होंने रात्रि को आयोजित **'चक्रार्चन'** में भाग लेने का आमन्त्रण दिया। **'चक्र'** किन्हीं दूसरे सज्जन के घर था और उनकी ओर से प्रतिनिधि-स्वरूप श्री पूज्य पण्डित जी ने भाग लेने का अनुरोध किया। पूज्य पण्डित जी के आज्ञानुसार नियत समय पर मैं वहाँ पहुँच गया और सानन्द पूजन-अर्चन सम्पादित हुआ।

इसके अनन्तर तो पूज्यवर पण्डित जी इतने अधिक प्रसन्न हो गए कि **'प्रयाग'** के अनेक स्थानों में अनेक **'साधकों'** के यहाँ **'अर्चन'** में बुलवाने लगे। उनके द्वारा अनेकानेक विभिन्न स्थानों के **'साधकों'** के भी दर्शन हुए, जिनमें से पीलीभीत के **पण्डित दुर्गाशङ्कर शुक्ल** बहुत अधिक समय तक मेरे सम्पर्क में रहे। **स्वर्गीय सुकुल जी** का चरम ध्येय **'शाक्त-धर्म'** का विस्तार करना तथा उसकी रहस्य-मयी साधना को परिमार्जित रूप से सरल हिन्दी में रूपान्तरित करना था, जिससे सर्व-साधारण जनता उनको हृदयङ्गम कर सके तथा वे **'वेद'** की क्लिष्टता की तरह सर्व-त्याज्य न हो जाएँ। इसी कारण वे सभी मार्गानुयायियों को सभी प्रकार से उत्साहित कर **'साधना-मार्ग'** में अग्रसर कराते थे।

पूज्यवर पण्डित जी अपने को **'सुकुल'** कहते थे तथा उनका कथन था कि वे **'बाला'** कवि के, जिनको **'श्री बाला त्रिपुरा'** का साक्षात्कार होता था, वंशज हैं। उनके श्री-मुख की अर्धाली निम्न थी–

''बाला पिएँ प्याला; फिर भी बाला के बाला!''

जिन दिनों पूज्यवर पण्डित जी से मेरा साक्षात्कार हुआ, मैंने उनसे अत्यन्त अनुरोध किया कि अल्मोड़ा चलकर तत्कालीन **'शाक्त-साधकों'** का, विशेषकर अल्मोड़े के परम साधक भक्त-प्रवर पूज्य **राजा श्री आनन्दसिंह** का दर्शन करें, पर वे इतने कार्य-व्यस्त थे कि उन्हें यह समय कभी नहीं मिला। नहीं तो अवश्यम्भावी था कि वे अत्यन्त उल्लास से आपूरित होते।

पूज्य पण्डित जी में विचित्र क्षमता थी कि वे किसी भी मनुष्य का चरित्र-अङ्कन कुशलता-पूर्वक कर सकते थे और अक्षरश: उनका विचार सत्य होता था। कई बार उन्होंने **'साधकों'** के लिए भविष्य-वाणी की थी और वह अक्षरश: ठीक उतरी।

नितान्त सादा सरल जीवन; कार्य-भार से व्यस्त होने पर भी **पूज्यवर पण्डित जी** ने **'शाक्त-धर्म'** की जो सेवाएँ की हैं, वे अमूल्य हैं। यदि उक्त सेवाओं को चार भागों में विभाजित किया जाय, तो देखा जायगा कि उन्होंने कितने साहस-पूर्ण ठोस कार्य कर सुगुप्त **'शाक्त-धर्म'** को प्रकाश के क्षेत्र में रखा तथा अनेक योजनाएँ उसके प्रचार के लिए बनाईं, जो उनके द्वारा रचित सरस-सरल उपन्यास **''धर्म-मार्ग पर''**, **''साधक का सम्वाद''** आदि में सरल भाषा में गहरे **'शाक्त-तथ्यों'**-सहित प्रकाशित कर दी गई हैं। ये चार विभाग निम्न प्रकार हैं–

- सर्व-प्रथम खुले तौर पर **'शाक्त-धर्म'** के प्रति व्यक्तियों को आकर्षित कर लखनऊ में अपने **'श्री गुरु-स्थान'** में तथा अन्य जगहों में **'दीक्षित'** कराना;–
- दूसरा प्रकट रूप से लेख आदि द्वारा **'शाक्त-धर्म'** का समर्थन;–
- तीसरा **'शाक्त-धर्म'** के लिए व्यापक रूप से प्रचार-हेतु उक्त **''धर्म-मार्ग पर''** आदि उपन्यासों की रचना, जिनमें **'प्रचार-योजना'** आदि हैं; और–
- चौथा प्रगट (खुले) रूप से प्रयाग में **''शाक्त-सम्मेलन''** की स्थापना, उसकी मुख-पत्रिका **''चण्डी''** का प्रकाशन एवं नाना प्रकार के लेख एवं **'तन्त्र-माला'** आदि पुस्तक-मालाओं के सम्पादन द्वारा विस्तार-रूप से जनता में **'तन्त्र'** के आचार्यों तथा ग्रन्थों का सुलभीकरण। यह उन्हीं के प्रयत्न का फल था कि भारत के विभिन्न प्रान्तों के **'शाक्त-गण'** एक दूसरे को जान सके तथा परस्पर सम्पर्क में आ सके।

पूज्यवर पण्डित जी से प्राय: हर दूसरे-तीसरे साल सन् १९६९ तक मेरा समागम प्राय: होता रहा और उन्होंने कृपा-पूर्वक अपनी **'दीक्षा-शिक्षा-सम्बन्धी'** सभी बातें प्रकट रूप से समझाईं। दृढ़ नैष्ठिक **'पूर्णाभिषिक्त'** होते हुए भी **पूज्यवर पण्डित जी** को अभिमान छू तक नहीं गया था और वे किसी भी कक्षा के **'शाक्त'** का हृदय से स्वागत करते थे। उनके घर के द्वार हर **'शाक्त'** के लिए उन्मुक्त थे। कई बार उन्होंने अपने सुपुत्र को आदेश किया कि मेरे लिए उनका द्वार सदा-सर्वदा खुला रहे आदि-आदि।

पूज्यवर सुकुल जी की वेश-भूषा अत्यन्त साधारण प्रकार की थी। खद्दर के वस्त्र के लिए वे निरन्तर पक्ष-पाती रहे और स्वयं नित्य खद्दर ही धारण करते थे। अपने सभी लेखों, क्रिया-कलापों में वे कट्टर स्वातन्त्र्य-प्रेमी थे। **महा-मना मालवीय** आदि के सम्पर्क में रहे हुए थे।

'शाक्त-धर्म' की अपनी जिज्ञासा के कारण बँगला तथा गुजराती में छपे **'तन्त्रों'** का एवं आर्थर एवेलन सिरीज़ का, जो कलकत्ते के हाईकोर्ट के विख्यात जज **सर जान वुडरफ़** महोदय द्वारा सङ्कलित थी, **पूज्य सुकुल**

जी ने विवेचन-पूर्वक सूक्ष्म अध्ययन किया था। **दरभङ्गा के महाराज** और काशी के **'तन्त्र'** के धुरन्धर साधकों से प्राय: भली प्रकार परिचित थे। इस सम्बन्ध में उनकी निर्भीकता इतनी थी कि इण्डियन प्रेस के स्वामी स्वर्गीय **चिन्तामणि घोष** के, जो कट्टर चैतन्य सम्प्रदाय के **'वैष्णव'** थे, पूछने पर स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि **''हम कट्टर 'शाक्त' हैं और अपनी पूजा में 'पशु-बलि' करते हैं।''**

सबसे विचित्र बात **पूज्य सुकुल जी** में यह थी कि जिस बात का उन्हें **'तन्त्र'** में ज्ञान नहीं था, उसके लिए स्पष्ट रूप से कह देते थे कि **'हम नहीं जानते।' 'धर्म'** के विषय में इस **'सत्य'** का पालन मैंने विशेष रूप से उन्हीं में पाया।

उनके अनुरोध से कई बार मैंने लखनऊ में उनके पूज्य गुरुदेव के दर्शन किए और मन में बड़ी प्रसन्नता हुई कि वे सभी गुणों से अलंकृत थे। प्रति-वर्ष अनेकानेक रात्रियाँ उन्हीं के आवास में व्यतीत कीं। अनेक व्यक्तियों को भी मैं उनके चरणों में लाया और इस प्रकार उनका जीवन भी सफल हुआ। ये महोदय भी बड़े दानी थे। मुक्त-हस्त से विद्या–**'दीक्षा-दान'** देते थे।

प्रयाग में आने-जाने के समय जब कोई **'तन्त्र-दीक्षा'** के लिए उत्सुक प्राणी मिलता था, उसको लाकर श्री पूज्य **'सुकुल जी'** के द्वारा **'दीक्षा-संस्कार'** सम्पन्न होता था। पीछे चक्षु-हीन होने के कारण जब भी वे नकारात्मक उत्तर देते, तो फिर-फिर चेष्टा करने तथा प्रार्थना-युक्त उपालम्भों द्वारा हामीं भर लेते थे। उनका साथ सदा-सर्वदा ही परम मधुर तथा आनन्द-दायक होता था। प्राय: कभी भी उन्हें उदास मुद्रा में मैंने नहीं देखा।

बाद को जब **पूज्य सुकुल जी** अलोपीबाग में मकान बन जाने पर कटरे से उठ आए, तो भी मैं कई बार मैंने उनके दर्शन किए और अनेक दिनों तक उन्हीं के परिवार के व्यक्ति के समान वहाँ रहा। उनके अलौकिक शिष्टता-पूर्वक दीर्घ-कालीन अनुभवों के नित्य नए-नए प्रसङ्ग सुनाकर, जो विशेष रूप से **'शाक्त-समाज'**-सम्बन्धी होते थे, मन बड़ा ही मुग्ध हो जाता था। यदि चक्षु-हीन न होते, तो **'शाक्त-समाज'** का जो अनुपम उपकार होता, उसका मूल्याङ्कन प्राय: असम्भव है।

'धर्म-प्रचार' के विषय में **पूज्यवर सुकुल जी** ने जो रूप-रेखा अपने उपन्यास **'धर्म-मार्ग'** में प्रस्तुत की है, वह बड़ी ही उत्तम तथा वाञ्छनीय है। उसमें स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार मुट्ठी भर **'साधकों'** ने आचार्यत्व का अधिकार प्राप्त किया तथा उन्होंने अपने विभिन्न स्थानों में किस प्रकार सद्-गृहस्थ होते हुए भी अपने आदर्श व्यवहारों से जनता को मुग्ध कर **'शाक्त-मार्ग'** की ओर आकर्षित किया और अनेकानेक शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा मार्ग की उन्नति कराई। **पूज्य सुकुल जी** की अनेक और भी योजनाएँ थीं, पर उनके चक्षु-विहीन होने से कई योजनाएँ प्रकाश में न आ सकीं।

पूज्य पण्डित जी ने दो-चार बार बहुत अधिक आग्रह करने पर अपने जीवन के आध्यात्मिक क्षेत्र के अनुभवों का यत्किञ्चित् वर्णन किया, पर साथ ही स्पष्ट रूप से यह भी कहा कि उनको प्रकट न किया जाय।

सभी प्रकार से देखा जाता था कि **पूज्यवर पण्डित जी** अनन्य भक्त, ज्ञानी तथा कट्टर **'शाक्त-धर्मावलम्बी'** थे। अपने समस्त जीवन में, उन्होंने जहाँ तक मुझे ज्ञान है, **'नित्य-कर्म'** का कभी लोप नहीं किया।

पूज्य सुकुल जी के विषय में यदि सभी प्रसङ्गों का उल्लेख किया जाय, तो बहुत बड़ा पोथा तैयार हो जायगा। इस कारण इन परम भक्ति-सम्पन्न साधक को बार-बार प्रणिपात करते हुए लेखनी को विश्राम देता हूँ।

***

'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल

रचित

अनूठा धार्मिक उपन्यास

धर्म - मार्ग पर

१. गृह-त्याग

"यही ठीक होगा। इस घर में धर्म की रक्षा नहीं हो सकेगी। भावज का विचार कुछ और है, भाई साहब भी कुछ नहीं कहते, इधर मैं अपना व्रत तोड़ नहीं सकता। यही अच्छा होगा कि मैं ही यहाँ से बिदा हो जाऊँ।" नङ्गी चारपाई पर पड़ा-पड़ा शशिनाथ अपने मन में ऐसी ही बातें सोच रहा था।

शशिनाथ नव-युवक था। घर की खेती-बारी का काम उसी के सिपुर्द था। खेती-बारी के काम से छुट्टी पाने पर दोपहर को वह घर आता, जानवरों को बाँधकर उन्हें चारा देता, उसके बाद स्नान कर भगवान् का पूजन कर नैवेद्य दिखाता, तब घर के सब लोग भोजन करते। यह उसके घर की पुरानी प्रथा थी। पिता जी का गत वर्ष स्वर्ग-वास हो जाने पर भगवान् की पूजा का भी भार उसी पर आ गया था।

खेती-बारी के काम से पूजा-अर्चा में रोज देर हो जाती। गृह-स्वामिनी को यह बात असहनीय होती। ससुर जी के समय में इतनी देर नहीं हो पाती थी। वे दस-ग्यारह बजे तक स्नान-पूजा कर, भगवान् का भोग लगाकर, स्वयं भोजन करते और दूसरे लोग भी, परन्तु उनके स्वर्ग-वासी हो जाने पर पूजा का भार भी शशिनाथ ही पर आ पड़ा। अतएव घर में भोजन मिलने में देरी होने के कारण परस्पर खटपट शुरू हो गई।

उस दिन भावज ने यह व्यवस्था की कि भगवान् का भोग आज से गुड़ का लगाया जाया करेगा। यह आदेश निकाल कर उसने घर के लोगों को भोजन करने के लिए बाध्य किया। जब शशिनाथ घर आया और नित्य की तरह स्नान-पूजन कर भगवान् को भोग लगाने के लिए रसोई-घर की ओर लेने चला, तब भावज ने रूखे स्वर में उससे कहा— "ताक पर गुड़ रखा है, उसी का भगवान् को भोग लगा दो। तुम्हारे इस भोग के लिए सारा घर भूखों नहीं मर सकता।"

शशिनाथ ने कहा — "बहुत ठीक है, ऐसा ही करूँगा।"

उसने गुड़ ले लिया और पूजा-घर में जाकर भगवान् को भोग लगाया और उसी गुड़ को खाकर, पानी पीकर, दरवाजे आकर बैठ गया। भाई ने, भावज ने— सभी ने उससे भोजन करने के लिए कहा, परन्तु उसने इन्कार किया। उसने कहा— "मैंने अब तक भगवान् के ही प्रसाद का भोग किया है। ऐसी दशा में उस अन्न को कैसे ग्रहण कर सकता हूँ, जो भगवान् का प्रसाद नहीं है?"

उसकी इस दलील ने बहस का रूप धारण कर लिया और बहस कलह में परिणत हो गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि उसने उसी दिन घर छोड़ देने का निश्चय कर लिया।

शशिनाथ नङ्गी चारपाई पर घर के बाहर पड़ा हुआ था। रात को बारह बजे वह उठ खड़ा हुआ। उसने अपना डण्डा हाथ में लिया और पूजा-घर का अपना वही लोटा। उसने पूजा-घर की ओर सिर

झुका कर भगवान् को प्रणाम किया और जूते पहन-कर वह चुपचाप अपने सहेन से नीचे उतरकर गाँव की गली में आ गया।

रात का सन्नाटा था। सब लोग घरों में या बाहर चौपालों में गहरी नींद में सो रहे थे। उसके पैर की आहट पाकर इधर-उधर गलियों में पड़े हुए दो-एक कुत्ते अवश्य सजग हो उठे, परन्तु उसे पहचान कर वे भी जहाँ-के-तहाँ पड़ रहे।

शशिनाथ ने शीघ्र ही अपने को गाँव के बाहर पाया। वह घूमकर खड़ा हो गया। उसे अपने घर की, अपने परिवार के लोगों की, पड़ोसियों की, इष्ट-मित्रों की एक-एक बात बार-बार याद आने लगी। उन सबका प्रेम उसे दबाने लगा कि 'ऐसा न करो। अपने लोगों को छोड़कर परायों के बीच मत जाओ।' क्षण भर के लिए वह प्रेम के आकर्षण से विचलित हो उठा, परन्तु शीघ्र ही उसे याद आ गया गुरुदेव और पिता का यह उपदेश कि 'बेटा, धर्म के मार्ग पर सदा चलना। यदि धर्म में बाधा पड़ती हो, तो बाधा डालने-वालों को छोड़कर धर्म का ही होकर रहना।' इस उपदेश के याद आते ही उसके हृदय में पहली जैसी दृढ़ता फिर आ गई। उसने अपने मन में कहा कि 'यहाँ रहना ठीक न होगा। धर्म पर तो बात-बात में व्याघात होगा। इसके सिवा प्रति-दिन गुरु-जनों का कोप-भाजन बनना पड़ेगा।' यह सोचकर उसने बड़ी भक्ति और श्रद्धा से ग्राम के देवताओं को प्रणाम किया और घूमकर फिर अपने मार्ग पर चल पड़ा।

पूर्व दिशा से अष्टमी का चन्द्रमा उदित हो रहा था, मानों वह मार्ग-प्रदर्शक बनने के लिए आ रहा था। शरद का काल था। वह द्रुत गति से चलना चाहता था, परन्तु खाली पेट होने से वह चल न पाता था। तो भी चल रहा था। वह अपने निश्चय का पक्का था।

शशिनाथ दृढ़ता से धीरे-धीरे अपने मार्ग पर बढ़ रहा था। उसे रह-रह कर घर की बातें याद आती थीं। भाई का प्रेम, भावज का दुर्व्यवहार, बच्चों का स्नेह उसे बार-बार याद आता था। उसे अपने घर का तथा परिवार का अत्यधिक मोह था, परन्तु आज उसने उस मोह का भी त्याग कर दिया था। उसमें बचपन से ही भगवद्-भक्ति थी। वह सब कुछ सह सकता था, परन्तु अपने भगवान् का अपमान वह नहीं सह सकता था। उसके दुर्भाग्य या सौभाग्य से आज वही घटित हो गया, जिससे वह अपने प्यारे घर को तथा परिवार को छोड़कर उस मार्ग पर चल पड़ा, जिसका अन्त नहीं दिखाई दे रहा था। वह यद्यपि अपने सङ्कल्प पर दृढ़ था, तो भी बार-बार उसका गृह-प्रेम उसे विचलित कर देता और वह कभी-कभी पीछे घूमकर लौट पड़ने को तैयार भी हो जाता, परन्तु तुरन्त ही वह छलाँग भर कर आगे कूद जाता। उसका ऐसा ही आत्म-बल था। इसी तरह आगा-पीछा करते, कूदते-फाँदते वह दृढ़ता के साथ अपने मार्ग पर चला जा रहा था।

चलते-चलते अन्त में उसे एक सड़क मिली। वह सड़क पर पहुँच कर रुक गया। वह निश्चय न कर सका कि कहाँ आ गया है! दूर पर उसे कुछ लोगों के आने की आहट-सी जान पड़ी। वह खड़ा रहा। थोड़ी ही देर में तीन-चार आदमी उसकी ओर आते हुए दिखाई दिए। जब वे निकट आ गए, तब उसने पूछा— "आप लोग कहाँ जा रहे हैं?"

उनमें से एक ने कहा— "घाट को।"

शशिनाथ— "कौन सा घाट?"

चलते हुए उस आदमी ने जवाब दिया— "यही रामपुर का।"

शशिनाथ भी उन्हीं के पीछे हो लिया। उनमें से एक ने पूछा — "कहाँ जाओगे?"

शशिनाथ ने कहा— "यहीं घाट तक।"

और वे सब चुपचाप आगे की ओर बढ़ चले। उसके नए साथी परस्पर बातचीत करते हुए जा रहे थे। इस प्रकार घाट का वह रास्ता बड़े आराम से कट गया और सबेरा होते-होते वे घाट पर पहुँच गए। शशिनाथ थककर चूर-चूर हो गया था। वह सुस्ताने के लिए जगह खोजने लगा। इसी खोज में

था कि सहसा उसकी निगाह गङ्गा जी के तट की ओर गई। वहाँ का मनोरम दृश्य उसे अपनी ओर खींचने लगा। इच्छा न होते हुए भी वह उसी ओर चल पड़ा।

२. बाबा जी का उपदेश

तड़का हो रहा था। सूर्य के उदय होने में अभी देर थी। गङ्गा का तट शान्त था। दो-चार ही आदमी वहाँ पर थे। कोई स्नान कर रहा था। कोई स्नान करने की तैयारी कर रहा था। वहाँ पहुँचने पर शशिनाथ ने एक विशेष प्रकार के आनन्द का अनुभव किया। वह आनन्द एक भगवद् भक्त का आनन्द था। वह वहीं बैठ गया।

थोड़ी देर तक सुस्ताने के बाद वह भी स्नान करने की तैयारी करने लगा। शौचादि से निवृत्त होने पर उसने गङ्गा जी में स्नान किया। दूसरी धोती थी नहीं, अतएव कुरता पहन कर उसने धोती धो डाली और उसे सुखाने का उपक्रम करने लगा। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। उसने दूर जाकर बालू पर अपनी धोती फैला दी और वहीं बैठ गया।

अब तक घाट पर एक मजे की भीड़ हो गई थी। वह चुपचाप बैठा हुआ गङ्गा-तट का मनोरम दृश्य देख रहा था। स्नान करने से वह फिर ताजा हो गया था। पवित्र मीठा गङ्गा-जल पीने से उसकी भूख बहुत कुछ शान्त हो गई थी। सूर्य का प्रकाश हो जाने से गङ्गा जी के तट की चहल-पहल भी बढ़ गई थी।

इसी बीच में उसे एक साधु-वेष-धारी वृद्ध पुरुष अपनी ओर आते दिखाई दिए। जब वे समीप आ गए, तब उसने उठकर उन्हें प्रणाम किया। साधु ने आशीर्वाद दिया और वहीं एक जगह पर अपना आसन-कमण्डलु रखकर स्नान करने की तैयारी करने लगे। स्नान कर चुकने पर उन्होंने अपना आसन बिछाया और शालग्राम शिला निकाल कर उसका पूजन करने लगे।

अब तक शशिनाथ की धोती बहुत कुछ सूख गई थी। उसने उसे उठाकर उसकी बालू साफ की। फिर उसे पहन लिया। उसके बाद कुरते को भी धो डाला और उसे भी सूखने को डाल दिया। बाबा जी की पूजा समाप्त हो चुकी थी। उन्होंने शशिनाथ को इशारे से अपने पास बुलाया। जब वह पास पहुँचा, तब उसे थोड़ा-सा गुड़ देकर बोले— "लो, यह भगवान् का प्रसाद पा जाओ।"

उसने भगवान् को प्रणाम कर प्रसाद ग्रहण किया और जाकर गङ्गा-जल पान किया। बाबा जी भी प्रसाद ग्रहण कर अपना सामान सँभालने लगे। उन्होंने कहा — "बेटा, तू तो यहाँ का नहीं जान पड़ता। कहाँ रहता है?"

शशिनाथ— "आप ठीक कहते हैं। मेरा गाँव यहाँ से बहुत दूर है— रघुनाथपुर।"

बाबा—"जान पड़ता है, तू घर से भाग निकला है। तेरे पास कोई सामान नहीं। ऐसा तूने क्यों किया? तेरे माता-पिता दुःखी होंगे, तेरी खोज में होंगे।"

शशिनाथ— "यह भी आप ठीक कहते हैं। माता-पिता नहीं हैं, केवल बड़े भाई और मेरी भावज हैं। मेरे चले आने से उन्हें न तो दुःख होगा और न वे मेरी खोज ही करते होंगे।"

बाबा— "ऐसा क्यों? तू तो भले घर का लड़का जान पड़ता है।"

"यह भी ठीक है। गाँव में मेरे घर का आदर है, परन्तु भावज उग्र स्वभाव की हैं। उन्हीं के कारण मैंने घर छोड़ देना उचित समझा।"

बाबा— "घर-गृहस्थी में ऐसी खटपट तो होती ही रहती है। कोई ऐसा करता है! तुमने ठीक काम नहीं किया। क्या तुम्हारा विवाह हो गया है?"

शशिनाथ— "घर की खटपट की मैंने कभी परवाह नहीं की। कभी उपेक्षा से सही, तो कभी हँसकर। मेरे भाग खड़े होने का दूसरा ही कारण है। मैं ठाकुर जी का अपमान नहीं सह सका। पिता जी के समय से यह रहा है कि पहले ठाकुर जी का भोग लग जाता, तब घर के लोग भोजन पाते, परन्तु उस दिन ठाकुर जी को भोग नहीं लगाया

गया और सब लोगों ने भोजन कर लिया। भावज की नई व्यवस्था से भाई साहब भी सहमत थे। मैंने भोजन करने से इन्कार कर दिया। इस पर भावज बिगड़ पड़ीं और ऐसी खरी-खरी सुनाई कि उनका सुनना मेरे लिए असह्य हो उठा। मैं घर के बाहर चला आया। इधर-उधर घूमता रहा। सन्ध्या को जब घर लौटा, तो किसी ने बात तक न की। रात को ग्यारह बजे तक दरवाजे पर पड़ा रहा। किसी ने पूछा तक नहीं। तब मैंने यह निश्चय किया कि इस घर में मेरे लिए कोई स्थान नहीं।''

शशिनाथ का गला भर आया था। वह चुप हो रहा। बाबा जी ने उसके सिर पर हाथ फेरकर दिलासा देते हुए कहा— ''बेटा, तुमने ठीक किया। तुम भगवान् के सच्चे भक्त हो। आओ, मेरे साथ आओ। मेरी कुटिया— (हाथ से सङ्केत करते हुए)— वह देखो, कगार के ऊपर है।''

शशिनाथ ने बाबा जी का कमण्डलु और आसन आदि उठा लिए और वह उनके पीछे हो लिया। कगार पर चढ़ने पर उसने देखा कि कुटिया एक बहुत ही सुन्दर स्थान में है। हरे-भरे वृक्षों के बीच में वह बहुत सुन्दर दिखाई दे रही थी। थोड़ी देर में वे दोनों वहाँ पहुँच गए। बाबा जी ने कुटिया का ताला खोला और भीतर प्रवेश किया। सङ्केत पाने पर शशिनाथ भी भीतर गया। उसने कमण्डलु और आसन यथा-स्थान रख दिए।

कुटिया से बाहर आकर बाबा जी कुएँ पर गए। वहाँ बाल्टी और रस्सी रखी थी। शशिनाथ ने पानी निकाला, बाबा जी के पैर धुलाए और तब वह अपने पैर धोने लगा। बाबा जी कुटी में आए। उन्होंने वहाँ से शशिनाथ को बुलाया। जब शशिनाथ पहुँचा, तब उन्होंने कहा— ''बेटा! तुम कल के भूखे हो। कुछ जल-पान कर लो! थोड़ी देर में भगवान् का प्रसाद बनाएँगे, तब भोजन करना।''

यह कहकर उन्होंने एक टोकरी की ओर सङ्केत किया। टोकरी हटाकर उसने देखा— एक थाल में हलुवा-पूड़ी रखी थी। उठाने में उसे कुछ

सङ्कोच-सा हुआ।

बाबा जी ने कहा — ''वह भगवान् का प्रसाद है। उसके ग्रहण करने में किसी तरह का सङ्कोच-विकोच नहीं होना चाहिए। हाथ जोड़कर उसे ग्रहण करो। कुएँ पर जाकर उसे पाओ और बर्तन साफ कर यहाँ रख दो। तब तक मैं थोड़ा भगवत्-स्मरण और कर लूँ।''

बाबा जी सुखासीन हो गए और माला लेकर जप करने लगे। उधर शशिनाथ ने भगवान् के प्रसाद को ग्रहण किया और कुएँ पर ले जाकर उसका भोग लगाया। पानी पीकर उसने बर्तन साफ किए और उन्हें कुटी में लाकर यथा-स्थान रख दिया। बाबा जी जप में ध्यानस्थ थे। वह कुटी के बाहर निकल आया। कुछ दूर पर एक चबूतरे पर चटाई बिछी देखकर वह वहाँ जाकर आराम करने लगा। नीम की सुन्दर सुखद छाया में लेटते ही वह गहरी नींद में हो गया। वह कल दिन भर का भूखा था। रात भर पैदल चला था। आज दूसरे दिन

सु-स्वाद भोजन पाने पर उसका इस प्रकार सो जाना सर्वथा स्वाभाविक ही था।

जब बाबा जी पूजा-पाठ से छुट्टी पाकर बाहर निकले, तब उन्होंने शशिनाथ को सोता हुआ पाया। अपने मन में उन्होंने कहा कि 'बेचारा कल का थका हुआ है, जी भर कर सो लेने से ठीक हो जाएगा।'' वे भोजन बनाने में लग गए। तैयार हो जाने पर भगवान् को भोग लगाया और शशिनाथ के लिए खाने भर को अलग रखकर खुद खाया-पिया। फिर चौका-बर्तन करके विश्राम करने लगे।

सन्ध्या होते-होते शशिनाथ सोकर उठा। बाबा जी बैठे जप कर रहे थे। उन्होंने जप बन्द कर कहा — ''बेटा शशिनाथ, अच्छा किया। सो लेने से सारी थकावट दूर हो गई होगी। जाओ, शौच हो आओ। तुम्हारे लिए भगवान् का प्रसाद रखा है। उसे पा लो।''

शशिनाथ कुछ नहीं बोला। हाथ-मुँह धोने पर जब वह चैतन्य हुआ, तब वह बाबा जी के पास आकर बैठ गया। बाबा जी ने कहा—''क्या शौच नहीं जाओगे?''

शशिनाथ ने कहा— ''नहीं बाबा जी!''

बाबा जी बोले— ''तब उस कुटिया में जाकर प्रसाद पा लो। मैं पा चुका हूँ। तुम्हारे लिए रख दिया है।''

शशिनाथ पानी लेकर कुटिया में गया और हाथ-पैर धोकर प्रसाद पाया। फिर उसने बर्तन साफ किए और स्थान भी साफ कर दिया। वहाँ से जब वह बाबा जी के पास आया, तब उसने देखा कि बाबा जी के पास दो-तीन आदमी बैठे बातचीत कर रहे हैं। बाबा जी ने उसका उन्हें परिचय दिया और उसके शील-स्वभाव की प्रशंसा की। शशिनाथ कुछ नहीं बोला। वह उन लोगों के पास एक ओर चटाई पर बैठ गया। देर तक बातचीत होती रही। धर्म की भी और इधर-उधर की भी।

बाबा जी बार-बार घुमा-फिरा कर इसी निष्कर्ष पर पहुँचते कि **'कलियुग में मनुष्य के उद्धार का केवल एक ही मार्ग है और वह है— 'नाम'-मात्र का जप।'**

उनकी इस बातचीत को सुनकर वे तीनों ही सज्जन बाबा जी की बड़ाई करने लगते। अन्त में सत्सङ्ग समाप्त हुआ और वे तीनों ही सज्जन उठ कर वहाँ से चले गए।

उनके चले जाने पर बाबा जी ने कहा— ''ये तीनों ही भगवान् के बड़े भक्त हैं। प्रायः प्रति-दिन सत्सङ्ग के लिए आते हैं। जो बीच में बैठा था, वह वैश्य है। भगवान् का प्रसाद लगाने के लिए वह प्रति-दिन सामग्री देता है। हमारे स्थान से पूर्व की ओर कुछ दूरी पर एक गाँव है। वहीं ये रहते हैं। उस गाँव में भले आदमियों की अच्छी बस्ती है। वहाँ के प्रायः सभी लोग हमारे आश्रम के घाट पर स्नान करते हैं और यहाँ भगवान् का दर्शन कर अपने गाँव चले जाते हैं। कल **'देवोत्थानी एकादशी'** है। यहाँ भक्तों की भीड़ होगी, सत्सङ्ग भी होगा और पूर्णिमा को तो गङ्गा-स्नान का इतना बड़ा मेला लगेगा कि देखकर तुम बहुत प्रसन्न होगे।''

बाबा जी की बातें सुनकर शशिनाथ बहुत ही प्रसन्न हुआ। बाबा जी फिर बोले— ''आओ बेटा, भगवान् की शयन-आरती करें, कल सबेरे जल्दी उठना है।''

भीतर जाकर बाबा जी ने आरती की तैयारी की। फिर बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ भगवान् की आरती करके उन्हें पुष्पाञ्जलि प्रदान की। पुष्पाञ्जलि का स्तुति-पाठ बाबा जी ने इतने ललित स्वर में किया कि शशिनाथ को कई बार आनन्द का अश्रु-पात हुआ। समाप्ति के बाद वह बाबा जी के पैरों पर गिर पड़ा और भरे गले से उसने कहा— ''जो मैं चाहता था, वह मुझे मिल गया।''

बाबा जी ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा—''बेटा, धीरज धरो। यथा-समय तुमको सब मिलेगा।''

इसके बाद बाबा जी बाहर आए और शयन करने के प्रबन्ध में लगे। शशिनाथ को उन्होंने एक

कम्बल दिया, जिसे चटाई पर बिछा कर वह भी लेट रहा। उन्होंने उसे ओढ़ने के लिए एक चादर भी दी। बाबा जी राम-नाम का जप करते हुए विश्राम करने लगे।

बाबा जी तड़के ही जाग गए। उन्होंने शशिनाथ को भी जगा दिया। शौचादि से निवृत्त होने के बाद बाबा जी ने शशिनाथ से कहा—"बेटा, मैं तो स्नान करने जाता हूँ। तुम झाड़ू लेकर इस सारे स्थान को यहाँ से वहाँ तक साफ कर डालो। देखो, भीतर छत से जो चटाइयाँ बँधी हुई हैं, उन्हें खोलकर सहन में कायदे से बिछा देना। आज यहाँ भक्तों की भीड़ होगी। उन सबका आदर-सत्कार करना धर्म है।"

यह कहकर बाबा जी गङ्गा जी की ओर लपके। इधर शशिनाथ ने झाड़ू हाथ में लेकर सारे स्थान को साफ कर डाला। फिर कोठरी के भीतर से चटाइयाँ निकाल कर उन्हें ठीक जगह पर कायदे से बिछा दिया। इसके बाद वह कुएँ के आस-पास की गन्दगी दूर करने में संलग्न हुआ। उस काम से उसने छुट्टी पाई ही थी कि बाबा जी स्नान करके आ गए। आश्रम की सफाई देखकर बाबा जी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा— "बेटा शशिनाथ, तुमने कमाल कर दिया। जाओ, तुम भी स्नान करके जल्दी आ जाओ"— उसके पहनने के लिए पीले रङ्ग का अचला देते हुए कहा —" यह तुम्हारे पहनने के लिए है। आज तुम्हें भगवान् के नाम की दीक्षा मिलेगी, जाओ।"

शशिनाथ खुशी-खुशी गङ्गा जी की ओर बढ़ा और शीघ्र स्नान कर उलटे पाँव लौट पड़ा। बाबा जी भगवान् का शृङ्गार कर रहे थे। शशिनाथ को देखकर उन्होंने कहा— "बेटा, कड़ाही और ये बर्तन ले जाकर रसोई-घर की कोठरी में रखो। एक घड़ा जल भी रख लेना। कुछ ही देर बाद भक्तों की टुकड़ियाँ यहाँ आएँगी। वे भगवान् के भोग के लिए तरह-तरह की चीजें भेंट करेंगी। तुम यहाँ आए हुए दूध को उठा ले जाना और उसे गरम करके पात्र में रखते जाना। प्रत्येक व्यक्ति का लाया हुआ दूध अलग-अलग पकाना। जिसका दूध खराब जान पड़े, उसको अलग ही रखना। कुछ सकरकन्द भी यहाँ से उठा ले जाना और पका लेना। मुझसे किसी तरह की बातचीत न करना। समझे?"

शशिनाथ ने कहा—"आपकी आज्ञा के अनुसार ही सब काम होगा।"

बाबा जी अपने काम में लग गए और शशिनाथ अपने प्रबन्ध में। थोड़ी देर के बाद भक्तों की मण्डलियाँ गङ्गा-स्नान करके आश्रम में आने लगीं। आगत लोग भगवान् के दर्शन करते, बाबा जी के पैर छूते, बिछी हुई चटाइयों पर बैठते, बाबा जी से बातें करते, फिर उठ कर अपनी राह लगते। यह क्रम कोई ग्यारह बजे तक जारी रहा। एक मण्डली अन्त तक बैठी रही। एकान्त होने पर बाबा जी ने उनको **'नाम'** का मन्त्र दिया और इन सबके **'कण्ठी'** बाँध दी। जब वहाँ कोई न रह गया, तब बाबा जी रसोई घर गए। वहाँ शशिनाथ का सब काम चौकस पाया। दूध और कन्दी उठवा कर पूजा-गृह में लाए। भगवान् का भोग लगाकर उन्होंने शशिनाथ से कहा— "आओ, तुम्हारी भी दीक्षा हो जाए।"

उन्होंने शशिनाथ को **'नाम-मन्त्र'** दिया और उसके भी **'कण्ठी'** बाँध दी। आज उसकी खुशी का ठिकाना न था। फिर गुरु और शिष्य दोनों ने दूध और कन्दी का फलाहार किया। तब बाबा जी ने उठकर जो रुपये-पैसे भेंट में चढ़े थे, उन्हें सँभाला। खोया और मिठाई उठाकर यथा-स्थान रखवा दी। कन्दी-आलू आदि जो चढ़े थे, उन्हें रसोई-घर भेज दिया। दोनों ही अति प्रसन्न थे— अपने-अपने लाभ के लिए। बाबा जी ने मुस्कुराते हुए कहा— "बेटा शशिनाथ, पूर्णिमा के दिन यहाँ बहुत अधिक धूम-धाम होगी। अच्छा बेटा, आराम करो। आज तुमको बहुत परिश्रम करना पड़ा है।" बाबा जी भी **'हरि-नाम'** का कीर्तन करते हुए अपने आसन पर विश्राम करने लगे।

★ ★ ★

धर्म-मार्ग पर

३. बाबा जी से बिछोह

एकादशी के दूसरे दिन स्नान-पूजा से छुट्टी पाकर बाबा जी ने शशिनाथ को पास बुलाकर कहा — ''बेटा शशिनाथ, कल तुमने 'राम' - नाम सुन लिया। अब तुम हमारे साधु-सम्प्रदाय में हो गए हो। तुम्हारा नाम मैंने 'रामदास' रखा है। बहुत दिन हुए, मैंने एक ब्राह्मण बालक को शिष्य बनाया था। उसका नाम 'रघुनाथ-दास' रखा था। खूब पढ़ाया-लिखाया था। बड़ा होनहार था, परन्तु यहाँ के लफङ्गों-गुण्डों की सङ्गति में पड़कर उसने साधुवाने को कलङ्कित किया। अतएव मैंने उसे यहाँ से निकाल दिया। तब से उसका कोई पता नहीं मिला। यह तुमसे इसलिए बता रहा हूँ कि तुम यहाँ के लुच्चे-लफङ्गों से सावधान रहना। आश्रम में रहकर भगवद्- भजन करो, बुरी बातों से दूर रहो। तभी तुम्हारा भविष्य बनेगा। यहाँ भी सुखी रहोगे और परलोक में भी। मुझे देखो, मैंने 'राम'-नाम की खेती की है। यह जो सब वैभव तुम्हें दिखाई देता है, उसी का सुफल है। समझे!''

रामदास ने धीरे से सिर हिला दिया और कहा— ''जो आज्ञा! आपके आशीर्वाद से मेरा कल्याण होगा। मैं अभी एक अनुभव-हीन नव-युवक हूँ। जिस राह पर लगाएँगे, उसी पर चलूँगा।''

बाबा जी ने हँसकर कहा— ''बेटा, मेरी ही तरह तुम भी 'राम'-नाम की खेती करो। सारा जीवन सुख से कट जाएगा और पर-लोक भी बन जाएगा। अच्छा, यह बताओ, आज क्या खाया-पिया जाए। कल प्रसाद बहुत गरिष्ट था। आज कुछ पाने की इच्छा ही नहीं।''

रामदास— ''बाबा जी, कल का दूध बच गया था। मैंने सोचा कि यह खराब हो जाएगा। इससे मैंने उसमें दही डालकर रख दिया था। उसे यदि आप पा लेंगे, तो आपका अपाचन भी ठीक हो जाएगा और तबियत भी प्रसन्न रहेगी।''

बाबा जी— ''अच्छा बेटा, ले आओ। दही खा लेने से सब ठीक हो जाएगा।''

रामदास गया और दही का कटोरा ले आया। बाबा जी ने उसमें चीनी मिलाकर भगवान् को भोग लगाया। फिर उसमें से आधा दही रामदास को देकर उसे खाने लगे। बहुत ही स्वादिष्ट दही था। बार-बार सराह कर बाबा जी ने उसे उदरस्थ किया। उन्होंने कहा— ''बेटा, मेरा मतलब पूरा

हो गया। तुम चाहो, तो अपने लिए कुछ बना लो।''

रामदास— ''नहीं बाबा जी, मैं भी यही आपका प्रसाद पाऊँगा।''

बाबा जी— ''दही तो रखा होगा। जाओ, थोड़ी उड़द की दाल भिगो दो। आज शाम को बरे बनेंगे।'' यह कहकर बाबा जी बिस्तर पर लेट कर 'हरि-नाम' लेने लगे।

उधर रामदास भण्डार-घर गया। उड़द की दाल निकाल कर पानी में भिगो दी। फिर उसने दही का भोग लगाया और 'रामायण' निकाल कर वहीं बैठकर पढ़ने लगा। दोपहर होते-होते आश्रम में दो स्त्रियाँ पधारीं। ऐसा जान पड़ता था कि वे दूर से आ रही हैं और थक गई हैं। बाबा जी उस समय सो रहे थे। रामदास ने उन दोनों को बड़े आदर से बैठाया और उन्हें हाथ-पैर धोने के लिए पानी दिया। उनकी बातचीत से ताड़ गया कि वे बाबा जी की शिष्याएँ हैं। इससे उसने खाने के लिए कुछ मिठाई भी दी और कहा— ''माता जी. आप जल-पान कर लें। अभी थोड़ी देर में ही बाबा जी जागते हैं।''

उन दोनों ने प्रसन्नता से मिठाई खाकर पानी पिया। उनमें से एक ने पूछा— ''क्या बाबा जी ने तुम्हें अपना शिष्य बनाया है? तुम्हारा क्या नाम है?''

रामदास— ''हाँ माता जी, उन्होंने मुझ पर कृपा की है। मेरा नाम रामदास है।''

इसी बीच में ऐसा जान पड़ा कि बाबा जी जाग गए। अतएव वे सब उनके पास गए। बाबा जी ने उन्हें देखकर हँसकर कहा— ''अच्छा, तुम आ गई?''

उन दोनों ने सिर टेक कर पैर छूकर चटाई पर बैठते हुए कहा— ''हाँ, अभी-अभी आई हैं।''

बाबा जी— ''कुछ जलपान किया है या नहीं?''

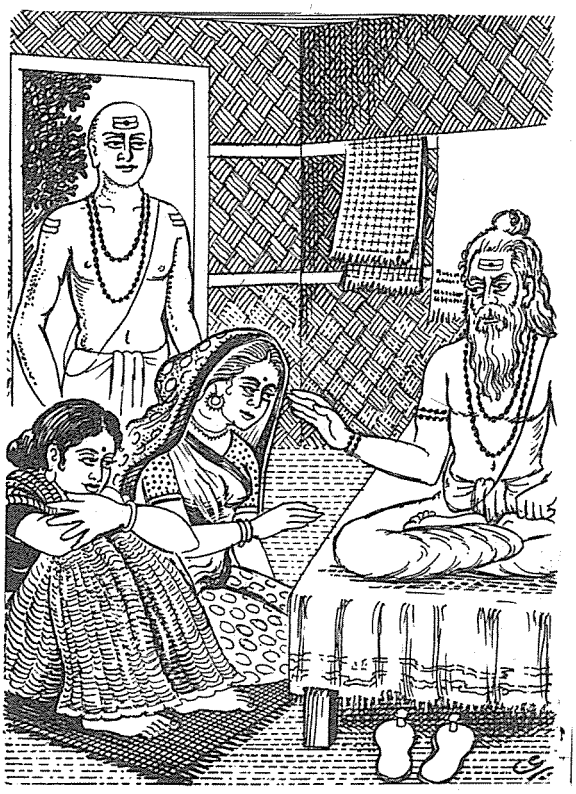

उनमें से एक ने कहा— ''हाँ, भाई रामदास ने हमें जल-पान कराया है।''

बाबा जी की देर तक शिष्याओं से बातचीत होती रही। उसके बाद दिन के ढलने पर वे गङ्गा-स्नान करने चली गईं। जब वे लौटीं, तब सन्ध्या हो रही थी। बाबा जी ने उनसे हँसकर कहा — ''उड़द की दाल तुम्हारी राह देख रही है।''

उनमें से एक ने कहा— ''सो तो बाबा जी, हमेशा की बात है।''

यह कहकर वे दोनों भण्डार-घर में चली गईं। वहाँ वे भोजन बनाने का प्रबन्ध करने लगीं। रामदास उनकी सहायता करने लगा।

जब भोजन बनकर तैयार हो गया, तब तक बाबा जी भी पूजा-पाठ से छुट्टी पा गए। वे भगवान् की आरती की तैयारी करने लगे। शिष्याएँ भी आरती में शामिल हुईं। बड़ी धूम-धाम से आरती

हुई।

भोजन करते समय बरों की बड़ी बड़ाई हुई। भोजन करने के उपरान्त जब बाबा जी आसन पर आसीन हुए, तब उन्होंने एक स्त्री को सम्बोधन करके कहा—"गंगू की मा, इस बार तो तुम दो ही आई हो। चमेली की माँ नहीं आई है। भण्डार का काम कैसे सँभलेगा?"

वह स्त्री बोली— "चमेली की माँ बीमार पड़ी है, परन्तु आप चिन्ता न करें। आपके प्रताप से भण्डारे का काम ठीक ही उतरेगा।"

बाबा जी— "कहो तो गाँव से कुछ स्त्रियाँ और बुला लें।"

वह बोली— "नई भरती करने की जरूरत नहीं है। जो आती रही है, उन्हीं से सब काम हो जाएगा। आप चिन्ता न करें।"

बाबा जी— "अच्छी बात है! अच्छा जाओ, तुम लोग विश्राम करो। कल बहुत-सा काम करना है।"

वे दोनों भण्डार-घर में जाकर विश्राम करने लगीं।

दूसरे दिन सबेरे जब बाबा जी स्नान करने के लिए जा रहे थे, ठीक उसी दिन रामनगर के सितलू शाह ने जल्दी-जल्दी बाबा जी के पास आकर उन्हें बड़ी श्रद्धा से प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा— "महाराज, सब सामान आ रहा है। एक निगाह से देख लेते, तो बहुत अच्छा होता।"

बाबा जी ठहर कर बोले— "सब ठीक ही होगा, देखना क्या है। रामदास यहीं रहेगा, उसके सिपुर्द कर देना, और हाँ, तुम आदमियों से कह देना कि सारे आश्रम की अच्छी तरह सफाई कर दें।"

यह कहकर बाबा जी शिष्याओं के साथ जल्दी-जल्दी गङ्गा जी की ओर लपके। बाबा जी के चले जाने के बाद सितलू के आदमी सामान लादे हुए आश्रम में पहुँचे। सितलू ने सारा सामान भण्डारे में रखवाते हुए कहा— "भाई, देख लो। आटा, चीनी, घी और आलू आज्ञानुसार आया है। सब चीज़ देख लो— लकड़ी, साग, पत्तल आदि गाड़ी में आ रहे हैं।"

रामदास ने हँसकर कहा— "आपका लाया सामान मैं देखूँ!"

यह कहकर वह सितलू के साथ भण्डारे के बाहर चला आया। सितलू ने अपने आदमियों से कहा — "सारे आश्रम की सफाई करनी है। दोपहर तक सारा आश्रम साफ हो जाना चाहिए।"

फिर उसने रामदास से कहा— "भाई, गाड़ी का सामान यथा-स्थान रखवा लेना, अब मैं चलूँगा।"

यह कहकर सितलू जल्दी-जल्दी अपने गाँव की ओर चल पड़े।

अब रामदास आश्रम की सफाई करवाने में लगे। आश्रम की सफाई हो रही थी कि बाबा जी स्नान करके आ गए। उन्होंने रामदास से कहा— "बेटा, तुम भी स्नान कर आओ, और हाँ, गंगू की माँ जो सामान माँगें, वह उन्हें दिए जाना। भगवान् का भोग आदि वही तैयार करेंगी।"

यह कहकर बाबा जी कुटिया के भीतर चले गए।

रामदास ने गंगू की माँ से कहा— "माता जी, आप तो सब जानती ही हैं कि कौन चीज कहाँ रखी है। जो चीज, चाहें निकाल लें।"

यह कहकर वह गङ्गा जी की ओर भागा।

गंगू की माँ भण्डार-गृह में जाकर भगवान् का भोग तैयार करने लगी। इधर बाबा जी की पूजा समाप्त हुई, उधर भोग के लिए हलुवा-पूड़ी भी तैयार हो गई थी। रामदास भी गङ्गा-स्नान करके आ गया था। भगवान् का भोग लगा और सबने प्रसाद पाया।

अब सितलू की बैलगाड़ी भी आ गई। गाड़ी से सामान उतरवा कर यथा-स्थान रखवा दिया

गया। बाबा जी ने गंगू की माँ से कहा— "तुम आराम कर लो। दोपहर के बाद कड़ाही चढ़ेगी। तुम्हारी सहायता के लिए गाँव की जो स्त्रियाँ आती रही हैं, वे अपने समय पर आ जाएँगी।"

यह कहकर 'हरि-नाम' की स्मरण करते हुए बाबा जी जाकर अपने आसन पर आसीन हो गए। सितलू के आदमियों ने दोपहर तक सारे स्थान को साफ कर गाँव की राह ली। रामदास यह सारा दृश्य बड़ी उत्सुकता से देख रहा था। उसके आनन्द की सीमा न थी।

दोपहर के बाद रामपुर की चार स्त्रियाँ पधारीं। गंगू की माँ और उसकी सखी उन्हें पहले से जानती थीं। उन्होंने इनका स्वागत किया और गले मिलीं। फिर वे सब बड़ी तत्परता से अपने-अपने काम में लग गईं। थोड़ी ही देर में कढ़ाही चढ़ गई और पूड़ियाँ निकलने लगीं। काफी अधिक पूड़ियाँ जब बन गईं, तब साग छौंका गया। सन्ध्या होते-होते साग भी तैयार हो गया। रामदास बड़े उत्साह से उन सबकी सहायता कर रहा था। बाबा जी भी बीच-बीच में आकर देख जाते थे।

सन्ध्या होने पर बाबा जी भगवान् की पूजा-आरती में लगे। उससे छुट्टी पाने पर जब वे बाहर निकले, तब **'जय जय राम'** की ध्वनि उन्हें सुनाई दी। उन्होंने रामदास से कहा— "देखो, साधु-मण्डलियाँ आ रही हैं।"

थोड़ी ही देर में साधु-मण्डलियों ने आश्रम में प्रवेश करना शुरू किया। बाबा जी उनका स्वागत-सत्कार करने लगे। दस बजते-बजते सारा आश्रम साधुओं से भर गया। प्रति-वर्ष की तरह इस वर्ष भी कोई डेढ़ सौ साधु पधारे थे। बाबा जी ने उन सबको बड़े आदर के साथ भोजन कराया। जब साधु लोग भोजन कर चुके, तब उन्होंने और उनकी शिष्याओं ने भी प्रसाद ग्रहण किया।

दूसरे दिन पूर्णिमा का स्नान था। आश्रम से कुछ ही दूर पर सरइया के घाट पर लाखों की भीड़ थी। गङ्गा जी में स्नान करने के लिए, ऐसा जान पड़ता था, आस-पास के ही नहीं, दूर-दूर तक के ग्रामों के लोग वहाँ एकत्र थे।

बाबा जी के आश्रम के साधु लोग भी आज वहीं स्नान करने के लिए गए। आज सितलू शाह के आदमी सबेरे ही बहुत-सा सामान लेकर आ गए थे। बाबा जी की आज्ञा पर उन्होंने आश्रम की जल्दी-जल्दी सफाई कर डाली। फिर वे स्नान करने चले गए। बाबा जी और उनकी शिष्याएँ तड़के ही स्नान कर आई थीं। आज मुख्य भण्डारा था। अतएव सभी शिष्याएँ बड़ी मुस्तैदी से भोजन बनाने में लग गईं। ग्यारह बजते-बजते उन्होंने पूड़ी, हलुवा और साग तैयार करके रख दिया।

मेला देखकर साधु लोग धीरे-धीरे आश्रम में आने लगे। बारह बजते-बजते सब आ गए। अब बाबा जी ने उन सबको भोजन के लिए आवाहन किया। आज वे स्वयं उनके साथ पंक्ति में बैठे। शिष्याएँ और रामदास परोसने लगे। भोजन सु-स्वादु और रुचि-कर बना था। साधु-समुदाय ने प्रसन्न होकर एक स्वर से बाबा जी का जय-जयकार किया— "बाबा राघवदास की जय हो! बाबा राघवदास की जय हो!!"

इसमें सन्देह नहीं, बाबा जी इस प्रशंसा के सर्वदा पात्र थे। वे एक आदर्श भगवद्-भक्त ही नहीं थे, एक सच्चरित्र तथा पुण्यात्मा साधु भी थे। यही कारण था कि उनकी दूर-दूर प्रशंसा थी और लोग उन्हें बड़ी श्रद्धा से देखते थे। यह उनका सद्-व्यवहार ही था कि प्रत्येक पर्व तथा त्यौहार पर उनके आश्रम में कोई-न-कोई धर्मोत्सव होता ही रहता था। **'कार्तिक पूर्णिमा'** को उनके स्थान के सङ्कीर्तन की बड़ी प्रशंसा थी।

संध्या-समय से संकीर्तन प्रारम्भ हुआ। मेले से बहुत से साधु-गृहस्थ सदा की भाँति कीर्तन का आनन्द लेने आए थे। आश्रम भीड़ से भर गया था। बारी-बारी से मण्डलियाँ भगवद्-नाम का कीर्तन करने लगीं, जो अर्ध-रात्रि तक बराबर होता रहा।

कीर्तन की समाप्ति के बाद हलुवे का प्रसाद बाँटा गया। उसके बाद सब लोग विश्राम करने लगे।

'प्रतिपदा' को साधु-मण्डलियाँ सबेरे गङ्गा-स्नान कर बाबा जी से बिदा हो अपने-अपने स्थान को चल पड़ीं। आठ बजे तक सारा स्थान खाली हो गया।

पिछले तीन-चार दिनों में बाबा जी को इतना अधिक श्रम करना पड़ा कि इस बार वे इसे सह नहीं सके। इसके साथ ही इन दिनों के गरिष्ट भोजन ने भी विष का काम किया। बाबा जी वृद्ध थे। उनका शरीर अब इतना सबल नहीं था कि वे भारी भार को वहन कर सकते। परिणाम वही हुआ, जो होना चाहिए था। कोई दस बजे उनके पेट में दर्द शुरू हुआ। उनकी शिष्याएँ भी चली गई थीं। अकेला रामदास था। वह क्या करता! अनुभवी बाबा जी तुरन्त जान गए कि क्या होनेवाला है। थोड़ी-थोड़ी देर में उन्हें दो दस्त हुए और वे बिल्कुल शिथिल पड़ गए। धीरे-धीरे दो बार उन्होंने **'राम'**-नाम का उच्चारण किया कि एकाएक उनके प्राण-पखेरू उड़ गए। रामदास पास ही खड़ा था। वह हत-बुद्धि-सा हो गया। इसी समय दो साधुओं ने आश्रम में प्रवेश किया। पास आने पर उसने उन्हें पहचाना। कल के कीर्तन में ये भी आए थे और बाबा जी ने इनका विशेष सत्कार किया था। उनके निकट आ जाने पर वह रो पड़ा। महात्मा जी चकित हो गए, परन्तु जब उनकी दृष्टि बाबा जी पर पड़ी, तब वे समझ गए कि क्या बात है। उन्होंने रामदास से पूछा— ''यह क्या हुआ! कल तो भले-चङ्गे थे।''

रामदास— ''आज भी तबियत अच्छी थी। अभी-अभी पेट में दर्द हुआ, दो दस्त हुए, बस''

यह कह कर वह फिर रोने लगा।

महात्मा जी— ''रोओ मत। हरि का स्मरण करो। एक दिन हम सबका ऐसा ही होगा।''

फिर उन्होंने अपने साथ आए हुए साधु से कहा— ''हनुमत-दास, जल्दी जाओ, उन लोगों

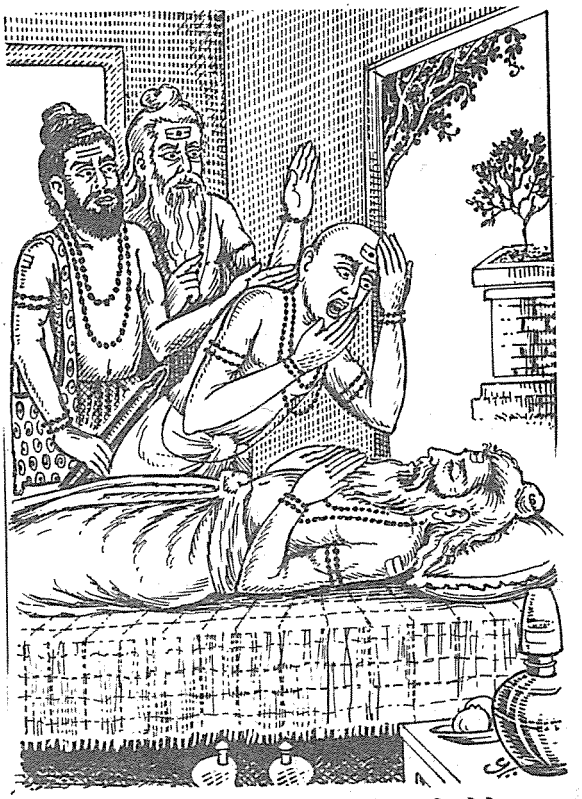

को बुला लाओ, आवश्यक सामान भी लेते आना। बाबा राघवदास का अन्तिम संस्कार करना है। समझे।''

हनुमतदास ने कहा— ''हाँ महात्मा जी, आप ठीक कहते हैं। बहुत शीघ्र सबको लेकर आता हूँ—''

वह कह वे सरइया की ओर वेग से चल पड़े।

थोड़ी ही देर में बाबा जी के देहावसान की खबर इधर-उधर फैल गई। थोड़ी ही देर में आश्रम में लोगों की खासी भीड़ लग गई। सभी लोग बाबा जी के गुणों का कीर्तन कर रहे थे। हनुमतदास ने अपनी मण्डली के साथ बाबा जी का शव-यान सजाया। फिर वे उसमें बाबा जी के शव को रख कर गङ्गा जी की ओर उसे लेकर चले। सब लोग **'राम'** नाम का कीर्तन कर रहे थे। शव को जल-समाधि देने के बाद वे सब लोग फिर आश्रम में आए।

तब उन्हीं महात्मा जी ने सब लोगों को लक्ष्य करके कहा— "राघवदास मेरे गुरु-भाई थे। वे अब नहीं रहे। (एक नव-जवान साधु की ओर अँगुली से सङ्केत करके) यह रघुनाथदास उनका शिष्य है। यही उनकी गद्दी पर बैठेगा।"

इसके बाद वे साधु-मण्डली से धीरे-धीरे बातचीत करने लगे। जब इतर लोग आश्रम से चले गए, तब महात्मा जी ने रघुनाथदास से कहा — "बेटा रघुनाथदास, मैं तो अब जाऊँगा। हनुमतदास और उसके कुछ साथी यहाँ रहेंगे। मैं भी भण्डारे के दिन आ जाऊँगा।"

फिर उन्होंने रामदास की ओर मुँह करके कहा— "बेटा रामदास, तुम छोटे भाई के रूप में आश्रम में रह कर हरि का भजन करो। रघुनाथ तुम्हें अपने छोटे भाई की तरह रखेगा। इसका विश्वास करो।"

यह कह कर वे उठ खड़े हुए और अपनी मण्डली के साथ उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया।

रघुनाथदास कई वर्ष के बाद अपने आश्रम में आया था। वह नहीं जानता था कि उसे उसका आश्रम इस प्रकार प्राप्त होगा। वह अपने गुरु-देव के निधन से दुखी था, परन्तु उस तरह नहीं, जैसे कि रामदास। हनुमतदास ने इधर-उधर देख-भाल कर आश्रम की चाभियाँ अपने हाथ में कीं, मानो यह उसका नैसर्गिक अधिकार हो। दुखी रामदास यह सब चुपचाप बैठा देख रहा था। एक घण्टे के बाद रघुनाथदास ने एक साधु की ओर देखकर कहा— "क्यों बाबा, कुछ बनेगा भी या इसी तरह समय कटेगा!"

वह साधु चुपचाप उठ कर खड़ा हो गया। वहाँ से कुछ दूर जाकर आग तैयार की और चिलम भर कर ले आया। सब सन्तों ने क्रम से दम लगाई और उनका दम जाग पड़ा। हनुमतदास ने रामदास से कहा— "बेटा, तुम्हीं कुछ करोगे, तो काम बनेगा। उठो, टिक्कड़ लगाओ। हम लोग तो बहुत थक गए हैं।"

दुखी रामदास चुपचाप उठा और टिक्कड़ लगाने का प्रबन्ध करने लगा।

हनुमतदास ने भण्डार से उसे आटा, आलू, घी आदि निकाल कर दे दिया। मन-ही-मन रोते हुए रामदास ने टिक्कड़ लगाए और आलू भी भून दीं। सब सन्तों ने भोग लगाया। जो बचा-खुचा, उसे रामदास ने खाया। वह समझ गया कि इस आश्रम में अब उसका क्या स्थान है। ज्यों-त्यों करते भण्डारे का दिन आया। धूम-धाम से भण्डारा हुआ। भण्डारा हो चुकने पर सारा साधु-समाज आश्रम से विदा हो गया। अब वहाँ केवल रघुनाथदास और रामदास रह गए थे। आश्रम की चाभी-कुञ्जी रघुनाथदास के हाथ में थी और झाड़ू थी रामदास के हाथ में! दूसरे दिन रघुनाथदास ने रामदास से कहा— "भाई, आश्रम में तो अब कुछ रहा नहीं। जो था, वह सब भण्डारे में खर्च हो गया। सितलूशाह बाबा की सारी धरोहर डकार गए। हाँ, कुछ दिनों में पहले जैसी स्थिति फिर हो जाएगी, परन्तु तब तक भीख माँग करके ही काम चलाना होगा। सो तुम रामपुर को जाओ, मैं सरइया जाता हूँ। पेट भरना जरूरी है।"

रामदास ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने एक तूँबी ली और रामपुर की ओर चल पड़ा। आश्रम के बाहर आकर वह पूजा-गृह की ओर मुँह करके खड़ा हो गया। उसने बार-बार ध्यान-पूर्वक गुरु-देव को और देव-प्रतिमाओं को प्रणाम किया। फिर अपने मन में कहा—"हे गुरुदेव, आपने जो मुझे दिया है, वह मेरे लिए बहुत है। आश्रम का अब का यह प्रपञ्च मुझे कहीं का न रखेगा। मुझे दुःख है कि मैं आपकी थाती छोड़ने को लाचार हो गया हूँ। इस अपराध के लिए मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ।"

यह कह कर उसने फिर बार-बार प्रणाम किया और वह रामपुर की ओर रवाना हुआ।

* * *

धर्म-मार्ग पर

४. मौसा-मौसी का मोह !

यह पहली बार रामदास अपने आश्रम से निकला था। रामपुर पहुँच कर उसने सितलू शाह का घर पूछा। जिससे उसने पूछा था, वे गाँव के एक मुख्य व्यक्ति थे।

उन्होंने कहा — बाबा जी, कहाँ चल पड़े? आइए, आइए। क्या शाह लोगों का ही सत्कार आपको स्वीकार है? क्या ब्राह्मणों की सूखी रोटियाँ आपको नहीं भातीं?

हत-प्रभ होकर रामदास ने कहा — नहीं पण्डित जी, ऐसी बात नहीं है। मैं भी ब्राह्मण का पुत्र हूँ। ब्राह्मण का प्रसाद क्यों नहीं रुचिकर होगा? बात यह है कि शाह जी मुझे जानते हैं। इसके अतिरिक्त भिक्षा माँगने का मैं आदी नहीं हुआ हूँ। इस दिशा में यह मेरा पहला कदम है।

पण्डित जी बोले — तब मेरे घर से ही क्यों न श्रीगणेश किया जाए?

'बहुत अच्छा' कह कर रामदास उनके साथ हो गया।

पण्डित जी ने कहा — मैं तुमको जानता हूँ। तुम्हारे गुरु बाबा राघवदास को भी जानता हूँ। अवकाश न होने से मैं आश्रम को यदा-कदा ही आता-जाता हूँ।

इस तरह बात-चीत करते हुए पण्डित जी रामदास को अपने घर ले गए। उन्होंने उसे हाथ-पैर धोने के लिए पानी और बैठने के लिए आसन दिया। फिर वे घर के भीतर चले गए। थोड़ी देर के बाद वे बाहर आए। **उन्होंने कहा** — भिक्षा तैयार है। चलिए, भोजन कर लीजिए।

रामदास उठ खड़ा हुआ और वह उनके पीछे हो लिया। एक साफ-सुथरी जगह में चौका लगा हुआ था। वहीं उन्होंने रामदास को भोजन कराया। भोजन कर चुकने पर जब रामदास दरवाजे पर चला गया, तब पण्डिताइन ने बहुत व्यग्रता से पण्डित जी से कहा — वही तो है! मैं तुमसे ठीक कहती हूँ, यह शशिनाथ है। यह ठीक है कि मैं इसे वर्षों बाद देख रही हूँ, परन्तु मेरी आँखें धोखा नहीं खा सकतीं। अपने को पहचानने में कोई कभी भी भूल नहीं कर सकता। जाओ, पूछो कि तुम कहाँ के हो, कौन हो?

पण्डित जी भी चकित हो उठे। लौंग-इलायची लेकर वे बाहर आए। रामदास के आगे इलायची रखते हुए उन्होंने पूछा — बाबा जी, यह तो बताइए कि आपकी जन्म-भूमि कहाँ है? क्या बचपन से ही आप साधू हैं? अभी तो आप ज्यादा-से-ज्यादा २३, २४ वर्ष के होंगे।

रामदास ने हँसकर कहा — इसी कार्तिक की एकादशी से मैंने साधु - बाना लिया है। उसके पहले मैं भी आप लोगों जैसा एक गृहस्थ ब्राह्मण था। मेरी जन्म-भूमि पथरिया है, जो यहाँ से बहुत दूर है।

पण्डित जी बोले — पथरिया? अमिलिया तहसील की पथरिया?

रामदास — हाँ, वही-वही!

पण्डित जी — क्या तुम वहाँ के पण्डित गङ्गाधर को जानते हो?

अचकचाकर रामदास ने कहा — क्यों नहीं?

पण्डित जी— और उनके भाई शशिनाथ को?

रामदास चुप था। भेद खुल गया।

पण्डित जी ने कहा — तो क्या तुम्हीं शशिनाथ हो? गङ्गा स्नान करने तुम्हारे मामा जी आए थे। मेले में साधुओं की मण्डलियों में हम दोनों ही तुम्हें खोजते फिरे, पर तुम नहीं मिले। यह तो

तुम्हारी मौसी ने जब देखा, तब पहचाना।

किवाड़ की आड़ में पण्डिताइन खड़ी हुई सब बातें सुन रही थीं। वे अब अधिक अपने को न रोक सकीं। वे रोती हुई बाहर निकल आईं और रामदास ने पहचान लिया कि वे उसकी मौसी ही हैं। वह लड़कपन में माँ के साथ ननिहाल गया था, तब उसने मौसी को देखा भी था। इसके सिवा उनकी रूप-रेखा भी उसकी माँ से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी।

पण्डित जी ने रामदास को बहुत कुछ समझाया-बुझाया, ऊँच-नीच दिखाया, अन्त में यह भी कहा कि 'जो राह तुमने पकड़ी है, वह हमारे जैसे ब्राह्मणों के कुलाचार के विरुद्ध है।' परन्तु राम-दास ने एक न सुनी। **'कलयुग केवल नाम अधारा'** के मन्त्र ने उसे इतना दबोच रखा था कि वह अपनी **'गायत्री माता'** को भी भूल गया था। सहसा वह उठ खड़ा हुआ। उसने पण्डित जी के और उसके बाद अपनी मौसी के पैर छुए और वहाँ से चटपट भाग-सा चला। वे दोनों ही प्राणी जहाँ-के-तहाँ बैठे रोते रहे।

५. स्वामी जी के दर्शन

जल्दी-जल्दी चलकर रामदास गाँव के बाहर हो गया। वह गाँव के बाहर एक वृक्ष के नीचे ठहर गया। उसने अपने मन में कहा कि 'यहाँ ठहरना ठीक नहीं है, वरन् अच्छा तो यह होगा कि इस प्रान्त ही से बाहर जाऊँ। यहाँ इस बात का बराबर डर बना रहेगा कि कहीं अपने लोग न मिल जायँ और फिर माया-मोह का झगड़ा शुरू हो। बाबा जी ने बताया है कि **'राम'-नाम** की खेती करो। इसी से परम-सुख मिलेगा। मैं भी यही ठीक समझता हूँ, परन्तु मौसा जी कुछ और ही कहते हैं। खैर, यह सब पीछे देखा जाएगा। अभी तो यहाँ से भाग चलना ही ठीक है।' यह विचार कर उसने गङ्गा जी के किनारे का मार्ग पकड़ लिया।

गङ्गाजी के किनारे-किनारे का मार्ग कोई अच्छा मार्ग नहीं था। उस पग-डण्डी से तट-वर्ती लोग

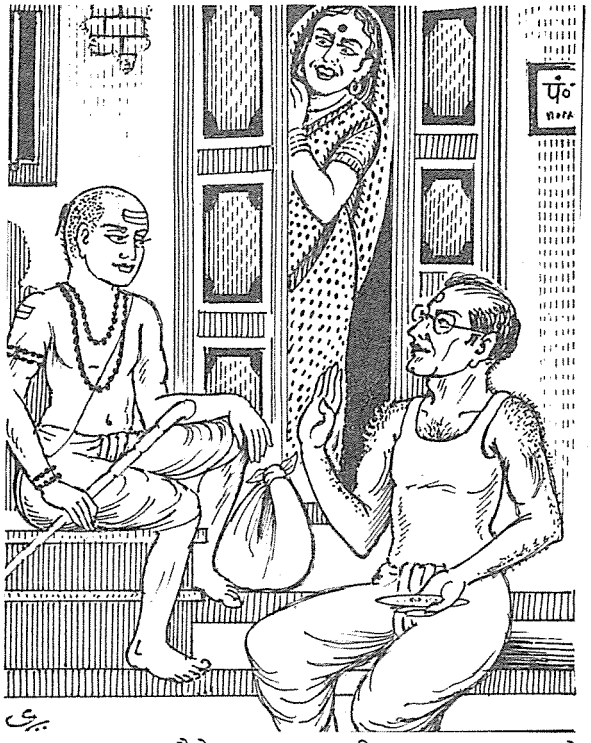

या रामदास जैसे साधु-सन्त ही प्रायः चला करते थे। कहीं ऊँचा तो कहीं नीचा, कहीं नाला तो कहीं झाड़ियों का झुरमुट! ऐसे ही गङ्गा के कगार पर से एक लकीर-सी पग-डण्डी पर रामदास चुपचाप किन्तु दृढ़ता से चला जा रहा था। वह उदास-सा था, उसके मुख पर आश्रम में रहते समय की सी प्रसन्नता की झलक की छाया तक न थी। उसका दुःखी होना स्वाभाविक था। उसके बाबा जी दिवङ्गत हो गए थे। तब वह कैसे न दुःखी हो? परन्तु **'राम-नाम'** का सम्बल पा जाने से उसमें एक प्रकार का अनूठा धैर्य आ गया था। इसी से वह अविचल भाव से अपने मार्ग पर मुस्तैदी से चला जा रहा था। मार्ग में उसे गङ्गा-तट पर दो-एक गाँव भी मिले, वहाँ के दो-एक सज्जनों ने उससे रुकने का आग्रह भी किया, परन्तु वह कहीं भी नहीं ठहरा, अपने मार्ग पर चलता ही रहा।

सूर्य भगवान् जब अस्ताचल पर जा पहुँचे और जङ्गल के पक्षी बसेरा लेने के पहले का अपना कल-रव करने लगे, तब रामदास भी रुककर

सोचने लगा कि 'अँधेरा होने के पहले ही अब कहीं ठहर जाना ठीक होगा।' उसने इधर-उधर निगाह दौड़ाई, दूर तक कोई बस्ती न दिखाई दी, वह फिर चल पड़ा। उसने सोचा, 'यदि आगे कोई बस्ती मिल जाएगी, तो वहाँ ठहर जाऊँगा। नहीं तो जब रास्ता नहीं दिखाई देगा, तब यहीं कहीं गङ्गा जी के किनारे किसी वृक्ष के नीचे रात बिता लूँगा।'

कुछ दूर चलने के बाद जब अँधेरा घिर आया, तब गङ्गा जी के किनारे उसे आदमियों की कुछ चहल-पहल-सी जान पड़ी। वह बढ़ता ही गया। काफी अँधेरा घिर आया था। अब वह उस स्थान के निकट पहुँच गया था, जिसको लक्ष्य कर वह बढ़ा था। उसे अपने आगे एक बाग के भीतर आग जलती हुई दिखाई दी और उसको घेर कर बैठे हुए दो-तीन आदमी भी; तुरन्त ही उनके पास पहुँच गया। आगन्तुक को देखकर उन बैठे हुओं में से एक ने पूछा — बाबा जी का कहाँ से आगमन हो रहा है? आइए।

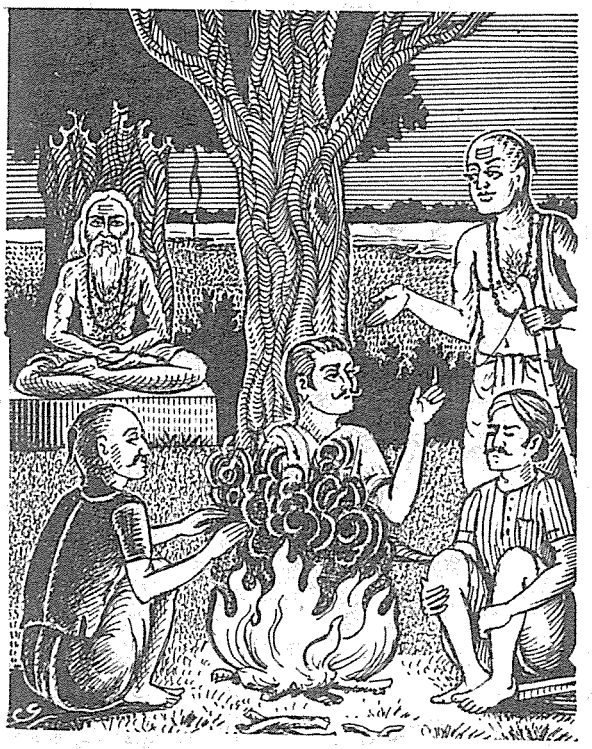

रामदास — बहुत दूर से नहीं। यह किसका स्थान है? क्या मैं यहाँ ठहर सकता हूँ?

दाहिनी ओर से आवाज आई — यह सबका स्थान है। प्रसन्नता के साथ आप यहाँ विश्राम कर सकते हैं।

उस ओर घूमकर रामदास ने देखा। कुछ ही दूर पर एक छोटे से चबूतरे पर एक भव्य मूर्ति दिखाई दी। जिस मधुर वाणी से उसका ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हुआ था, उससे कहीं अधिक आकृष्ट किया जलती हुई आग के क्षीण प्रकाश में दिखाई पड़नेवाली एक भव्य तेज-पूर्ण मूर्ति ने। रामदास ने दो कदम धीरे से बढ़कर बड़े भक्ति-भाव से नत-जानु होकर उन महात्मा को प्रणाम किया।

महात्मा जी ने कहा — आप तो साधु हैं। यह क्या करते हैं? बैठिए, वह आसन पड़ा है।

यह कहकर उन्होंने आसन की ओर सङ्केत किया।

रामदास — (हाथ जोड़कर) महात्मा जी, मैं ठीक बैठा हूँ। भेष से ही मैं साधु हूँ। अभी तो मैं साधु का क, ख, ग भी नहीं जानता।

महात्मा जी — आप कहाँ से आ रहे हैं?

रामदास — रामपुर घाट से।

महात्मा जी — वहाँ के राघवानन्द जी को जानते हो?

रामदास — इसी पिछली 'देवोत्थानी एकादशी' को उन्होंने मुझे अपना शिष्य बनाया था। मार्ग-शीर्ष के कृष्ण पक्ष की द्वितीया को वे परम धाम को पधार गए। उस आश्रम में उनके प्रथम शिष्य रघुनाथदास जी आ गए हैं।

महात्मा जी बोले — मैं सब समझ गया। राघवदास जी का मैंने दर्शन किया है। बड़े अच्छे साधु थे। कोई चिन्ता नहीं। (आग के पास बैठे हुए एक सज्जन की ओर मुँह करके) मिश्र जी, बाबा जी को ले जाओ। इनके हाथ-पैर धुलाओ और कुटिया में इनके विश्राम करने की व्यवस्था कर दो। (रामदास की ओर मुँह करके) क्यों बाबा

जी, आपकी भिक्षा के लिए भी कोई प्रबन्ध किया जाए?

रामदास — स्वामी जी, मैं आपका सेवक हूँ। मुझे आप बाबा जी क्यों कहते हैं? मुझे आप रामदास ही कहने की कृपा करें। दोपहर में मैंने भिक्षा की है, अब कोई जरूरत नहीं है।

यह कहकर वह उठ खड़ा हुआ। मिश्र जी उसे वहाँ से बाहर ले गए। रामदास के हाथ-पैर धुलाकर उसकी तूँबी में जल देकर कुटिया में ले गए। कुटी के बाहर बरामदे में पुआल की एक चटाई पड़ी हुई थी। **मिश्र जी ने रामदास से कहा** — आप इसी चटाई पर विश्राम कीजिए।

रामदास तूँबी रखकर चटाई पर बैठ गया और **'हरि-स्मरण'** करने लगा। उधर मिश्र जी अपने साथियों के पास जा बैठे। स्वामीजी के आदेश से उन्होंने अग्नि शान्त कर दी। फिर वे तीनों ही जन स्वामी जी को प्रणाम कर बस्ती की ओर चले गए। अब तक रात का अँधेरा काफी घनीभूत हो गया था।

उन लोगों के चले जाने पर स्वामी जी भी उठे। वे कुटी में आए। **उन्होंने कहा** — रामदास जी, तुम्हारे पास ओढ़ने को तो कुछ नहीं है। अब जाड़ा पड़ने लगा है।

यह कहते हुए किवाड़ खोलकर वे कोठरी में घुस गए और वहाँ से एक कम्बल लिए हुए बाहर आकर बोले — लो, यह कम्बल ओढ़ना। हरि ने मानों तुम्हारे ही लिए भेजा है। उस दिन एक सज्जन बड़े प्रेम से दे गए थे।

रामदास — स्वामी जी, आप क्या ओढ़ेंगे?

"मैं तो कुछ ओढ़ता नहीं। मैं ले भी नहीं रहा था, परन्तु जब उन्होंने बड़ा भाव दिखाया, तब रख लिया। सोचा, यदि कोई महात्मा आएगा, तो उसे दे दूँगा।"

"स्वामी जी, सचमुच यह मेरे बड़े काम आएगा। जाड़ा पड़ने लगा है। सोच रहा था कि कैसे काम चलेगा। आपकी दया से मेरी कठिनाई दूर हो गई।"

"अच्छा, अब आराम करो।" यह कहते हुए स्वामी जी फिर बाहर चले गए। इधर रामदास कम्बल ओढ़कर पड़ रहा और शीघ्र ही गहरी नींद में हो गया। जब वह सवेरे सोकर उठा, तब उसकी निगाह सामने एक चबूतरे पर ध्यानस्थ स्वामी जी की भव्य मूर्ति पर जा पड़ी। प्रशस्त ललाट पर भस्म का त्रिपुण्ड उनके तेज-पूर्ण मुख-मण्डल के तेज को दूना कर रहा था। सारे अङ्गों पर भस्म की विमल रेखाएँ उनके गहरे आस्तिक भाव का परिचय दे रही थीं। रामदास ने उठकर उन्हें बार-बार मन-ही-मन प्रणाम किया। स्वामी जी के भव्य रूप का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा था। इसके पहले उसने ऐसी तपोपूत मूर्ति कभी नहीं देखी थी। वह आतङ्कित-सा हो उठा था। वह चुपचाप वहाँ से उठकर बाहर आया और धीरे-धीरे गङ्गा जी के तट की ओर चला गया। शौच आदि से निवृत्त होकर उसने स्नान किया, फिर तिलक आदि लगाकर पूजा-पाठकर कुटी को लौट आया। उसने देखा

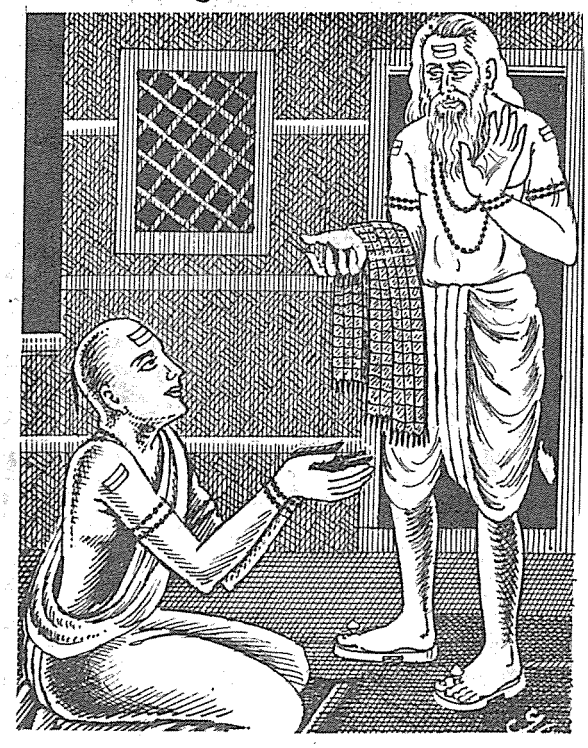

कि स्वामी जी कुटी के सामने आँगन में चुपचाप टहल रहे हैं। जब उनकी निगाह रामदास पर पड़ी? तब **उन्होंने कहा** — अच्छा, स्नान कर आए। बहुत अच्छा किया। अब कहो, तुम्हारा क्या विचार है?

रामदास अब तक स्वामी जी के निकट पहुँच गया था। नत-जानु होकर उनसे उनको भक्ति-भाव से प्रणाम किया। फिर खड़े होकर उसने कहा — जो आज्ञा।

"इस बार माघ में **'कुम्भ-पर्व'** है। मैं आज ही, नहीं-नहीं, अभी-अभी आज प्रयाग के लिए प्रस्थान करूँगा। लम्बी यात्रा है, पैदल चलना है, मार्ग के अलग कष्ट हैं। यदि तुम इस कुटी में रहना चाहो, तो यहाँ के लोगों से कह दूँ। गङ्गा-स्नान करो और भजन करो। या जो फिर तुम्हारी इच्छा हो।"

रामदास थोड़ी देर चुपचाप खड़ा रहा। **फिर उसने कहा** — स्वामी जी महाराज, मैं एक अबोध नव-युवक हूँ। भगवान् की मैं इसे कृपा समझता हूँ कि मुझे आपके दर्शन मिले हैं। मैं आपकी शरण में हूँ। जिस बात में आप मेरा हित समझें, वही करने की आज्ञा दें।

स्वामी जी चुपचाप सोचते-से रहे। **उन्होंने कहा** — अच्छा, तो चलो तुम भी 'प्रयागराज'। 'तीर्थ-स्नान' से तुम्हारा कल्याण ही होगा। जल्दी तैयार हो जाओ। कम्बल आदि सँभाल लो।

थोड़ी ही देर में बस्ती के आठ-दस व्यक्ति आश्रम में पहुँचे। उनमें से एक सज्जन की ओर लक्ष्य करके **स्वामी जी ने कहा** — मिश्र जी, आप अपनी कुटिया को सँभालिएगा। लो, अब मैं चला।

"हरि ओम्, हरि ओम्" कहकर स्वामी जी चल पड़े। सभी लोगों ने रुँधे हुए कण्ठ से स्वामी जी को नमो-नारायण किया और उनके साथ कुछ दूर तक पीछे-पीछे गए, परन्तु घूमकर हाथ से स्वामी जी ने उन सबको लौट जाने का सङ्केत किया और वे द्रुत गति से चल पड़े। रामदास उनके पीछे था।

★ ★ ★

निवेदन

'कथा-साहित्य' की अपनी विशेषता है। एक तो इसके पढ़ने में क्या बालक और क्या बड़े-बूढ़े सभी का मन सहज ही तन्मय हो जाता है। दूसरे, 'कथा-साहित्य' की एक-एक घटना से सभी का मनो-विनोद तो होता ही है; साथ ही जिन सिद्धान्तों के कारण कथा के पात्रों का उत्थान या पतन होता है, उसकी ओर भी ध्यान अपने आप आकृष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में 'कथा-साहित्य' का लोगों के चरित्र-निर्माण, मार्ग-दर्शन में काफी प्रभाव पड़ता है।

'कथा-साहित्य' की उक्त विशेषताओं को ध्यान में रखकर हमारे यहाँ पुराण, इतिहास के रूप में विशाल साहित्य की रचना हुई थी, जिसका महत्व आज भी सर्वत्र माना जा रहा है। किन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि साधकों के लिए साधना-परक 'कथा-साहित्य' का बहुत दिनों से नितान्त अभाव था। 'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी का ध्यान जब इस ओर आकर्षित हुआ, तब उन्होंने 'धर्म-मार्ग पर', 'साधक का सम्वाद' नामक उपन्यास लिखे। इन उपन्यासों से लोगों को साधना-विषयक आवश्यक जानकारी तो प्राप्त होती ही है, साथ-ही लोगों का कल्याण भी होता है। — सम्पादक

धर्म-मार्ग पर

६. तीर्थ-राज की ओर

दोपहर तक स्वामी जी बराबर चलते रहे। मार्ग में क्षण भर के लिए वे कहीं भी नहीं रुके। रामदास पसीने से लथ-पथ हो रहा था, परन्तु उसने स्वामी जी का पीछा नहीं छोड़ा। ठीक दोपहर वे एक गाँव में पहुँचे। गाँव के बाहर गङ्गा जी के कगार के ऊपर एक बहुत सुन्दर **'शिव-मन्दिर'** स्थित था। स्वामी जी वहीं जाकर ठहर गए। दो एक सज्जन मन्दिर में मौजूद थे। उन्होंने जल्दी ही आकर स्वामी जी के चरण-स्पर्श किए और प्रार्थना-पूर्वक उन्हें ले जाकर पास ही बनी हुई एक दालान में आसन दिया। फिर उनमें से एक दौड़कर एक घड़ा जल ले आया और एक थाल में उनके पैर धोए।

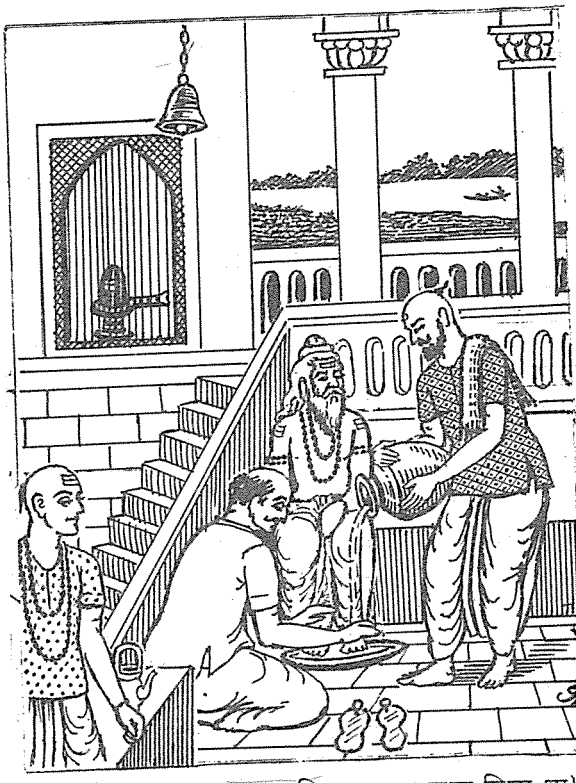

अब तक गाँव में स्वामी जी के आगमन की सूचना पहुँच गई थी। फलतः कई सज्जन दर्शनार्थ आ गए। स्वामी जी सबसे कुशल-प्रश्न पूछते। सभी लोग स्वामी जी के दर्शनों से अपने को कृतार्थ-सा समझ रहे थे। थोड़ी देर में स्वामी जी के लिए एक सज्जन भिक्षा भी ले आए। एक स्थान में आसन बिछा दिया गया और स्वामी जी भिक्षा करने को बैठे। जो सज्जन भिक्षा लेकर आए थे, उन्होंने एक पत्तल में भिक्षा-सामग्री रख दी। शेष सारी सामग्री उन्होंने रामदास के आगे रख दी। वे सज्जन स्वामी जी की रुचि से पूर्णतया परिचित थे। स्वामी जी इस ग्राम में प्रायः आते-जाते रहे हैं, यह बात रामदास को लोगों के व्यवहार से भले प्रकार प्रकट हो गई। स्वामी जी के आदेश से रामदास ने भी भगवान् को भोग लगाकर प्रसाद पाया। जब स्वामी जी भिक्षा करने लगे, तभी बहुत से लोग चले गए थे। केवल दो-तीन सज्जन रह गए थे। उन्होंने स्वामी जी के विश्राम के लिए वहाँ पर पड़े हुए तख्त पर समुचित आसन लगा दिया था। स्वामी जी उसी पर जाकर आसीन हो गए। जब रामदास भिक्षा कर चुका, तब उन लोगों ने उस स्थान को साफ कर दिया और उनके विश्राम के लिए वहीं एक चटाई डाल दी। रामदास भी आकर उस चटाई पर बैठ गया।

स्वामी जी ने कहा — रामदास, यदि हम लोग आज की तरह प्रति-दिन चलेंगे, तो **'संक्रान्ति'** के दिन बड़े मजे में **'प्रयाग'** पहुँच जाएँगे। जान पड़ता है तुमको चलने का अभ्यास नहीं है।

रामदास — हाँ महाराज, मुझे अवसर नहीं मिल है, परन्तु आपके आशीर्वाद से मैं यह यात्रा पूरी क

लूँगा।

स्वामी जी — तुम नौजवान हो, चाहोगे तो यह क्या, सभी यात्राएँ पार कर ले जाओगे।

रामदास — स्वामी जी, ढिठाई क्षमा हो, बिना गुरु-देव की कृपा के नहीं।

स्वामी जी हँसने लगे। **उन्होंने कहा** — बाबा राघवदास की तुमने पूरी कृपा प्राप्त की है। तब निराशा की बात क्यों कहते हो?

रामदास कुछ खिन्न-सा होकर बोला — हाँ महाराज, आप ठीक कहते हैं, परन्तु उनके न रहने पर मेरा मन डगमगा गया। सबसे पहले मौसा जी ने कहा कि तुमने अपनी **'कुल-परम्परा'** छोड़कर ठीक नहीं किया है। वह बात रह-रहकर मन में उठा करती है। इधर जब आपकी शरण में आया, तब दूसरी ही बात मन में उठ खड़ी हुई है। मैं देखता हूँ कि जो राह मैं चल रहा हूँ, वह ठीक नहीं है।

स्वामी जी गम्भीर होकर बोले — यही तुम भूल कर रहे हो। तुम्हारे गुरु-देव ने जो तुम्हें बताया है, उसी को दृढ़ता से पकड़े रहो। तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा। जो मार्ग पकड़ा, सो पकड़ा, उससे हटना नहीं चाहिए। यदि इधर-उधर मन दौड़ाओगे, तो कुछ भी हाथ न लगेगा और जो हाथ लगेगा, उसे भी गँवा दोगे।

रामदास चुप हो रहा। उसने देखा कि स्वामी जी ध्यान-मग्न हो गए हैं। वह सारी राह स्वामी जी के सम्बन्ध में ही सोचता रहा था, परन्तु किसी नतीजे पर नहीं पहुँच पाता था। उनकी इस पहली बात-चीत से उसे बहुत कुछ ढाढ़स हो गया।

जब दिन ढलने लगा, तब एक-एक करके लोग स्वामी जी के दर्शनार्थ आने लगे। सन्ध्या होते-होते वहाँ एक बड़ी भीड़ जमा हो गई। स्वामी जी ने धर्म का उपदेश किया। उनके उपदेश का सारांश यही था कि **'सत्य का आचरण करो और ईश्वर को न भूलो?'** उपदेश की समाप्ति के बाद सब लोग चले गए। केवल चार-पाँच व्यक्ति बैठे रहे। उनसे स्वामी जी देर तक बातचीत करते रहे, उन्होंने स्वामी जी से ठहरने के लिए बहुत आग्रह किया।

स्वामी जी ने कहा — यदि मैं रुक जाऊँगा, तो **'संक्रान्ति'** के दिन **'प्रयाग'** नहीं पहुँच सकूँगा।

इस पर सब लोग शान्त हो गए। अँधेरा घिरता देख वे लोग भी उठकर चले गए। उनमें से एक नव-युवक बैठा ही रहा। **स्वामी जी ने कहा** — गिरिधारी, तुम भी जाओ, अँधेरा हो गया है। क्या कुछ कहना है?

गिरिधारी रुँधे हुए कण्ठ से बोला — पिता जी खाट से लग गए हैं। एक महीना हो गया है। आपके दर्शन चाहते हैं।

स्वामी जी थोड़ी देर तक कुछ सोचने-सा लगे। **फिर उन्होंने कहा** — बेटा गिरिधारी, तुम्हारे पिता मुझे अच्छी तरह जानते हैं। तुम नहीं करोगे, परन्तु वे मेरी बात का विश्वास करते हैं। उनसे कह देना

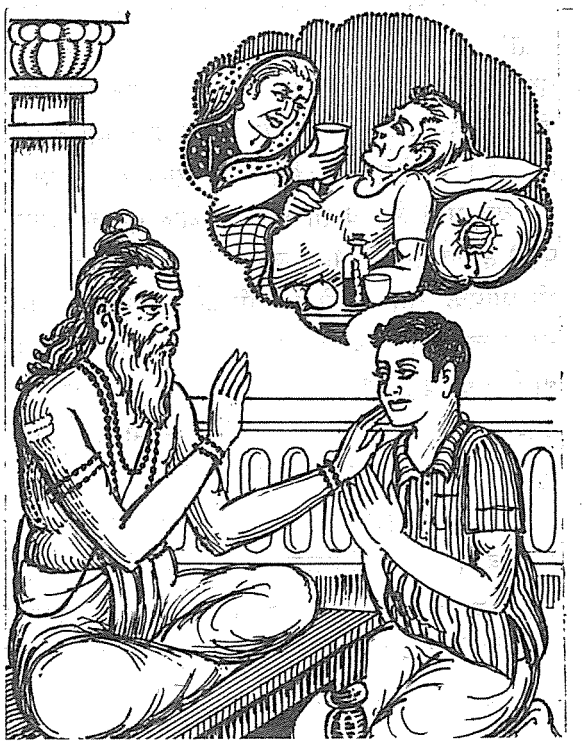

कि वे बहुत जल्दी रोग-मुक्त हो जाएँगे और मैं अभी उनके हाथ की बनाई भिक्षा दस वर्ष तक करूँगा। जाओ।

स्वामी जी ने अपनी बात ऐसे ढङ्ग से कही कि गिरिधारी स्तम्भित हो गया। वह चुपचाप उठा, स्वामी जी को प्रणाम किया और धीरे-धीरे बस्ती की ओर चला गया।

रामदास पर भी स्वामी जी के कथन का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसकी बुद्धि किंकर्तव्य-विमूढ़-सी हो गई थी। प्रयत्न करने पर भी मुँह से शब्द नहीं निकल रहा था। **इतने में स्वामी जी ने कहा** — रामदास, अब सो जाओ। कल तड़के ही यहाँ से चलना है।

''जो आज्ञा'' कहकर रामदास अपनी चटाई पर लेट रहा और थका होने के कारण वह शीघ्र ही सो भी गया। एकाएक कोई १ बजे रात में उसकी नींद खुल गई। उसने देखा कि स्वामी जी तख्त पर बैठे हुए हैं। वह फिर सो गया। ३ बजे उसकी नींद फिर खुल गई। उसने स्वामी जी को पूर्व-वत् ही बैठे देखा। उसे आश्चर्य हुआ। उसके मन में तरह-तरह के तर्क-वितर्क उठने लगे। क्या स्वामी जी रात भर बैठे ही रहते हैं? क्या वे रात भर ध्यान ही किया करते हैं? क्या वे सोते ही नहीं? यदि सोते हैं, तो क्या बैठे-बैठे सोते हैं? ये तो बड़े विलक्षण महात्मा जान पड़ते हैं। खाते-पीते भी कुछ नहीं हैं! जो खाते हैं, वह भी पौष्टिक नहीं! इतने पर भी शरीर हृष्ट-पुष्ट और रूप कुन्दन की तरह दमकता रहता है! इसी तरह की बातें वह पड़े-पड़े सोचता-विचारता रहा। उसके आश्चर्य की सीमा न रही। एकाएक **स्वामी जी ने धीरे से आवाज दी** — रामदास, रामदास!

रामदास तुरन्त उठ बैठा। वह जाग ही रहा था। **उसने कहा** — हाँ महाराज, क्या आज्ञा है?

स्वामी जी ने उठते हुए कहा — आओ चलो, स्नानादि से निवृत्त हो लें। तब यात्रा की ठानें।

यह कहकर वे गङ्गा जी की ओर चल पड़े। रामदास भी उनके पीछे था। कगार से उतर कर गङ्गा जी की रेती पार कर वे गङ्गा-तट पर पहुँचे। स्नानादि से छुट्टी पाकर वे शीघ्र ही मन्दिर को लौट आए। वहाँ से उन्होंने अपनी यात्रा फिर प्रारम्भ की।

आगे-आगे स्वामी जी और पीछे-पीछे रामदास था। रह-रहकर रामदास स्वामी जी के सम्बन्ध में विचार करता चला जा रहा था। उनकी सभी बातों पर उसे आश्चर्य होता था। वह उन्हें पहचान न पाता था। विचार करते-करते जब थक जाता, तब यही कहता कि **'स्वामी जी कोई सिद्ध महात्मा हैं और यह भगवान् की ही कृपा है कि उसे ऐसे महात्मा का अनायास ही सङ्ग प्राप्त हो गया है।'** यह सोचकर वह पुलकित हो उठता। स्वामी जी अपनी स्वाभाविक द्रुत-गति से चुपचाप चले जा रहे थे, परन्तु आज का मार्ग बहुत ही ऊबड़-खाबड़ था। नालों और झाड़ियों के झुरमुटों ने उसे अधिक कष्ट-प्रद बना दिया था, परन्तु स्वामी जी उस मार्ग से उसी प्रकार चले जा रहे थे, मानों किसी सड़क पर जा रहे हों। परन्तु रामदास को पग-पग पर कठिनाई का सामना करना पड़ता। तथापि वह भी उत्साह के साथ बराबर चलता रहा। दोपहर होते-होते वे एक ऐसे मैदान में पहुँचे, जहाँ से दूर-दूर तक बस्ती नहीं दिखाई दे रही थी। गङ्गा जी किनारा छोड़ गई थीं। बीच में बड़ा भारी कछार मीलों तक फैला हुआ दिखाई दे रहा था। चलते-चलते उन्हें कगार के पास एक टूटा हुआ पक्का कुआँ मिला। उसके पास ही तीन-चार वृक्ष थे। उनमें एक आँवले का वृक्ष था, जिसके नीचे बहुत से आँवले इधर-उधर पड़े थे। स्वामी जी यहीं एक वृक्ष के नीचे ठहर गए। उन्होंने कहा — रामदास, आज यहीं ठहरना होगा।

रामदास—प्रभो, यहाँ तो कोई बस्ती भी नहीं दिखाई देती, गङ्गा जी भी बहुत दूर दिखाई देती हैं, रस्सी भी पास नहीं है कि कुएँ से ही पानी निकाल कर आपके पैर धोऊँ।

मन्द-मन्द मुस्कराते हुए **स्वामी जी बोले** — आज

यहीं ठहरा जाय। **हम लोगों को हरेच्छा पर ही अपने आपको छोड़कर रहना चाहिए। यही 'सिद्धि का मार्ग' है।**

यह कहकर स्वामी जी जमीन पर बैठ गए। रामदास ने चटपट उससे अच्छी जगह पर अपना कम्बल बिछाते हुए कहा — प्रभो, यहाँ आइए।

स्वामी जी वहाँ से उठकर कम्बल पर जा बैठे। रामदास अपने वस्त्र से स्वामी जी के पैरों की धूल साफ करने लगा। इसके बाद वह भी जमीन पर बैठकर सुस्ताने लगा। स्वामी जी पल्थी मारकर ध्यान-मग्न हो गए। कोई एक घण्टे के बाद रामदास को एक ओर भेड़ों की एक भीड़ आती हुई दिखाई दी। उनके साथ तीन-चार चरवाहे थे। उनमें से एक वयस्क चरवाहा कुएँ की ओर आता हुआ जान पड़ा। जब वह समीप आ गया, तब उसने स्वामी जी के पास जाकर विनम्र भाव से प्रणाम किया, फिर हाथ जोड़ कर कहा — **बाबा जी, आप कहाँ जा रहे हैं? कहाँ से आ रहे हैं?**

स्वामी जी उसकी आहट पाकर अपनी **'समाधि-निद्रा'** से जाग पड़े थे। **उन्होंने कहा** — **'प्रयाग-राज'** जा रहा हूँ।

चरवाहा — बाबा जी, मेरा गाँव पास के नाले के उस पार है। चलिए, वहीं ठहरिए। यहाँ जङ्गल में तो आपको कष्ट होगा।

स्वामी जी — मैं तो बस्ती में नहीं जाता, आज यहीं रहूँगा।

चरवाहा — बाबा जी, यहाँ आपको भोजन कहाँ मिलेगा! (रामदास की ओर देखकर) आप लोगों के पास तो रस्सी भी नहीं है, अपनी तूँबी दीजिए, मैं आपको पानी भर दूँ।

रामदास — नहीं, अपनी रस्सी दे दो, तो मैं पानी भर लूँ।

चरवाहे ने लोटे से अपनी रस्सी खोल दी। वह रस्सी लेकर कुएँ पर गया और शीघ्र ही अपनी तूँबी भर लाया। स्वामी जी के उसने पैर धोए, उनका हाथ-मुँह धुलाया और पानी भी पिलाया। फिर वह

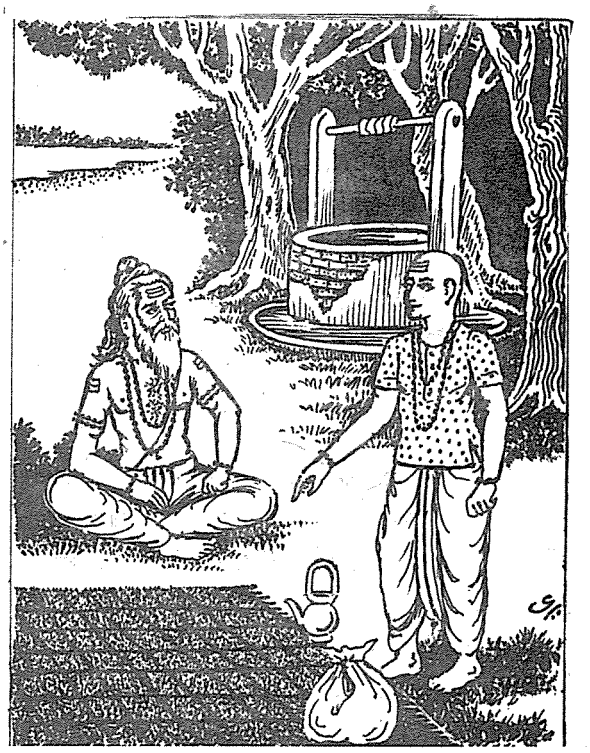

कुएँ पर गया और पानी निकाल कर अपने हाथ-पैर धोए तथा स्वयं भी उसने पानी पिया। पानी बड़ा मीठा था। इसके बाद उसने एक तूँबी और भर ली। जब वह स्वामी जी के पास आया, तब उसने वहाँ चरवाहे को नहीं पाया। **उसने कहा** — चरवाहा कहाँ चला गया? वह अपनी रस्सी तो यहीं छोड़ गया!

स्वामी जी ने कहा — नहीं-नहीं, वह अभी यहाँ आता है, हम लोगों के ही प्रबन्ध में गया है।

रामदास चुप ही रहा। स्वामी जी फिर ध्यानस्थ हो गए। कुछ देर के बाद उसे एक ओर से तीन-चार आदमी आते हुए दिखाई दिए। जब नजदीक आए, तब उसने देखा कि वे सब भोजन बनाने का सामान लिए हुए आ रहे हैं। स्वामी जी के पास पहुँच कर सबने उनको प्रणाम किया। उनमें से एक ने कहा — महाराज, मैं ब्राह्मण हूँ। आज्ञा दें, तो मैं आपके लिए भिक्षा तैयार कर दूँ।

स्वामी जी — जो तुम्हारी इच्छा।

और वे सब लोग कुएँ के पास जाकर भिक्षा तैयार करने के काम में लग गए। घण्टे भर के भीतर ही उक्त ब्राह्मण ने पूड़ी, साग और खीर तैयार कर दी। फिर वह सब स्वामी जी के पास लाकर रख दी। स्वामी जी उठे और हाथ धोकर एक ओर जमीन पर बैठ गए। **उन्होंने हाथ फैलाकर कहा** — एक पूड़ी और साग रख दीजिए।

उस **ब्राह्मण ने चकित होकर पूछा** — एक ही पूड़ी?

स्वामी जी ने कहा — हाँ, एक ही।

उदास मन से उस ब्राह्मण ने एक पूड़ी और कुछ साग स्वामी जी के हाथ में रख दिया। जब स्वामी जी उसे खा गए, तब **उसने फिर कहा** — महाराज, कुछ और दूँ?

स्वामी जी ने कहा— नहीं, बस।

उस ब्राह्मण ने फिर कहा — अच्छा, तो कुछ खीर ले लें!

स्वामी जी ने कहा — अच्छा, तो थोड़ी-सी दे दो।

और उन्होंने हाथ फैला दिया। ब्राह्मण ने थोड़ी-सी खीर स्वामी जी के हाथ में रख दी, जिसे वे पा गए। फिर उन्होंने जल-पान किया और हाथ-मुँह धोकर अपने आसन पर जा बैठे। इसके बाद ब्राह्मण ने रामदास को एक पत्तल में भिक्षा परोस दी। जब वे खा-पी चुके, तब बचे हुए प्रसाद को उन सब लोगों ने पाया। बर्तन आदि साफ कर जब वे लोग स्वामी जी के पास आ बैठे, तब सूर्यदेव अस्तंगत हो रहे थे। स्वामी जी ने पहले एक-एक करके उन सबका कुशल पूछा। फिर उन्हें **'धर्म का उपदेश'** किया। उन्होंने कहा कि —

''जो लोग अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं, घर में रहकर पुरुषार्थ द्वारा अपने कुटुम्ब का यथा-विधि पालन-पोषण करते हैं, सत्य-निष्ठ रहकर परोपकार-रत रहते हैं और किसी को हानि नहीं पहुँचाते हैं, अन्त-काल आने पर वे परम-धाम को ही पहुँचते हैं। उनकी सद्-गति ही होती है। यह ध्रुव सत्य है— यही सब धर्मों का सार है, परन्तु यदि इसके साथ-साथ जो व्यक्ति ईश्वर का भी भजन करता रहता है, वह अन्त में मुक्ति-पद का अधिकारी हो जाता है। आप लोगों को अपने कर्तव्यों का ज्ञान होना चाहिए, उनका दृढ़ता से पालन भी होना चाहिए और इसके साथ-ही-साथ आप लोगों में ईश्वर की सच्ची भक्ति भी होनी चाहिए। यदि ऐसा करोगे, तो यह जीवन तो बन ही जाएगा, पर-लोक भी बन जाएगा।''

स्वामी जी के उपदेश का उन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। सभी लोग उनसे दो-एक दिन ठहरने के लिए आग्रह करने लगे, परन्तु स्वामी जी अपने निश्चय पर अडिग रहे। वे रात भर वहीं पड़े रहना चाहते थे, परन्तु जब स्वामी जी ने बार-बार कहा, तब उनके चरणों के आगे अपने माथे टेक वे चुपचाप वहाँ से बिदा हो गए। हाँ, वह चरवाहा रामदास को अपनी रस्सी देता ही गया। **उसने कहा**— मार्ग में यह आपको बड़ा काम देगी।

उन सबके चले जाने पर **स्वामी जी ने कहा** — रामदास! लो, यह कम्बल आधा बिछा लो और आधा ओढ़ लो और पड़कर सो जाओ।

यह कहकर स्वामी जी उठ खड़े हुए और इधर-उधर टहलने-से लगे। रामदास कुछ न बोला। उसने चुपचाप आज्ञा का पालन किया। वह स्वामी जी के स्वभाव से बहुत-कुछ परिचित हो गया था। कम्बल पर पड़ते ही वह शीघ्र ही गहरी नींद में हो गया। पूड़ी पेट भर जो खाई थी, कुछ उसका प्रभाव और कुछ थकावट का।

तड़का होते ही स्वामी जी ने रामदास को जगाया। फिर शौचादि से निवृत्त होने पर उसने **स्वामी जी** को स्नान कराया और जब वह भी स्नान कर चुका, तब स्वामी जी फिर **'प्रयाग'** की ओर आगे बढ़े।

धर्म - मार्ग पर

७. तीर्थ-राज प्रयाग मे

इस प्रकार कभी जङ्गल में, कभी बस्ती के किनारे ठहरते हुए, कभी खाते-पीते, तो कभी उपवास करते हुए, उन्होंने **'प्रयाग-राज'** की लम्बी यात्रा समाप्त की और ठीक संक्रान्ति के दिन तड़के ही **'सङ्गम-तट'** पर पहुँच कर उन्होंने **'सङ्गम'** में डुबकी भी लगाई। इसके बाद वे संन्यासी - बाड़े में गए, जहाँ **स्वामी जी** ने अपने अखाड़े में प्रवेश किया। वहाँ के सभी संन्यासियों ने **स्वामी जी** का स्वागत किया। **स्वामी जी** सीधे **महन्त जी** के पास पहुँचे और सुमधुर वाणी में एक स्तुति पढ़कर उनका अभिवन्दन किया। **महन्त जी** ने बड़े आदर के साथ बैठाया और कुशल-प्रश्न पूछा। फिर **रामदास** की ओर सङ्केत करके पूछा— यह कौन है?

स्वामी जी— आपकी कृपा से सदैव आनन्द से रहता हूँ। जगत्-रूपी जो पुस्तक आपने मुझे पकड़ा दी है, उसी को पढ़ा करता हूँ और जो पढ़ पाता हूँ, उसी का मनन किया करता हूँ। (**रामदास** की ओर मुँह करके) यह एक भगवद्-भक्त नव-युवक है। ब्राह्मण बालक है, अपना नाम **'रामदास'** बतलाता है।

यह कहकर **स्वामी जी** आनन्द-मग्न हो गए। **महन्त जी** ने पास बैठे हुए संन्यासियों में से एक संन्यासी को लक्ष्य करके कहा— **रामाश्रम!** अपने **परमहंस जी** को उनकी कुटिया में ले जाओ। उनकी सुख-सुविधा का भार सदा की भाँति तुम्हारे ही ऊपर है। (फिर **रामदास** की ओर मुँह करके) और बेटा **रामदास!** तुम रात में मेरे इसी तम्बू में यहीं सोया करना। अपना कम्बल और तूँबी मेरे तख्त के नीचे रख दो। दिन में सत्सङ्ग करो, कथा-वार्ता सुनो, मेला देखो। भोजन नित्य मण्डली के साथ पा लिया करना।

इसके बाद **स्वामी जी** और **रामदास, रामाश्रम**

के साथ हो लिए। **रामदास** की प्रसन्नता की सीमा न थी। **'तीर्थ-राज प्रयाग'** के **'कुम्भ'** के अवसर के **'सङ्गम-तट'** के मनोरम दृश्यों ने उसे विस्मित कर दिया था। अपने जीवन में उसने पहली बार इस विस्मय-कारक उद्बोधक हृदय-हारी विशाल धार्मिक समारोह को देखा था।

रामदास का प्रसन्न होना स्वाभाविक था। उसने **'प्रयाग-राज'** के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुना था। उसके पितामह प्रति वर्ष माघ में **'कल्प-वास'** करने के लिए **'प्रयाग'** आया करते थे। गाँव में जब वे अपने मित्रों के पास बैठते थे, तब **'माघ-मेले'** के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें किया करते थे। **रामदास** उनकी बातों को बड़े ध्यान से सुना करता था। वह अपने मन में

सोचने लगता कि "क्या कभी उसे भी **'प्रयाग का मेला'** देखने को मिलेगा। संयोग की बात! आज उसकी यह अभिलाषा अनायास ही पूर्ण हो गई। **'माघ-मेला'** क्या, उसे **'कुम्भ का मेला'** देखने को मिल गया!"

स्वामी जी की अनुमति से वह संन्यासी बाड़े को देखने के लिए निकल पड़ा। जिधर जाता, उधर ही उसे संन्यासियों के दर्शन होते। एक हाथ में कमण्डलु, तो दूसरा हाथ में दण्ड लिए हुए **'गङ्गा-स्नान'** करके लौट रहा है; तो कोई स्नान करने के लिए जा रहा है। कोई संन्यासी कशाय वस्त्र धारण किए हुए, ललाट पर त्रिपुण्ड विभूषित, गले में रुद्राक्ष की माला पड़ी हुई, आसन पर बैठा ध्यानस्थ है, तो कोई पास बैठे हुए धर्म-जिज्ञासुओं को धर्मोपदेश कर रहा है। इस बाड़े में जगह-जगह उसे ऐसे ही दृश्य दिखाई दिए। इन्हें देखकर वह मुग्ध हो गया। सबसे अधिक उसे वहाँ की शान्ति अच्छी लगी। सारे बाड़े का परिदर्शन कर वह अपने बाड़े में लौट आया और **महन्त जी** के डेरे में जाकर बैठ गया।

महन्त जी ने कहा — कहो **रामदास!** कहाँ गए थे?

रामदास— यहीं महात्माओं के दर्शन कर रहा था।

महन्त जी— अपना स्थान खूब अच्छी तरह पहचाने रहना। स्नान के दिनों यहाँ बड़ी भीड़-भाड़ होती है। कितने ही लोग भटक जाते हैं। तुम्हारा यह पहला ही अवसर है। इसलिए सावधान करता हूँ।

रामदास— महाराज, आप ठीक कहते हैं। इसी डर से मैं इस बाड़े के बाहर नहीं गया।

महन्त जी— नहीं, नहीं! खूब घूमो; साधु-संन्यासियों के दर्शन करो। कथा-वार्ता सुनो। यहाँ यही तो सबसे बड़ा लाभ है।

इसी बीच में भोजन तैयार होने की सूचना मिली। **महन्त जी** के आदेश से उनके बाड़े के संन्यासी लोग भोजन करने को एकत्र हुए। **रामदास** को भी भोजन मिला। केवल तीन मूर्तियों ने भोजन नहीं किया— एक **महन्त जी** ने, दूसरे **रामदास** के **स्वामी जी** ने, तीसरे स्वामी जी ने, परन्तु उसे शीघ्र ही एक **स्वामी जी** से मालूम हो गया कि वे तीनों ही महात्मा केवल

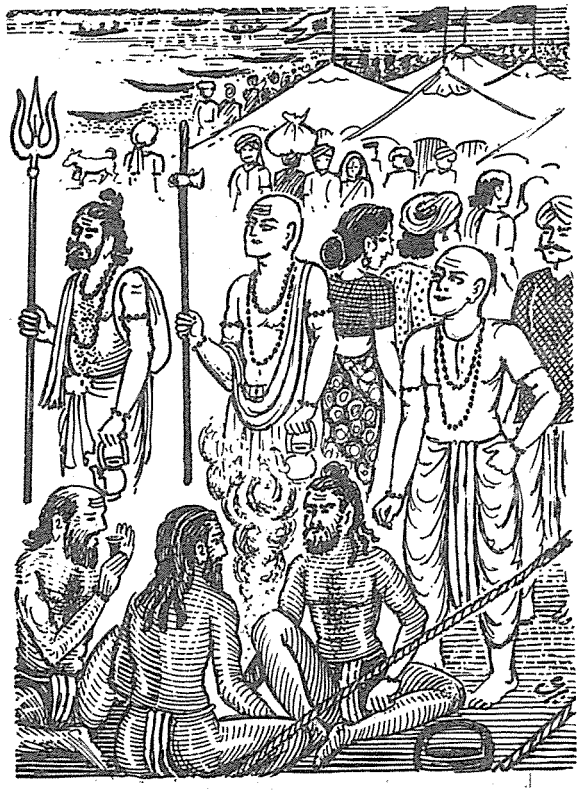

मूँग की खिचड़ी खाते हैं, जो उनके पास भेज दी गई है और उन सब लोगों को तो बढ़िया-से-बढ़िया पूड़ी - कचौड़ी, हलुवा, तरह-तरह की भाजी आदि खाने को मिली थी।

रामदास ने भोजनोपरान्त थोड़ी देर तक विश्राम किया। इसके बाद मेला देखने के लिए वह संन्यासी-बाड़े से बाहर निकला। बाहर आकर जब वह मेले की मुख्य सड़क पर आया, तब उसे एक नई ही दुनिया दिखाई दी। सबसे पहले उसने **'वैरागियों'** के साधु-मण्डल के दर्शन किए। उसके बाद उसने **'दस-नामी'** साधुओं के अखाड़ों में प्रवेश किया। फिर सड़क की दूसरी पटरी पर जाकर उसने **'उदासी'** साधु-मण्डल का दर्शन किया। इन सभी साधुओं के मण्डलों को देखकर वह बार-बार आश्चर्य में डूब जाता, भक्ति-भावना में सराबोर हो जाता।

इस तरह घूमते-घामते उसने सड़क की दोनों ओर के मेले के विशाल आयोजन को देख-भाल लिया। साधुओं के बाड़ों के सिवा जगह-जगह उसने पण्डितों को पुराण बाँचते, कथा-वार्ता कहते, धर्मोपदेश करते हुए भी सुना। वह यह सब देखते-भालते, आनन्द-सागर में डूबते-उतराते सन्ध्या होते-होते अपने संन्यासी - बाड़े में लौट आया। वह सीधा **महन्त जी** के स्थान में गया।

उस समय **महन्त जी** सामने बैठे हुए संन्यासियों से कुछ कह रहे थे। **रामदास** भी चुपचाप बैठकर सुनने लगा। **महन्त जी कह रहे थे**— "**काशी जी** में लोग मेरी निन्दा करते हैं। कहते हैं कि 'ये तो, जो भी आता है, उसी को संन्यासी बना देते हैं। यह नहीं देखते कि **'संन्यास'** का वह पात्र भी है।' मैं जानता हूँ कि लोग घर छोड़कर क्यों भागते हैं। जब उमर ढल जाती है, तब घर का काम ठीक-ठीक नहीं होता। इससे कलह होता है। भाई-भतीजे, यहाँ तक कि पुत्र और पतोहू तक, नित्य ही अपमान किया करते हैं। इससे तङ्ग आकर लोग भाग खड़े होते हैं। या जब घर में कुछ नहीं रह जाता, तब भागना पड़ता है। ऐसे लोगों की रक्षा **'साधु-समाज'** ही करता है। मैं अपना यह कर्तव्य मानता हूँ कि उन्हें धर्म की राह पर लगा दूँ। भगवद् - भजन करेंगे और भोजन की भी चिन्ता उन्हें न रहेगी। रही अधिकारी होने की बात, सो अधिकारी बनाए जाते हैं। जो व्यक्ति राह पकड़ लेगा, पूछता-पाछता पहुँच ही जाएगा, वह चाहे बुड्ढा हो चाहे जवान, परन्तु राह दिखाए जाने पर जो उसे नहीं पकड़ेगा, वह कदापि **काशी** नहीं पहुँचेगा, भले ही वह जवान और सावधान हो।" **'हरि ॐ हरि ॐ'** कहकर **महन्त जी** चुप हो रहे।

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। फिर इधर-उधर की बातें होने लगीं। **रामदास** पर **महन्त जी** के उपदेश का बड़ा प्रभाव पड़ा था। वह चुपचाप बैठा मन-ही-मन उनके कथन को दोहराता रहा। वह बार-बार यही कहता कि **'जो राह पकड़ लेगा, वह काशी अवश्य पहुँच जाएगा। मैंने भी एक राह पकड़ी है, क्या मैं अपने ध्येय तक नहीं पहुँचूँगा? एक दिन अवश्य पहुँचूँगा।'** इसी तरह सोचता - विचारता वह वहीं पड़कर सो गया। यह भी न जान सका कि सभा कब विसर्जित हुई और न यही कि कब किसने उसे कम्बल उढ़ा दिया है।

दूसरे दिन जब **रामदास** सोकर उठा, तब सूर्योदय हो चुका था। बाड़े के संन्यासी लोग जाग ही नहीं चुके थे, किन्तु सभी स्नान करके अपने **'यजन-पूजन'** में संलग्न थे। वह भी जल्दी-जल्दी उठा और शीघ्र ही बाड़े के बाहर चला गया। स्नान आदि से निवृत्त होकर जब वह लौटा, तब उसने सबसे पहले **महन्त जी** को श्रद्धा-पूर्वक प्रणाम किया। फिर वह अपने **स्वामी जी** के पास गया और उनको भी प्रणाम किया।

उसकी ओर गहरी दृष्टि से देखकर **स्वामी जी ने कहा— रामदास!** क्या बात है? आज तुम बहुत प्रसन्न दिखाई दे रहे हो।

रामदास— प्रभो! कल **महन्त जी** ने मेरी आँखें खोल दीं। उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति राह-राह चलता चलेगा, एक दिन वह पूछता-पाछता **'काशी'** अवश्य पहुँच जाएगा।

स्वामी जी— ठीक तो है, तुम्हारे गुरुदेव ने जो राह तुम्हें बताई है, उसे दृढ़ता से पकड़े रहोगे, तो अवश्य एक दिन अपने ध्येय को प्राप्त करोगे।

रामदास— प्रभो! परन्तु राह भी जगह-जगह पूछनी पड़ेगी और ध्येय के बारे में भी जानना पड़ेगा।

स्वामी जी— जो व्यक्ति राह-राह चलता रहेगा, उसे राह भी ज्ञात हो जाएगी और ध्येय भी।

यह कहकर वे गम्भीर हो उठे और उसके साथ ही ध्यानस्थ। अब **रामदास** को चुपचाप वहाँ से उठ आना पड़ा। वह बाड़े ही में इधर-उधर घूमने लगा। आज मेले की ओर जाने की उसकी इच्छा ही न हुई। घूमते हुए जब वह **योगी स्वामी जी** की कुटिया के सामने आया, तब उसने देखा कि वे बाहर बैठे धूप खा रहे हैं। उनकी भव्य सुन्दर मूर्ति को देखकर

वह बरबस उनकी ओर खिंच गया। बड़े विनय के साथ उनके समीप पहुँच कर उसने उन्हें प्रणाम किया और एक ओर हटकर चुपचाप बैठ गया। **योगी स्वामी जी ने उसकी ओर देखकर बड़े मधुर स्वर में पूछा**— कहो, तुम कहाँ से आए हो? तुम कौन हो?

रामदास— प्रभो! मैं एक साधारण बैरागी हूँ। मुझे लोग रामदास कहते हैं। (दूर की एक कुटिया की ओर उँगली से सङ्केत करके) उसी कुटी के **स्वामी जी** के साथ **'कुम्भ-स्नान'** करने **'प्रयाग'** आया हूँ। आपसे यह प्रार्थना है कि मुझे भी दया करके कुछ ऐसा उपदेश करें कि मैं अपने ध्येय तक पहुँच जाऊँ।

योगी स्वामी जी ने एक बार तीव्र दृष्टि से **रामदास** की ओर देखा। फिर वे अपनी उँगलियों में कुछ देर तक कुछ गिनते-से रहे। इसके बाद वे बोले— **रामदास!** ध्येय तक तुम अवश्य पहुँच जाओगे। पहुँचने में विलम्ब भी नहीं होगा, परन्तु इस मार्ग से नहीं, दूसरे मार्ग से।

रामदास— प्रभो! वह कौन सा मार्ग होगा? क्या मैं जान सकता हूँ? वह मार्ग मुझे कौन बताएगा? क्या यह भी बतलाने की कृपा करेंगे?

योगी स्वामी जी अपने आसन से उठते हुए बोले— तुम्हें सब कुछ (उँगली से उसी ओर सङ्केत करते हुए) उन्हीं **स्वामी जी** से मिलेगा। उन्हीं का पीछा पकड़े रहो।

यह कहते हुए वे अपनी कुटी के भीतर चले गए। **योगी स्वामी जी** के इस उत्तर से **रामदास** को पूर्ण सन्तोष हो गया। उसे आज पूर्ण विश्वास हो गया कि उसकी मनो-कामना पूर्ण होगी। यह भगवत्-कृपा ही है कि उसे **स्वामी जी** का साथ मिल गया है। वह वहाँ से उठा और शीघ्रता से स्वामी जी के पास जा पहुँचा, परन्तु वे उस समय ध्यानस्थ थे, अतएव वह चुपचाप वहीं बैठ गया। कुछ देर बाद जब **स्वामी जी** का ध्यान भङ्ग हुआ और उन्होंने आँखें खोलीं, तब अपने सामने **रामदास** को बैठा पाया। **उसे देखकर वे बोले**— कहो रामदास! आज मेला देखने नहीं गए?

रामदास— नहीं प्रभो! आज **योगी स्वामी** के दर्शन हुए। यह कहकर उसने वे सब बातें कहीं, जो योगी स्वामी ने उससे कही थीं।

स्वामी जी ने हँसकर कहा— योगी स्वामी महात्मा हैं। उन्होंने जो कुछ कहा है, ठीक ही कहा है। समय आने पर अपने आप सब हो जाएगा। धीरज धरो! किसी ने ठीक ही कहा है कि — **धीरज धरै, सो उतरै पारा।**

यह कहकर **स्वामी जी** फिर ध्यानस्थ हो गए। यह देखकर रामदास वहाँ से उठ आया। वह बाड़े में इधर-उधर घूमने लगा। कभी किसी संन्यासी की कुटिया के सामने बैठ जाता, तो कभी किसी की, परन्तु मेला देखने नहीं गया। अब उसका पहले का सा मनोभाव नहीं था। वह अधिकतर अपने बाड़े के संन्यासियों के पास ही बैठकर उनके उपदेश सुना करता था। पर्व के दिनों पर अखाड़ों के जुलूस के लिए वह अवश्य गया था, परन्तु उसके बाद वह वहाँ नहीं ठहरा। एक बार वह **'गङ्गा'** पार जाकर उस पार ठहरे हुए साधु-महात्माओं के दर्शन करने को भी गया था, परन्तु वहाँ से भी वह शीघ्र ही लौट आया था। अब वह अधिकतर अपने बाड़े ही में उपस्थित रहता था और बार-बार अपने **स्वामी जी** के ही पास जा बैठता था। उसमें विचित्र परिवर्तन हो गया था। अब वह पहले का **रामदास** नहीं था। वह अब अधिक गम्भीर, अधिक शान्त, अधिक शिष्ट और अधिक विनयी हो गया था। एक दिन जब वह अपने **स्वामी जी** के पास बैठा था, तब वहाँ दो व्यक्ति आए और **स्वामी जी** को प्रणाम कर चुपचाप वहीं बैठ गए। कुछ देर बाद जब **स्वामी जी ने आँखें खोलीं, तब आगन्तुकों को देखकर वे मुस्कराकर बोले**— अच्छा, आप हैं। कब आए? कुशल से तो हैं न?

आगन्तुकों में एक ने हाथ जोड़कर कहा— प्रभो! आपकी दया से सब कुशल है। तीन दिन से यहीं हूँ, और कई लोग साथ हैं। पर्व आदि स्नान से छुट्टी मिल जाने पर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

स्वामी जी— भीड़-भाड़ के साथ आए हो? कब तक ठहरोगे?

आगन्तुक— इसी से तो जल्दी सेवा में नहीं उपस्थित हो सका। अब कल ही लौट जाने का निश्चय किया गया है। अतएव प्रार्थना करने आया हूँ कि श्रीचरण कब तक पधारेंगे, बहुत दिन हो गए।

स्वामी जी— हाँ, ठीक कहते हो। उस ओर जाने का मन ही नहीं हुआ। अच्छा, विचार करूँगा।

दूसरे आगन्तुक ने हाथ जोड़कर कहा — प्रभो! आपने तो हम लोगों को भुला ही सा दिया है। पिछली **'अर्ध-कुम्भी'** के अवसर पर जो आदेश दिया था, उसका प्रबन्ध हम लोगों ने तभी कर लिया था। प्रति वर्ष **'माघ-स्नान'** के अवसर पर हम लोग यहाँ आते रहे परन्तु दुर्भाग्य से आपके दर्शन ही नहीं हुए। इस बार जब दर्शन हुए हैं, तब आप कहते हैं कि विचार करूँगा। वह काम बिना आपके हाथ लगाए पूरा नहीं होगा।

स्वामी जी— ठीक कहते हो, मैंने अवश्य वचन दिया था, परन्तु समय अनुकूल नहीं है, यह बात भी मैंने कही थी। अच्छा, जब आप लोग तैयार हैं, इस प्रकार उत्साह रखते हैं, तब यथा-शक्ति मैं भी सहायता करूँगा। फलाफल ईश्वर के हाथ है। आप लोग जाएँ। मैं **'पूर्णिमा-स्नान'** करने के बाद सीधे आपके यहाँ आऊँगा।

यह कहकर **स्वामी जी** ध्यानस्थ हो गए। दोनों आगन्तुकों ने एक दूसरे की ओर देखा। प्रसन्नता से उन दोनों के मुख-मण्डल खिल उठे थे। उन्होंने बड़े भक्ति-भाव से **स्वामी जी** को प्रणाम किया। फिर उठकर वहाँ से चुपचाप चले गए। **रामदास** यह सारा वार्त्तालाप चुपचाप बैठा सुनता रहा। वह उसकी अथ-इति कुछ भी न समझ सका। उसे बड़ा कुतूहल था। वह जानना चाहता था कि ये लोग कौन हैं और किस काम के लिए **स्वामी जी** ने उनके यहाँ जाने का निश्चय किया है, परन्तु यह सब **स्वामी जी** से पूछने का उसे साहस नहीं होता था। उसकी ऐसी आदत भी नहीं थी। वह चुप रहा, **स्वामी जी** ने भी उससे उस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा।

'कुम्भ' का पर्व बड़े धूम-धाम का रहा। धीरे-धीरे **'प्रयाग'** - तट का वह विशाल मेला छटने लगा। **'पूर्णिमा'** तक अधिकांश मेला उखड़ गया था। उसकी क्षीण रेखा-मात्र रह गई थी।

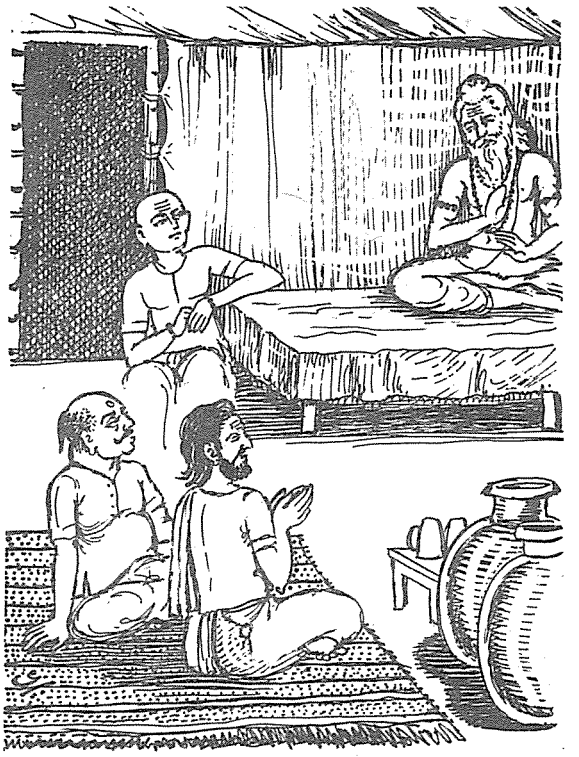

संन्यासी-बाड़ा तो एकदम खाली हो चुका था, परन्तु **स्वामी जी रामदास** के साथ वहाँ बराबर डटे रहे। **'पूर्णिमा'** का स्नान कर चुकने पर **स्वामी जी ने रामदास से कहा— रामदास!** अब तुम्हारा क्या विचार है। मेरे साथ चलोगे कि कहीं दूसरी जगह जाना चाहते हो?

रामदास— प्रभो! जब आपने आश्रय दिया है, तब मैं अब और कहाँ जाऊँगा?

यह सुनकर **स्वामी जी** हँस पड़े। उन्होंने कहा— "अच्छा, तो फिर आओ।" यह कहकर **स्वामी जी** चल पड़े। **रामदास** उनके पीछे था।

★ ★ ★

धर्म - मार्ग पर

८. विन्ध्य-गिरि की यात्रा

स्वामी जी बाँध पर चढ़कर जब शहर जानेवाली सड़क पर चलने लगे, तब **रामदास** को आश्चर्य हुआ, परन्तु वह कुछ बोला नहीं। **स्वामी जी** वेग से चल रहे थे। शहर के एक भाग को पार कर जब **स्वामी जी** यमुना जी के पुल पर पहुँचे और उसे पार कर उन्होंने दक्षिण की ओर जानेवाली सड़क पकड़ी, तब **रामदास** से न रहा गया। उसने साहस करके पूछा— प्रभो, इधर कहाँ जा रहे हैं?

स्वामी जी ने कहा— उस दिन मेले में दो सज्जन मेरे पास आए थे, तुम्हें याद होगा। उनसे कहा था कि मेले के बाद तुम्हारे यहाँ आऊँगा। उनका घर विन्ध्य-गिरि पर रीवाँ राज्य में है। वहीं जा रहा हूँ। बड़ी सुन्दर जगह है। क्या तुमने पहाड़ देखा है?

रामदास— नहीं प्रभो!

और वह पहाड़ देखने की इच्छा से उत्साहित हो उठा। मार्ग अच्छा था। समय भी सुखद था। दोपहर होते-होते **स्वामी जी** एक गाँव के समीप पहुँचे। गाँव के बाहर ही मार्ग से हटकर उन्हें एक छोटा-सा बाग दिखाई दिया। बाग के भीतर एक छोटी-सी कोठरी भी बनी थी। वहीं ठहरने के विचार से **स्वामी जी** उसकी ओर मुड़े। जब वे बगिया के भीतर पहुँचे, तब उन्होंने कोठरी के बाहर मोढ़े पर एक **साधु** को बैठे देखा। दो साधुओं को अपनी ओर बे-धड़क आते हुए देखकर उसने रुखाई से कड़क कर कहा— यह **धर्म-शाला** तो है नहीं, जो आप यहाँ आ रहे हैं! माघ का मेला क्या हुआ, जिसे देखो— वही यहाँ दाबे चला आ रहा है!

उस **साधु** को इस प्रकार कहते सुनकर **स्वामी जी** जहाँ-के-तहाँ खड़े हो गए थे। जब वह अपनी बात कह चुका, तब उन्होंने उसे कोई उत्तर नहीं दिया और चुपचाप लौट पड़े। यह देखकर उस **साधु** ने फिर कहा— यह देखो, यह साधु बनते हैं! सच्ची बात तक नहीं कह सकते! आग-बबूला हो गए!

अब **स्वामी जी** ठहर गए। उन्होंने कहा— नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। मैंने अपनी भूल समझी, अतएव लौटा जा रहा हूँ। नाराज क्यों

होऊँगा। मैंने समझा था कि साधु का आश्रम है, एक दिन यहाँ ठहर कर दूसरे दिन अपनी राह लगूँगा, परन्तु जब आप यहाँ किसी को ठहरने नहीं देते, तब इसमें कोई यदि नाराज हो, तो वह मूर्ख है।

यह कहकर **स्वामी जी** फिर चल पड़े। उस साधु ने कहा— खाली ठहरने की बात हो, तो कोई बात नहीं है, सारा बाग खाली पड़ा है, पर यहाँ तो ऐसे लोग आते हैं, जो खाना माँगते हैं, ओढ़ने को कम्बल माँगते हैं, गाँजा-चरस माँगते हैं! इस प्रकार नाना प्रकार की माँगों से तङ्ग कर डालते हैं। बगिया को गन्दा अलग कर जाते हैं। इससे मैंने नियम बना लिया है कि अपने आश्रम में मैं किसी को न ठहराऊँगा, परन्तु आप कुछ और तरह के आदमी जान पड़ते हैं। इससे आप बगिया में चाहे जहाँ भी एक दिन ठहर सकते हैं, किन्तु अपनी कोठरी में जगह नहीं दूँगा और न खाना-पीना ही दूँगा।

स्वामी जी ने कहा — मैं तो किसी भी वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए तैयार हूँ। खाना-पीना तो मैं किसी से माँगता भी नहीं, वह सब तो कोई दूसरा ही देता है।

वह साधु बोला — तब आप कुएँ के पास वृक्ष के नीचे जो चबूतरा बना हुआ है, वहाँ यदि इच्छा हो, तो ठहर सकते हैं।

स्वामी जी बिना कोई उत्तर दिए हुए कुएँ की ओर मुड़ गए। **रामदास** ने चबूतरे पर कम्बल बिछा दिया। फिर कुएँ से तुम्बी में जल भर कर **स्वामी जी** के पैर धोए और उन्हें कम्बल पर बिठाकर उसने अपने हाथ-पैर धोए और वहीं चबूतरे पर बैठ गया। उधर बाग का **साधु** अपनी कोठरी में विश्राम कर रहा था।

जब **स्वामी जी** से और **साधु** से पूर्वोक्त बातचीत हो रही थी, तब उस **साधु** के पास के गाँव के एक सज्जन भी बैठे हुए थे। जब **साधु महाराज** अपनी कोठरी में चले गए, तब उक्त ग्राम-वासी सज्जन धीरे-धीरे **स्वामी जी** के पास आए और उनको प्रणाम कर चबूतरे पर बैठ गए। उन्होंने कहा— महाराज, इन **साधु** का ऐसा ही रूखा स्वभाव है, परन्तु इनका हृदय अच्छा है। आप बुरा न मानिएगा। आज्ञा दें, तो आपके लिए घर से कुछ भिक्षा ले आऊँ।

स्वामी जी ने कहा — किसका हृदय बुरा है या अच्छा, यह जानने की चिन्ता मुझे नहीं रहती। मैं तो पशु-पक्षियों, कीट-पतङ्गों आदि तक में परमात्मा की सत्ता का अनुभव करता हूँ। रहे मनुष्य, सो उनमें तो उनकी सत्ता प्रत्यक्ष ही दृष्टि-गोचर होती है। कौन भला है, कौन बुरा, यह सोचने-विचारने की मुझे फुरसत नहीं भाई! प्रपञ्च की बातों में न पड़कर हमें उस लीला-मय की लीलाओं का दर्शन करने में अपना समय बिताना चाहिए या उसका गुण-गान करने में। हम लोगों के कल्याण का यदि कोई मार्ग है, तो एक-मात्र यही है।

यह कहकर **स्वामी जी** ने— **'हरि ॐ'** का उच्चारण किया और वे चुप हो रहे। **स्वामी जी** ने अपनी बात इतने मधुर ढङ्ग से कही थी, उनकी मुख-मुद्रा इतनी गम्भीर और शान्त थी कि उक्त ग्राम-वासी सज्जन अवाक् रह गए। उन पर **स्वामी जी** का बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने बड़ी नम्रता के साथ कहा— महाराज, भिक्षा के सम्बन्ध में आपने कोई आदेश नहीं दिया।

स्वामी जी बोले — मैं क्या कहूँ! यह तो आपकी इच्छा की बात है। मैं तो किसी से कुछ माँगता नहीं हूँ। यदि कोई कुछ दया करके दे देता है, तो बड़ी प्रसन्नता के साथ उसे सिर-आँखों ले लेता हूँ।

यह कहकर **स्वामी जी** विचित्र ढङ्ग से हँस पड़े। **स्वामी जी** के उत्तर की अपेक्षा उनकी

विचित्र हँसी का उन सज्जन पर विलक्षण प्रभाव पड़ा। वे भौंचक्के से हो गए। उन्होंने दूसरे ही क्षण इस बात का अनुभव किया कि वे एक असाधारण **साधु** से बातचीत कर रहे हैं। उन्हें फिर बात करने का साहस ही न हुआ। उन्होंने **स्वामी जी** को बड़ी भक्ति के साथ प्रणाम किया और चुपचाप उठकर जल्दी-जल्दी चले गए। कोई डेढ़ घण्टे के बाद वही सज्जन तीन-चार आदमियों के साथ फिर बाग की ओर जल्दी-जल्दी आते हुए दिखाई दिए। सभी नङ्गे बदन थे और कोई-न-कोई बर्तन सभी के हाथ में था। वे सभी **स्वामी जी** के लिए भिक्षा लाए थे। तीन थाल पत्तल से ढँके हुए लाकर **स्वामी जी** के आगे उन्होंने रख दिए। एक आदमी जल्दी से कुएँ पर जाकर घड़े में जल भर लाया। उक्त सज्जन ने हाथ जोड़कर **स्वामी जी** से विनय-पूर्वक कहा— महाराज, भिक्षा उपस्थित है, इसे ग्रहण करने की कृपा की जाय।

यह कहकर उन्होंने थालों पर के पत्तल हटा दिए। भिक्षा-सामग्री को देखकर **स्वामी जी** के मुख से एकाएक निकल पड़ा— हरे-हरे! यह तो बहुत है। यह कौन ग्रहण करेगा!

फिर उन्होंने कहा— अच्छा, सबसे पहले एक थाल आश्रम के **महात्मा जी** को दे आओ।

उनका यह आदेश पाकर एक व्यक्ति एक थाल उठाकर आश्रम के **साधु** को देने चला गया। इसके बाद **स्वामी जी** कम्बल से उठकर नीचे खड़े हो गए। फिर अपने दोनों हाथ फैलाकर उन सज्जन से कहा— मेरी भिक्षा मुझे दे दीजिए।

वे सज्जन बड़े चक्कर में पड़े कि क्या दूँ और क्या न दूँ क्योंकि थाल की सब सामग्री **स्वामी जी** की अञ्जलि में आ नहीं सकती थी। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा— महाराज, आप इसी थाल में भोजन कर लीजिए। जो बचेगा, वह हम लोगों को प्रसाद का काम देगा।

स्वामी जी ने मुस्करा कर कहा— नहीं-नहीं, मुझे दे दीजिए। जो बच रहेगा, वही आप लोगों का ठीक प्रसाद होगा। मैं स्वल्प-भोजी हूँ। एक पूड़ी और साग के दो-चार टुकड़ों से मेरा काम पूरा हो जाएगा।

परन्तु उन सज्जन ने बड़े आग्रह से एक की जगह दो पूड़ियाँ और थाल की सामग्रियों में से कुछ-न-कुछ अंश रख ही दिया। **स्वामी जी** कुछ न बोले। वे धीरे-धीरे भिक्षा करने लगे। भिक्षा करने के बाद **स्वामी जी** ने जल ग्रहण किया। तदनन्तर तीसरा थाल रामदास को दे दिया गया। जब **रामदास** भोजन कर चुका, तब थाल धोकर उसने दे दिया। अब वे सज्जन साथियों सहित प्रसाद लेकर ग्राम को लौट गए।

ग्राम-वासियों के चले जाने पर आश्रम के **साधु बाबा** अपनी कोठरी से बाहर आए। उन्होंने देखा कि उनके आश्रय-दाता गाँव के **शास्त्री जी** ने नए अभ्यागतों का जब इतना अधिक आदर-सम्मान किया है, तब इनमें कोई वैसी बात जरूर होगी। यह सोचकर वे ढीले पड़ गए। वे धीरे-धीरे **स्वामी जी** के पास गए और वहाँ बैठकर उनसे बातें करने लगे। शीघ्र ही उन्हें भी ज्ञात हो गया कि **स्वामी जी** एक विशिष्ट साधु हैं, उनमें सहिष्णुता तो है ही, अधिक-से-अधिक सम-दृष्टि भी है और इन सबसे अधिक उनमें अपरिमित एकाग्रता है। अब वे **स्वामी जी** के आगे हाँजू-हाँजू करने लगे। उन्होंने बड़े विनय-भाव से कहा— महाराज, यहाँ आपको कष्ट होगा। रात में बहुत शीत पड़ती है। चलिए, कोठरी में आसन लगाइए।

स्वामी जी बोले — मैं तो प्रायः बाहर ही रहता हूँ। शीतता और उष्णता दोनों के सहने का मुझे अभ्यास है। मुझे किसी तरह का कष्ट नहीं होगा। आप चिन्ता न करें।

बाबा जी ने कहा — **शास्त्री जी** आते होंगे। वे **साधु-महात्माओं** का बहुत आदर करते हैं। उनका सत्सङ्ग भी करते हैं। वे आपका उपदेश सुनने के लिए अवश्य आएँगे। उनके साथ गाँव के और भी आठ-दस भक्त-जन भी आएँगे। यहाँ वे सब ठीक तरह से बैठ न सकेंगे। कोठरी के सामने सहन में सभी लोग आराम से बैठ सकेंगे। वहीं बैठना ठीक होगा। कृपा करिए महाराज!

बाबा जी ने बहुत ही विनम्र होकर अपनी बात कही थी। **स्वामी जी** ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे चुपचाप उठ खड़े हुए। **रामदास** ने कम्बल उठा लिया। अब वे लोग कोठरी की ओर चले। **बाबा जी** ने **स्वामी जी** के लिए एक ऊनी आसन लगा दिया। **स्वामी जी** चुपचाप उस पर आसीन हो गए। फिर उन्होंने दो चटाइयाँ निकालीं। **रामदास** ने उन्हें सहन में ठीक ढङ्ग से बिछा दिया। **बाबा जी** और **रामदास** चटाई पर बैठ गए। थोड़ी देर के बाद **शास्त्री जी** अपने साथियों के साथ आते हुए दिखाई दिए।

बाबा जी ने कहा— देखिए महाराज, **शास्त्री जी** आ रहे हैं। बड़े सत्सङ्गी हैं। यह बाग और कुटिया इन्हीं की है। मैं इन्हीं के आग्रह से यहाँ निवास करता हूँ। प्रति-दिन सन्ध्या-समय यहाँ आते हैं। धर्म-चर्चा किया करते हैं। बड़े अच्छे पण्डित हैं।

स्वामी जी उनकी बातें चुपचाप सुनते रहे। उन्होंने कुछ कहा नहीं। कुछ देर में **शास्त्री जी** भी अपने साथियों के साथ वहाँ आ गए और बिछी हुई चटाइयों पर वे तथा उनके साथी बैठ गए। थोड़ी देर तक वहाँ सन्नाटा छाया रहा, परन्तु **बाबा जी** से नहीं रहा गया। उन्होंने कहा— महाराज, हम लोगों को कुछ उपदेश करिए। आपके श्रीमुख से हम कुछ **धर्म-चर्चा** सुनना चाहते हैं।

स्वामी जी सावधान-सा हो, मानों उनका ध्यान कहीं दूसरी जगह रहा हो, बोले— **धर्म-चर्चा! वह तो हमारे चारों ओर प्रति-क्षण होती**

रहती है। यह भगवान् की जो विशाल सृष्टि हमारे चारों ओर फैली हुई है, वह एक ऐसी पुस्तक के समान है, जो न कभी गलती है और न फटती है, जिसको सभी कोई बड़ी सरलता से पढ़ सकते हैं, परन्तु हम लोग इस बिना मूल्य की पुस्तक को न पढ़कर दूसरी पुस्तकें खरीदने को उतावले रहते हैं। जो व्यक्ति इस सरस और सरल पुस्तक को पढ़ता है, उसे किसी तरह की धर्म-चर्चा अच्छी नहीं लगती।

स्वामी जी की यह उक्ति सुनकर सभी एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। यह देखकर **स्वामी जी** ने हँसकर **शास्त्री जी** की ओर मुँह करके कहा— आप तो विद्वान् हैं। शास्त्र की बातें मैं आपसे क्या कहूँ। शास्त्र भी मैंने उतना नहीं पढ़ा, परन्तु जिस बात का मैंने अनुभव किया है, वह मैं यहाँ अवश्य कह देना चाहता हूँ।

■

धर्म - मार्ग पर

स्वामी जी ने अपना प्रवचन ऐसे ओज-पूर्ण ढङ्ग से; साथ ही इतनी मधुरता के साथ कहा कि सभी पर उसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। उनके कथन का यही आशय था कि **"हम सबको कर्तव्य-निष्ठ होना चाहिए। अपने कुटुम्ब के प्रति, अपने पड़ोसी के प्रति, अपने ग्राम के प्रति, अपने देश के प्रति और सबसे अधिक अपने स्रष्टा के प्रति— हममें से प्रत्येक का क्या कर्तव्य है, इसका हमें भले प्रकार ज्ञान होना चाहिए तथा निष्ठा-पूर्वक उसका पालन भी करना चाहिए। तभी हम सब लोग इह-लोक और पर-लोक— दोनों में परम सुख की उपलब्धि कर सकेंगे।"**

प्रवचन की समाप्ति के बाद थोड़ी देर तक इधर-उधर की बात-चीत होती रही। अन्त में **शास्त्री जी** ने कहा— महाराज, आप यहाँ कुछ समय तक ठहरने का कष्ट करें, तो हम लोगों का बड़ा उपकार हो जाय।

स्वामी जी ने कहा — ठहर सकता था, परन्तु मुझे दूर जाना है। वचन दे चुका हूँ। ठीक समय पर वहाँ पहुँचना ही होगा। मैं कल सबेरे ही यहाँ से चला जाऊँगा।

स्वामी जी की बात सुनकर **शास्त्री जी** और उनके साथी निराश हो गए। अधिक आग्रह करना उन्होंने भी उचित नहीं समझा। रात हो चली थी, अतएव **स्वामी जी** से उन लोगों ने बिदा ली और उन्हें प्रणाम कर सबके सब गाँव की ओर चले गए। उनके बिदा होते ही **स्वामी जी** ध्यानस्थ हो गए।

रामदास चटाइयाँ उठाकर भीतर रख आया, फिर वह भी **बाबा जी** के साथ जाकर कोठरी के भीतर बैठ गया। उसकी **बाबा जी** से इधर-उधर की बातचीत होती रही। बातचीत के सिलसिले में उन्हें यह भी मालूम हो गया कि **स्वामी जी** रात भर बाहर ही बैठे रहेंगे। यह जानकर उनके आश्चर्य की सीमा न रही। देर तक वे दोनों ही जागते रहे और बातें करते-करते सो भी गए। तड़का होने पर **स्वामी जी** ने **रामदास** को जगाया। शौचादि से निवृत्त होकर **रामदास** ने **स्वामी जी** को स्नान कराया। उसके बाद स्वयं स्नान किया। इस प्रकार नित्य के कर्मों से निवृत्त होकर **स्वामी जी** ने **बाबा जी** से कहा — भाई, चलता हूँ। **हरि ॐ, हरि ॐ।**

बाबा जी ने नत-जानु होकर **स्वामी जी** को प्रणाम करते हुए कहा—मेरा अपराध क्षमा हो।

स्वामी जी ने हँसकर कहा— अपराध की खूब कही, परन्तु जब आप इस तरह कहते हैं, तब क्षमा ही समझिए। यों मैं नहीं मानता कि आपसे कोई अपराध हुआ है।

यह कहते हुए वे शीघ्रता के साथ आश्रम के बाहर हो गए। कुछ दूर चलने के बाद **स्वामी जी** ने **रामदास** से कहा— देखो, वह **विन्ध्य-गिरि** कितना ऊँचा और व्यापक है!

रामदास भौचक्का खड़ा होकर इधर-उधर ताकने लगा। क्षितिज में काले-काले बदलों की एक लम्बी-चौड़ी— कहीं उठी हुई, कहीं गिरी हुई, एक चढ़ी हुई घटा-सी दिखाई दी। उसने आश्चर्य के साथ कहा— अरे, क्या यही **विन्ध्य-गिरि** है! प्रभो, मुझे तो यह बादल की घटा-सी जान पड़ती है।

स्वामी जी ने कहा — दूर से ऐसा ही जान पड़ता है। दोपहर तक हम पहाड़ पर पहुँच जायँगे।

स्वामी जी द्रुत गति से चलने लगे। उत्साह के साथ **रामदास** उनका अनुसरण कर रहा था। पहाड़ तक पहुँचने तक ही उन्होंने एक छोटी-सी नदी भी पार की, उसमें गाँठों ही तक जल था। नदी पार कर जब वे पहाड़ के निकट पहुँचे, तब **रामदास** ने कहा— अरे, यही वह पहाड़ है! दूर से तो यह बहुत ऊँचा दिखाई दे रहा था।

स्वामी जी ने हँसकर कहा— हम भी पहले की अपेक्षा अधिक ऊँचाई पर आ गए हैं। जब कोई व्यक्ति ऊँचाई पर पहुँच जाता है, तो वह ऐसा ही अनुभव करता है।

यह कहकर **स्वामी जी** एक पग-डण्डी से पहाड़ पर चढ़ने लगे। उन्होंने कहा— **रामदास,** पहाड़ पर सावधानी से चढ़ना। पड़े हुए और उभरे हुए पत्थरों से बचकर चलना, नहीं तो ठोकर खा जाओगे और चोट लग जाएगी।

पहाड़ के ऊपर पहुँचने पर **रामदास** ने जब अपने आगे देखा, तब उसे पहाड़-पर-पहाड़ चढ़े हुए दिखाई दिए। पहाड़ों का यह अनुपम दृश्य देखकर उसका मन प्रसन्नता से नाच उठा। दोपहर हो गई थी। उसने **स्वामी जी** से पूछा— प्रभो, आज कहाँ ठहरना होगा?

स्वामी जी ने कहा— इस पहाड़ के नीचे घाटी में। बहुत दूर नहीं है। हम आ गए, चले आओ! पहाड़ के पार करने पर हरे वृक्षों से पूर्ण एक घाटी दिखाई दी। नीचे उतरने पर वृक्षों के एक कुञ्ज के भीतर एक छोटा-सा मकान था। **स्वामी जी** वहाँ जाकर ठहर गए। द्वार बन्द था। **स्वामी जी** ने कहा— जान पड़ता है, पुजारी घर चला गया है। आओ, चलकर झरने में हाथ-मुँह धोएँ। यह कहकर वे एक ओर को चल पड़े। **रामदास** ने झरना देखा ही नहीं था। झरने पर उसने देखा कि पहाड़ से पानी निकल कर एक ओर बहता हुआ चला जा रहा है। उसने कहा— क्या यही झरना है?

स्वामी जी ने कहा— यह छोटा झरना है। बड़े-बड़े झरने भी इस पहाड़ में जहाँ-तहाँ हैं।

रामदास तूँबी में पानी ले आया। हाथ-पैर धोकर **स्वामी जी** ताजे हो गए। **रामदास** ने भी हाथ धोए। उसने तूँबी में जल भी भर लिया। उसके बाद वे वहाँ आकर मन्दिर के सहेन में आकर बैठ गए। सन्ध्या होते-होते **पुजारी जी** आए। उन्होंने **स्वामी जी** को प्रणाम किया और उनके सम्बन्ध में कुछ पूछ-ताछ कर दरवाजा खोला. और वे भीतर चले गए। वहाँ वे सन्ध्या-आरती की तैयारी करने लगे। आरती करने के बाद जब वे निकले और दरवाजा बन्द किया, तब वे **स्वामी जी** के पास आए। उन्होंने कहा— आइए **स्वामी जी,** बस्ती में चलिए। वहाँ आपकी भिक्षा आदि का भी प्रबन्ध हो जाएगा।

स्वामी जी— मैं बस्ती में नहीं जाऊँगा। यहीं रहूँगा।

पुजारी को आश्चर्य हुआ। उसने कहा— यहाँ जङ्गली जानवर आते हैं, जाड़ा अलग है, भोजन भी नहीं किया है! यहाँ कैसे रहेंगे?

स्वामी जी बोले— आप इसकी चिन्ता न करें। मुझे इस प्रकार रहने का अभ्यास है।

अब **पुजारी** बड़े चक्कर में पड़ा। मन्दिर की कुञ्जी वह **स्वामी जी** को दे नहीं सकता था और न उन्हें वहाँ वह इस प्रकार अकेला छोड़ सकता था। साधु-संन्यासियों के ठहरने के लिए गाँववालों की ओर से उस मन्दिर में व्यवस्था थी। अतएव वह लाचार था। उसने फिर दरवाजा खोला और **स्वामी जी** से भीतर आ जाने की विनय की। भीतर बड़ी साफ-सुथरी जगह थी। उसकी एक दालान में **स्वामी जी** के लिए एक आसन लगा दिया और प्रकाश भी कर दिया। उसने हाथ जोड़कर **स्वामी जी** से कहा— महाराज, आपकी भिक्षा के लिए क्या प्रबन्ध करूँ?

स्वामी जी बोले— रात में मैं भिक्षा नहीं करता।

पुजारी चतुर था। उसने विनय के साथ कहा— इस स्थान का नियम है कि यहाँ कोई निराहार नहीं रह सकता, भिक्षा न सही, **माँ का प्रसाद** ही आप ग्रहण कर लें।

स्वामी जी कुछ नहीं बोले। वह चुपचाप पूजा-घर में चला गया और थाली में मिष्ठान्न ले आया। **स्वामी जी** ने उसमें से दो टुकड़े ले लिए और कुछ **पुजारी जी** को और कुछ **रामदास** को दे दिया। **माँ का प्रसाद** ग्रहण करने के बाद उन्होंने जल-पान किया। थोड़ी देर तक **स्वामी जी** से **पुजारी** की बातचीत होती रही, परन्तु जब **स्वामी जी** ध्यानस्थ हो गए, तब वह वहाँ से हट गया और घर का दरवाजा भीतर से बन्द कर सोने का उपक्रम करने लगा। थोड़ी ही देर में वह और **रामदास** सो गए।

सबेरा होने पर स्नान आदि से निवृत्त होकर जब **स्वामी जी** चलने लगे, तब **पुजारी** ने उनसे ठहरने का बहुत आग्रह किया, परन्तु वे ठहरे नहीं। मार्ग में **स्वामी जी** ने **रामदास** से कहा— आज हम जहाँ जा रहे हैं, पहुँच जाएँगे, परन्तु मार्ग बहुत बीहड़ है। सावधान होकर चलना। सन्ध्या तक पहुँचेंगे। दोपहर में नहीं ठहरेंगे।

यह कहकर **स्वामी जी** आगे बढ़े। कुछ ही दूर चलने के बाद पहाड़ की चढ़ाई-पर-चढ़ाई शुरू हुई। कभी ऊँचे चढ़ जाते, तो कभी नीचे उतर आते। कभी नाले पार करने पड़ते, तो कभी झाड़ियों के झुरमुटों से होकर जाना पड़ता। चलते-चलते पसीने से दोनों ही लथपथ हो गए। आज वे सारा दिन चलते रहे। कहीं एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं किया। सन्ध्या-समय जब वे एक पहाड़ से नीचे उतरने लगे, तब उन्हें एक सुरम्य लम्बी-चौड़ी घाटी दिखाई दी। उसके एक ओर एक बड़ी बस्ती भी उन्हें दीख पड़ी, जहाँ के मन्दिरों के शिखरों पर अस्तङ्गत होनेवाले सूर्य की रश्मियाँ पड़कर उनकी दमक बढ़ा रही थीं। उस हरी-भरी घाटी के दृश्य पर **रामदास** की निगाह पड़ते ही उसका हृदय उत्साह से भर गया और वह बोला— प्रभो, क्या यह वही जगह है?

स्वामी जी— तुम्हारा अनुमान ठीक है। हम आ गए।

यह कह कर **स्वामी जी** पहाड़ से नीचे उतरने लगे। नीचे उतरने पर पहाड़ी खोह के एक ओर एक सुन्दर भवन और भव्य मन्दिर उन्हें दिखाई दिया। मन्दिर के बाहर सात-आठ आदमी बैठे थे। दो साधुओं को आते देखकर उन्हें कुतूहल हुआ, परन्तु जब **स्वामी जी** निकट पहुँचे, तब उनमें से एक चिल्ला पड़ा— अरे, **स्वामी जी महाराज** आ गए!

उसने दौड़कर नत-जानु होकर **स्वामी जी** को प्रणाम किया। अन्य सब लोगों ने भी आकर उसी प्रकार प्रणाम किया।

स्वामी जी ने हँसकर पूछा— कहो **कुलानन्द**, प्रसन्न हो? यहाँ सब कुशल है?

कुलानन्द ने कहा— श्रीमान् के चरण-कमलों की कृपा से सब कुशल है।

यह कह कर वह **स्वामी जी** को मकान के भीतर लिवा ले गया और स्वच्छ आसन पर बिठाकर उनके पैर धोए। इसके बाद उनके विश्राम के लिए एक तखत पर आसन लगा दिया, जहाँ वे बैठकर आराम करने लगे।

कुलानन्द जानता था कि निशा में वे कुछ खाएँगे नहीं। अतएव वह कुछ फल, कुछ मिठाई और एक गिलास में दूध **स्वामी जी** के लिए ले आया। **स्वामी जी** ने हँसकर कहा— आज दोपहर को भी भिक्षा नहीं मिली, ठीक है। उन्होंने एक केला ले लिया, कुछ मिठाई भी खा ली और दूध भी पी लिया और कहा— सब पूर्ण है। **रामदास** को भी कुछ जल-पान करा दो। रात्रि में इसे भोजन अवश्य करा देना।

यह कहकर **'हरि ॐ हरि ॐ'** के साथ **स्वामी जी** ध्यानस्थ हो गए।

■

धर्म - मार्ग पर

६. श्रीभवानी पाठ-शाला

दूसरे दिन सवेरे जब **स्वामी जी** नित्य-कर्म से छुट्टी पा गए, तब उनके पास **कुलानन्द** आए। बातचीत के सिलसिले में **स्वामी जी** ने कहा— अच्छा, तो अपने उन शिष्यों को मेरे पास भेजो। मैं उनसे कुछ बातचीत करना चाहता हूँ।

जब **कुलानन्द** जाने को उद्यत हुए, तब **स्वामी जी** ने कहा— एक-एक करके भेजना।

कुलानन्द चले गए। **स्वामी जी** के आदेश के अनुसार ही **कुलानन्द** के चुने हुए दसों शिष्य स्वामी जी के पास एक-एक करके आए। प्रत्येक से स्वामी जी ने बातचीत की। उन शिष्यों से बातचीत कर चुकने पर **स्वामी जी** ने **कुलानन्द** को बुलाकर कहा— तुमने ठीक चुनाव किया है। ये सभी अच्छे पात्र हैं। आज ही से **'दीक्षा'-क्रम** की क्रिया आरम्भ कर देनी चाहिए, जाओ और **रामदास** को भेज देना।

जब रामदास आ गया, तब **स्वामीजी** ने कहा— रामदास, हम लोग यहाँ विशेष आयोजन कर रहे हैं। अभी जो दस लड़के मेरे पास आए थे, उनकी यहाँ **'शाक्त-धर्म की 'दीक्षा'** होगी। इसके बाद जो मन्त्र उन्हें दिया जाएगा, उसका **'पुरश्चरण'** उनसे कराया जाएगा, तब उनका **'पूर्णाभिषेक'** होगा। इस यजन-पूजन में तीन-चार महीने लगेंगे। तब कहीं ये लोग **'शाक्त-धर्म'** की आराधना करने के अधिकारी होंगे। यदि तुम

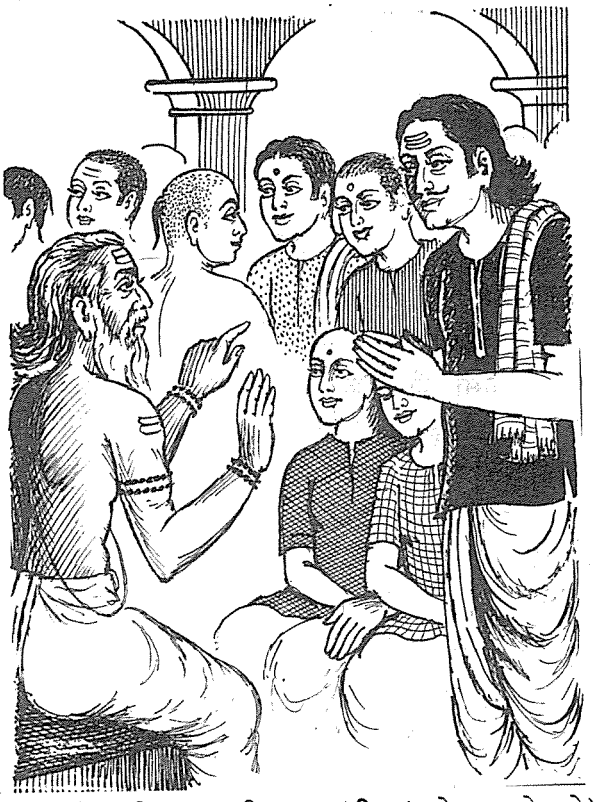

चाहो, तो तुम भी यह **'दीक्षा'** ले सकते हो। मैं इसी कार्य के लिए यहाँ आया हूँ।

रामदास ने हाथ जोड़कर कहा— प्रभो, मैं यह सब क्या जानूँ। मैं तो आपकी शरण में हूँ। जिस राह पर आप मुझे डालेंगे, मुझे वह सब तरह से स्वीकार है।

स्वामी जी ने कहा— अच्छा है, तुम भी **'दीक्षा'** ले लो। जाओ, **कुलानन्द** से कह दो कि मेरी भी **'दीक्षा'** होगी।

रामदास की आँखों में आँसू भर आए। वह **स्वामी जी** के पैरों में गिर पड़ा। **स्वामी**

जी ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा— समय आने पर ही सब होता है। जाओ, **'दीक्षा'** की प्रक्रिया में मन लगाकर काम करो। इसी में तुम्हारा कल्याण है।

रामदास प्रसन्न-मन होकर वहाँ से चला गया। आज उसकी प्रसन्नता की सीमा न थी।

स्वामी जी इधर ध्यानस्थ हो गए। दोपहर होने पर उन्होंने भिक्षा ली। उसके बाद फिर ध्यानस्थ हो गए। चौथे पहर जब वे बाहर आए, तब ठाकुर साहब तीन-चार भक्तों के साथ पहले ही से बाहर की दालान में उन्हें बैठे मिले। सभी **स्वामी जी** के पैरों पड़े। **स्वामी जी** एक ओर जाकर आसन पर बैठ गए। **कुलानन्द जी** अपने शिष्यों सहित वहीं आ गए। **स्वामी जी** ने देखा कि सभी लोग अपने ही हैं, बाहर का कोई नहीं है। उन्होंने ठाकुर साहब को लक्ष्य करके कहा—

''भवानीसिंह! सैकड़ों वर्ष से इस पुण्य-भूमि भारत में **धर्म-ग्लानि** छाई हुई है। बड़े-बड़े महात्मा यहाँ आए, इसके उन्मूलन का भरसक प्रयत्न किया, पर यह महा-व्याधि बराबर बढ़ती ही जा रही है, इसका नाश नहीं हो सका। बात यह है कि रोग की ठीक-ठीक दवा न की गई। महौषधि की उपेक्षा करके लोगों ने अपने अनुभूत चुटकलों ही से काम लेना श्रेयस्कर समझा। प्रारम्भिक वैदिक काल में इतनी आधि-व्याधियाँ नहीं थीं। उस समय विशुद्ध **'वर्णाश्रम धर्म'** का प्रचार था। सभी लोग अपने कर्तव्यों का ज्ञान रखते थे और उनका दृढ़ता से पालन भी करते थे। फलतः उन्हें **धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि** मिलती थी। उस काल में कर्तव्य-पालन ही करना एक-मात्र धर्म था। कालान्तर में जब लोग कर्तव्य-च्युत होने लगे, तब वे तद्वत् ही चतुर्वर्ग की प्राप्ति में असफल भी होने लगे। फलतः उन्हें दुःखों का सामना करना पड़ा। उनकी निवृत्ति के लिए नए-नए उपायों का उपयोग होने लगा, तो भी दुःख बढ़ते ही गए। उनका शमन नहीं हो सका। कर्तव्य-विमुख जनता आधि-व्याधियों का शिकार जब भीषण-रूप से बन रही थी, तब कुछ ऐसे लोग मैदान में आए, जिन्होंने इस बात का दावा किया कि यदि लोग उनके बताए हुए मार्ग का अनुसरण करेंगे, तो सारे दुःखों से अनायास ही छुटकारा पा जाएँगे। उन्होंने कहा कि **'पुरानी पद्धति को छोड़ो; यह बेकार हो गई है और जो ढङ्ग हम बताते हैं, उसको ग्रहण करो।'**

''दुःखाभिभूत जनता उनकी शरण में जा कूदी और उनकी **'दीक्षा'** ग्रहण कर उनके बताए हुए लक्ष्य की ओर बढ़ चली। परिणामतः **'वर्णाश्रम धर्म'** का पुराना जर्जर ढाँचा टूटता हुआ दिखाई पड़ने लगा और उसके संरक्षक **सनातन-धर्म-प्रेमी** यह देखकर किंकर्तव्य-विमूढ़-सा हो गए। कालान्तर में जब नई धारा में बहनेवालों की प्रगति रुकी, तब सनातनियों को अवसर मिला और उन्होंने देश-काल के अनुसार अपने धार्मिक विचारों को नया जामा पहनाकर उन्हें लोकोपयोगी बनाना ही श्रेयस्कर समझा। यह तो हुआ, परन्तु दो प्रकार की विचार-धाराओं के कारण देश में मतैक्य न हो सका। यही नहीं, मत-भेद और भी अधिक बढ़ता गया। यह उसी विरोध का भयङ्कर परिणाम है कि आज सारे देश में नाना प्रकार के मत-मतान्तर फैले हुए हैं और सारे देश-वासी उन्हीं के कारण

छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। इस दीर्घ-कालीन अनैक्य के काल में इस बात के बार-बार प्रयत्न किए गए कि देश में पुनः **शाश्वत वैदिक धर्म** का प्रचार हो, जिससे लोग पहले की ही भाँति चतुर्वर्गों की प्राप्ति करने में सफल-मनोरथ हो सकें, परन्तु इस सम्बन्ध में किए गए सारे प्रयत्न विफल ही हुए। हमारे अपने लोगों ने अपनी समझौते की नीति के कारण **वैदिक सिद्धान्तों** में आमूल परिवर्तन कर दिया था। ऐसी दशा में वह अपने असल रूप में कैसे अस्तित्व में आ सकता था?

"**वैदिक धर्म** के विशिष्ट अङ्ग **'तन्त्र-धर्म'** के आचार्यों ने ऐसी भूल नहीं की। उन्होंने उसे अपने असल रूप ही में बना रहने दिया और जब नई विचार-धारावाले उत्साह से भरकर अपने गन्तव्य मार्ग पर चल पड़े तथा जब वे ऐसे स्थान में पहुँचे, जहाँ उन्हें अन्धकार दिखाई दिया, तब वे इसी **'तन्त्र-धर्म'** का आश्रय लेने को बाध्य हुए थे और यह सच ही है कि वे इसी के सहारे आज भी जीवित हैं।

"यह शक्ति-शाली **'तन्त्र-धर्म'** आज भी इस देश में अपने मूल रूप में विद्यमान है, परन्तु उसमें अब उसका पहले जैसा बल नहीं है। यह प्रकट है कि जितने भी प्रकार के मत-मतान्तर देश में आज फल-फूल रहे हैं, उनका जीवन-स्रोत यहीं से उन्मुक्त होता है, परन्तु स्वयं उसमें आज उसका अपना बल नहीं दिखाई दे रहा है। यही कारण है कि पुण्य-भूमि भारतवर्ष में दुःख, अशान्ति आदि महा-व्याधियाँ खुलकर खेल रही हैं।

"आवश्यकता इस बात की है कि **'तन्त्र-धर्म'** के प्रमुख **'शाक्त-धर्म'** को समुचित प्रोत्साहन दिया जाए, उसमें **नए जीवन का सञ्चार** किया जाए। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि **सनातन-धर्मी** इस सम्बन्ध में पूर्णतया उदासीन हैं। प्रसन्नता की बात है कि देश के भिन्न-भिन्न भागों में कुछ लोग इस दिशा में भी सोत्साह काम करने को उद्यत हुए हैं। हमारे **ठाकुर भवानी सिंह** उन्हीं धर्म-प्रेमियों में से एक हैं। ये जिस महत् कार्य के सूत्र-पात करने की योजना को कार्यान्वित कर रहे हैं, मुझे विश्वास है, वह **जगदम्बा की कृपा** से अवश्य ही सफल होगी। आवश्यकता केवल इतनी ही है कि धैर्य-पूर्वक हम अपने इस प्रयत्न में लगे रहें। इसे **'धर्मानुष्ठान'** ही समझें, जैसा कि यह है, और इसमें सन्देह नहीं कि धर्म करनेवाला व्यक्ति अवश्य ही सफल-मनोरथ होता है। **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।**"

स्वामी जी का प्रवचन जब समाप्त हो गया, तब **ठाकुर भवानी सिंह** ने हाथ जोड़कर कहा— प्रभो, मैं तो आपका दासानुदास हूँ। मेरे पास जो कुछ है, सब आपका है। आपने आदेश किया, उसका मैंने पालन किया। अपने दास को आप यश दे रहे हैं, यह आपकी असीम दया है।

स्वामी जी ने बीच ही में टोंक दिया। वे हँसकर बोले— ठाकुर, तुम ठीक कह रहे हो। मैंने जो कहा है, वह भी ठीक है।

सब लोग हँस पड़े। जब हँसी बन्द हुई, तब बड़े मधुर स्वर में **कुलानन्द** ने कहा— प्रभो, आपने आदेश किया है कि आज ही से कार्य आरम्भ हो। मैंने पञ्चाङ्ग देखा, आज बड़ा अच्छा योग पड़ा है। गो-धूलि का मुहूर्त बहुत श्रेष्ठ है।

स्वामी जी ने कहा— हाँ, ठीक है। मुहूर्त से ही कार्य आरम्भ होना चाहिए। यह महत् कार्य है। **मन्त्र-शास्त्र** का पठन-पाठन

बन्द हो गया है। इस पाठ-शाला में उसकी व्यवस्था की गई है। इस शास्त्र के पढ़ने के लिए पहले **'दीक्षा'** लेनी पड़ती है। **'दीक्षा'**-प्राप्त शिष्य को ही **मन्त्र-शास्त्र** पढ़ने का अधिकार है। इस शास्त्र की साधना मानव को अति-मानव बना देती है। इस साधना का ध्येय भी निराला है। **'तान्त्रिक साधक'** जानता है कि मानव में 'सत्' है, **'चित्'** है, परन्तु **'आनन्द'** नहीं है। **'तान्त्रिक साधना'** द्वारा वह उस **'आनन्द'** की उपलब्धि करता है। उसकी साधना में **'आनन्द-भैरव'** और **'आनन्द- भैरवी'** की पूजा तथा **'आनन्द-गायत्री'** के **'जप'** का जो विधान है, वह इसी बात का सङ्केत करता है। सतत साधना द्वारा साधक **आनन्द** की उपलब्धि कर अपने में **सत, चित्, आनन्द** अर्थात् **सच्चिदानन्द** की अनुभूति करने लगता है और मानव जीवन का यही सबसे बड़ा ध्येय है। **मन्त्र-शास्त्र** इसी ध्येय की प्राप्ति का मार्ग-निर्देश ही नहीं करता, किन्तु सफलता-पूर्वक इस ध्येय तक पहुँचा दे सकता है। मुझे विश्वास है कि **'श्रीभवानी-पाठशाला'** के ये विद्यार्थी **मन्त्र-शास्त्र** पढ़कर इस ध्येय को प्राप्त करने में सफल-मनोरथ होंगे। इससे उनका तो कल्याण होगा ही, स्वदेश का भी बहुत बड़ा हित होगा।

यह कहकर **स्वामी जी** चुप हो रहे।

स्वामी जी के इस कथन का लोगों पर बहुत बड़ा प्रभाव हुआ। विशेषकर विद्यार्थियों पर। थोड़ी देर चुप रहने के बाद **स्वामी जी** ने **कुलानन्द** से कहा— चलो न, गोधूलि का समय निकट आ गया है। क्या सब सामान तैयार है?

कुलानन्द ने कहा— हाँ प्रभो सब तैयार है।

यह सुनकर **स्वामी जी** उठ खड़े हुए। उनके साथ और सब लोग भी। हाथ-पैर धोकर सब लोग पूजा-घर में गए। पूजा-गृह सुसज्जित और स्वच्छ था। पूजा-सामग्री यथा-स्थान सजाई हुई रखी थी। यह सब देखकर **स्वामी जी** बहुत प्रसन्न हुए। ठीक समय पर कार्य आरम्भ हुआ। तीन दिन तक **दीक्षा** का समारोह रहा। उसके बाद प्राप्त मन्त्रों के शिष्यों से जनन आदि संस्कार कराए गए। यह कार्य भी दो दिन में समाप्त हुआ। उसके बाद शिष्यों ने प्राप्त मन्त्रों का **पुरश्चरण** प्रारम्भ किया। इसके लिए **कुलानन्द** ने उन्हें भले प्रकार पहले ही से तैयार कर दिया था। अतएव सभी शिष्य उत्साह के साथ, दृढ़ता के साथ, नियमों का पालन करते हुए अपना-अपना **पुरश्चरण** करने लगे। लगभग दो महीने में उन सबके **पुरश्चरण** समाप्त हुए। उसके बाद उन सबका **शाक्ताभिषेक** किया गया। तदनन्तर उन्होंने फिर अपने-अपने मन्त्र का **दूसरा पुरश्चरण** किया। इस तरह धीरे-धीरे श्रावण का महीना आ गया। **पुरश्चरण-कार्य** में जब उन्हें अवकाश मिलता, तब **कुलानन्द जी** उन्हें **'तन्त्र-शास्त्र'** की आवश्यक बातों की शिक्षा भी देते रहते। उन्हें उनके **देवता की पद्धति, श्लोक** आदि भी लिखाते। सारांश यह कि एक ओर **पुरश्चरण** चलता रहता, तो दूसरी ओर **'तन्त्र'** के आवश्यक विषयों की शिक्षा भी। श्रावण में उन सबका **'पूर्णाभिषेक'** करा दिया गया। इसके बाद उन्हें **'मन्त्र-महोदधि'** का पाठ दिया जाने लगा।

धर्म - मार्ग पर

१०. गुरुदेव का आदेश

स्वामी जी ने वर्षा-काल वहीं व्यतीत किया। शरद पूर्णिमा के बाद उन्होंने वहाँ से प्रस्थान करने का अपना निश्चय प्रकट किया। **रामदास** को बुलाकर उन्होंने कहा— अब मैं **नर्मदा की यात्रा** में जा रहा हूँ। मैं तुम्हें अपने साथ ही रखता, परन्तु नहीं। तुमको अभी और कुछ करना है। इसलिए तुम सीधे अपने देश चले जाओ। यहाँ से प्रयागराज जाओ। प्रयागराज से रामपुर। रामपुर में अपने मौसिया के घर पर रहो, पुत्र-रूप में, क्योंकि उनके कोई सन्तान नहीं है। वे तुम्हें अपना पुत्र ही समझ कर अपने यहाँ रखेंगे। वे दीक्षित नहीं हैं, किन्तु इस विषय को वे जानते हैं। उनके पिता अच्छे **शाम्भव** थे। उस जवार में जितने शाक्त परिवार हैं, उनसे परिचय प्राप्त कर उनमें धर्म की भावना जगाओ। तुम्हारा वहाँ यही प्रधान काम होगा। दूसरा काम यह होगा कि गृहस्थ बनकर अपने वृद्ध मौसिया और मौसी की सेवा करो। अगले वर्ष मैं रामपुर आऊँगा। तब तुमसे मैं वहाँ मिलूँगा। तुम्हारी यात्रा का मार्ग-व्यय आदि का सारा प्रबन्ध भवानीसिंह ने कर दिया है।

रामदास भरे कण्ठ से कुछ कहने लगा, परन्तु वह कुछ कह न सका। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। हाथ जोड़ने के लिए हाथ उठाए, परन्तु वे भी हिलकर जहाँ-के-तहाँ ही रह गए। वह स्तब्ध मूक-वत् खड़ा रहा। **स्वामी जी** उठ खड़े हुए। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उसे अपनी छाती से लगाते हुए उन्होंने कहा— बेटा **रामदास,** यह क्या! **वीर-धर्म** की दीक्षा लेकर भी तुम इस तरह मोह-ग्रस्त हो रहे हो। **पूर्णाभिषिक्त कौल** के लिए ऐसा व्यामोह तो बेटा, सङ्गत नहीं। अपने **धर्म** को पहचानो।

यह कहकर **स्वामी जी** चुप हो रहे। **स्वामी जी** के स्पर्श ने जादू का काम किया। **रामदास स्वामी जी** के पैरों पर गिर पड़ा। फिर उठकर हाथ जोड़कर बोला— प्रभो, भारी भूल हुई, क्षमा माँगता हूँ। आशीर्वाद दीजिए कि ऐसी भूल कभी न हो। यह भी आशीर्वाद दीजिए कि मैं आपके आदेशों का अक्षरशः पालन कर सकूँ। आज्ञानुसार कल मैं जाने को तैयार हूँ।

स्वामी जी बोले— यही ठीक है। जाओ, अपने इष्ट-मित्रों से मिलो-जुलो। उनसे हँसी-खुशी के साथ बिदा माँगो। अपने पोथी-पत्रा सँभाल कर रख लो। कल सबेरे **भवानीसिंह** का आदमी आएगा। उसके साथ हँसते हुए अपनी यात्रा यहाँ से करना।

यह कहकर **स्वामी जी** आसन पर बैठ गए और **रामदास** पाठ-शाला की ओर चला गया। वहाँ जाकर उसने **कुलानन्द** से कहा— गुरु जी से मुझे आदेश मिला है कि अब मैं देश चला जाऊँ। कल सबेरे ही यहाँ से जाऊँगा।

कुलानन्द ने उसके मुँह की ओर देखकर कहा— अच्छा, यह आज्ञा हुई है। तुम्हारा कल्याण ही होगा। जाओ और घर में रहकर **स्वामी जी** के आदेशानुसार अपना जीवन-यापन करो।

कुछ खिन्नता भरे स्वर में **रामदास** ने कहा— उनकी आज्ञा का तो पालन करूँगा ही, परन्तु उनसे विलग रहने को मन नहीं चाहता।

वह क्षुब्ध-सा हो उठा। **कुलानन्द बोले—**

ठीक कहते हो, परन्तु वे अपने साथ रखते ही किसको हैं! ज्यादा-से-ज्यादा मुझे तीन महीने ही रहने का अवसर मिला था। यह अपना सौभाग्य समझो कि तुम इतने दिन से उनके साथ हो। अब तो तुम पूर्ण हो गए हो। जाओ, आनन्द से घर में रहो।

इसके बाद **रामदास** अपने सह-पाठियों के बीच में जा पहुँचा। जब उन लोगों ने जाना कि **रामदास** कल यहाँ से चला जाएगा, तब सभी दुःखी हुए, परन्तु यह समझ कर कि वह अपने घर जा रहा है, सभी उसे उत्साहित करने लगे। इस तरह हँसी-खुशी देर तक होती रही। **रामदास** ने उसमें बराबर भाग लिया, परन्तु मन-ही-मन वह बहुत उदास रहा। बाद को उसने **कुलानन्द जी** की सहायता से अपने पोथी-पत्रे और यत्-किञ्चित् सामान भी बाँधकर यथा-स्थान रख लिया। बाद को निशा में भोजन करके वह सबके साथ विश्राम करने लगा।

उसके सब साथी शीघ्र ही सो गए, परन्तु उसे नींद नहीं आ रही थी। वह कभी इधर, तो कभी उधर करवट लेकर सो जाने का प्रयत्न करता, परन्तु सफल नहीं हो रहा था, क्योंकि बहुत दिनों के बाद अब पुनः उसे अपने सम्बन्ध में चिन्ता करने का अवसर उपस्थित हुआ था। जब से उसे **स्वामी जी** का साथ मिला था, तब से आज तक उसे अपने सम्बन्ध में किसी प्रकार की चिन्ता करने का मौका ही नहीं मिला था। आज उसे इस बात का बोध हुआ कि सचमुच ही वह कितने बड़े भारी महात्मा के साथ रहा है। वह यह बात सोचकर आनन्द से भर जाता है, परन्तु जब वह यह सोचने लगता कि अब देश पुनः जाना पड़ रहा है, मौसा जी यदि अपने घर नहीं रखेंगे, तो कहाँ जाऊँगा, तब मेरा क्या होगा, यह सोचकर वह चिन्ता-ग्रस्त हो जाता।

पुनः वह यह विचार करता कि **स्वामी जी** की दया तो उस पर हो ही गई है, माँ की सेवा का प्रसाद उसे अलग मिल चुका है, निर्भय और निश्चिन्त होकर लोक का कल्याण करो, यह गुरुदेव का आदेश भी मिला है, तब किस बात की चिन्ता! इस तरह की भाव-तरङ्गों में डूब और उतरा रहा था कि उसे नींद आ गई और वह सो गया।

वह स्वप्न देखने लगा। उसने देखा कि वह रामपुर पहुँच गया है। रामपुर में वह अपने मौसा के घर गया। उसके मौसा दरवाजे पर बैठे थे। उसने जाकर उनके पैर छुए। उन्होंने पूछा— कौन?

उसने कहा— आपका सेवक **शशिनाथ!**

उन्होंने कहा— अच्छा बेटा, तुम आ गए। हम बड़ी चिन्ता में थे।

यह कहकर उन्होंने आवाज दी— अरे! आओ तो, तुम्हारा **शशिनाथ** आ गया, जिसके लिए तुम रोज सिर धुना करती थीं।

उनकी बात समाप्त नहीं हो पाई थी कि एक बुढ़िया 'कहाँ-है-कहाँ-है' कहती हुई दरवाजे पर आ खड़ी हुई। **शशिनाथ** ने लपक कर मौसी के पैर छुए और हाथ जोड़कर कहा— मैं ही तो हूँ।

बुढ़िया की प्रसन्नता का ठिकाना न था। वह बार-बार **शशिनाथ** के सिर पर हाथ फेर रही थी और कह रही थी कि — भले आ गए बेटा, भले आ गए। जब से तू यहाँ से गया, हम लोगों ने पेट भर कभी नहीं खाया, तेरी ही चिन्ता करते रहे। अब तू यहाँ रह। हमारे और कौन है? हम दो प्राणी हैं, चार दिन के हैं। यह घर-द्वार सब तेरा है, इसकी देख-भाल कर। इसी साल हम तेरा ब्याह कर देंगे। गृहस्थ बनकर रह। तेरे खाने को घर में कमी नहीं है, क्यों इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा है!

रामदास चुपचाप खड़ा सुन रहा था। उसके मौसिया ने कहा— ठीक तो है। रहो यहीं!

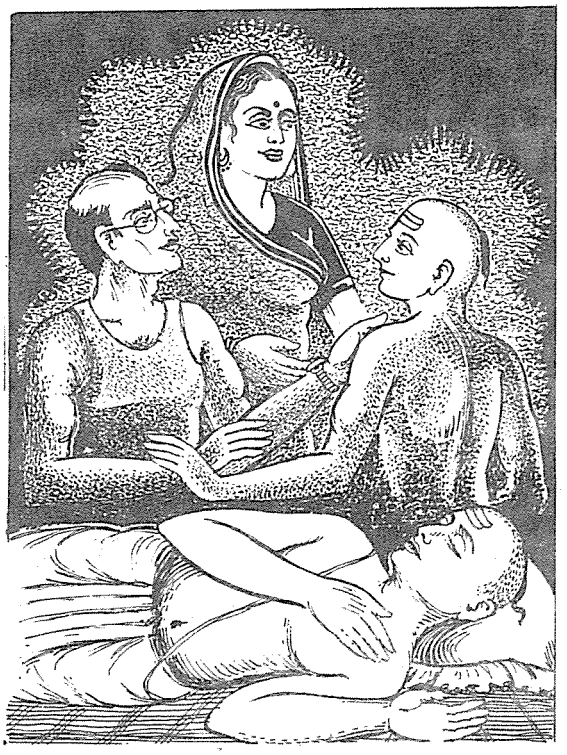

ब्राह्मण बनो। ब्राह्मण का धर्म यह है कि सद्-गृहस्थ बने, साधु-सन्तों के पीछे मारे-मारे फिरना ब्राह्मण का धर्म नहीं है।

इतने ही में उसके कान में आवाज पड़ी— **'रामदास!** उठो, सबेरा हो गया' और वह उठकर बैठ गया। उसने देखा कि सचमुच सबेरा हो गया है और उसके सब साथी उठ गए हैं और अपने-अपने काम में लगे हुए हैं।

रामदास जल्दी-जल्दी शौच-स्नान आदि से निवृत्त होकर अपनी यात्रा की तैयारी में लगा। पोथी-पत्रा आदि की गठरी उसने जल्दी-जल्दी बाँधी। इसके बाद वह **स्वामी जी** के दर्शन करने को गया। **स्वामी जी** अपने आसन पर विराजमान थे। उसने उनके पास जाकर उन्हें बड़े भक्ति-भाव से प्रणाम किया। फिर चुपचाप हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। **स्वामी जी** ने कहा— अच्छा, तुम तैयार हो गए। देखो, मैंने तुम लोगों को सब बातें बता दी हैं। हम लोगों ने अपने ऊपर भारी जिम्मेदारी का कार्य लिया है। हम लोग यह काम तभी पूरा कर सकेंगे, जब इसे स्वार्थ-रहित होकर करेंगे। **शाक्त-धर्म** सच्चे गुरुओं के अभाव से बहुत अधिक शिथिलता को प्राप्त हो गया है। तुम लोगों को उसकी यहाँ पूर्ण दीक्षा-शिक्षा दी गई है। जाओ, तुम अपने केन्द्र में इसका प्रचार करो। केवल उन्हीं घरानों में प्रचार का कार्य करना होगा, जो **शाक्त** रहे हैं या हैं। कोई उपयुक्त अधिकारी मिल जाय, तो उसे भी **दीक्षा** देकर **शाक्त** बना सकते हो। तुम्हारे दूसरे साथी भी अपने-अपने केन्द्र में कार्य करने के लिए दो ही एक दिन में यहाँ से चले जाएँगे। **तीर्थराज प्रयाग** में माघ की **अमावास्या** को हम सब लोग फिर मिलेंगे। अच्छा, अब जाओ! हाँ, एक बात और। अपनी **मन्त्र-विद्या** से भूलकर भी धनार्जन न करना। हाँ, उसका प्रयोग निःस्वार्थ भाव से पर-हित के लिए कर सकते हो। तुमको वैद्यक और **ज्योतिष** की व्यावहारिक शिक्षा दी गई है। उससे अपनी जीविका चलाना।

रामदास ने पहले की तरह **स्वामी जी** को प्रणाम किया और वहाँ से चला आया। जब वह अपने स्थान पर पहुँचा, तब उसके सब साथी वहाँ उपस्थित मिले। एक ने कहा— ठाकुर साहब का आदमी आ गया है।

रामदास ने कहा— मैं भी तैयार हूँ।

उसने अपना सामान उठा लिया और साथियों के साथ पाठशाला के बाहर निकला। बाहर आकर वह **कुलानन्द जी** के पास गया। उनके चरण स्पर्श कर उसने कहा— गुरु जी, आज्ञा दीजिए।

उन्होंने हँसते हुए कहा— समय आ गया है। चलो-चलो, तुम्हें पहुँचा आएँ। ठाकुर साहब का आदमी द्वार पर बैठा है।

घर के बाहर आकर **रामदास** ने **कुलानन्द** को प्रणाम किया और अपने सह-पाठियों से यथोचित अभिवादन कर वह ठाकुर साहब के

आदमी के साथ चल पड़ा। कुछ ही देर में **रामदास** बस्ती में जा पहुँचा। जब वह **ठाकुर साहब** के मकान में पहुँचा, तब उन्होंने उसे बड़े आदर से लिया। फिर उसे एक आसन पर बैठाकर कहा— आप जल-पान कर लें, यात्रा की सब तैयारी ठीक है।

उनके आदेश पर नौकर **रामदास** के लिए मिष्ठान्न ले आया। जब वह जलपान कर चुका, तब **ठाकुर साहब** ने एक झोला मँगवाया। उन्होंने **रामदास** से कहा— इसमें आपके लिए कुछ वस्त्र रखे हैं, जो आपके काम आएँगे।

उन्होंने उसी झोले में उसकी गठरी भी रखवा दी। बिछाने के लिए एक दरी और पहनने के लिए जूता भी दिया। इसके बाद उन्होंने उसे २५ रुपए देते हुए कहा— यह सब **स्वामी जी** के आदेश से किया जाता है। यह सब आप प्रसन्न मन से स्वीकार करें। अब तो आप गृहस्थों के बीच रहने जा रहे हैं। गृहस्थों का रहन-सहन आपको ग्रहण करना पड़ेगा।

इसी बीच में **ठाकुर साहब** के छोटे भाई भी वहाँ आ गए। उन्हें देखकर उन्होंने कहा— छोटे भइया, यही **ब्रह्मचारी जी** तुम्हारे साथ जाएँगे। इन्हें आराम से रखना। **प्रयाग** पहुँच कर इन्हें इनके स्टेशन का टिकट कटवाकर इनको गाड़ी में बिठा देना। किसी तरह का कष्ट न होने पाए।

छोटे भइया ने कहा— जो आपकी आज्ञा है, उसे मैं पालन करूँगा। **ब्रह्मचारी जी** को मैं बड़े आराम के साथ ले जाऊँगा। आप निश्चिन्त रहें।

बाहर रहलू तैयार खड़ी थी। उसमें **रामदास** का भी सामान रख दिया गया। छोटे भइया के साथ **रामदास** भी रहलू में बैठ गए। रहलू स्टेशन को चल पड़ी।

दोपहर होते-होते वे स्टेशन पहुँच गए। गाड़ी आने में अभी देर थी। यहाँ उतर कर छोटे भइया ने **रामदास** को जल-पान कराया और स्वयं भी किया। गाड़ी आने का जब समय हुआ, तब टिकट लेकर गाड़ी आने पर वे उस पर सवार हो गए। रात कोई तीन बजे वे **प्रयाग** पहुँचे। यहाँ उतर कर वे दोनों पास की धर्मशाला में ठहर गए। सबेरा होने पर **सङ्गम** में जाकर उन दोनों ने स्नान किया। यहाँ **रामदास** ने अपना क्षौर भी कराया। अब उसका वेश साधारण गृहस्थ का हो गया। वहाँ से लौटकर धर्मशाले में दोनों आदमियों ने भोजन किया। भोजन के बाद छोटे भइया ने कहा— आप यहीं विश्राम करें। आपकी गाड़ी रात में नौ बजे मिलेगी। तब तक मैं शहर में अपना कुछ काम कर आऊँ।

दो-तीन घण्टे के बाद छोटे भइया फिर धर्म-शाला लौट आए और वे भी आराम करने लगे। सन्ध्या होने पर भोजन का प्रबन्ध किया गया और खा-पी चुकने के बाद ठीक समय पर **रामदास** को स्टेशन ले जाकर, उसके स्टेशन का टिकट खरीद कर उसे दिया और उसके साथ जाकर उसे गाड़ी में बिठा आए। जब गाड़ी छूटी, तब छोटे भइया ने उससे विदा ली।

रामदास की गाड़ी चल चुकी थी। वह गाड़ी में बैठा अपने भविष्य की बातें सोचने लगा, परन्तु **धर्म का भाव** उसमें इतना भरा हुआ था कि **भविष्य की चिन्ता** उसे विचलित नहीं कर पाती थी। एक-एक करके उसके मन में अनेक चिन्ताएँ उठती थीं, परन्तु वह यही कहकर उनका समाधान कर लेता था कि **'माँ की जो इच्छा होगी, वह होगा। मैंने तो अपने को उनके चरणों पर डाल दिया है। तब किस बात की चिन्ता!'** कभी-कभी वह पास बैठे यात्रियों से बातचीत भी करने लगता था। सवेरा होते-होते उसकी गाड़ी उसके स्टेशन पर पहुँच गई। पास बैठे हुए एक यात्री ने कहा— लो भाई, आपका तो स्टेशन आ गया।

■

धर्म-मार्ग पर

११. पुनः गृह की ओर!

रामदास ने उठकर अपना सामान सँभाला। जब गाड़ी स्टेशन पर खड़ी गई, तब वह धीरे से उतर गया। स्टेशन में पहुँच कर दरवाजे पर अपना टिकट देकर यात्रियों के साथ वह भी स्टेशन के बाहर हो गया। बाहर गाड़ीवाले पुकार रहे थे कि जिसको रामपुर घाट जाना हो, वह इधर आए। **रामदास** एक गाड़ी में बैठ गया। जब उसकी गाड़ी में चार सवारियाँ हो गईं, तब वह गाड़ी चल पड़ी। राह में गाड़ी पर बैठे हुए यात्रियों से **रामदास** की बातचीत होती रही। उनमें एक सज्जन उसके मौसिया के परिचित निकले। उन्होंने कहा— मैं वैद्य जी को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। मेरा गाँव रामपुर से कुछ ही दूर आगे है। मैं आपको उनके घर पहुँचा दूँगा।

रामदास ने कहा— यह आपकी कृपा होगी।

इस तरह उन लोगों में तरह-तरह की बातें होती रहीं। आठ बजते-बजते वे लोग घाट पर पहुँच गए। गङ्गा जी के दर्शन कर सबने गाड़ी से उतर कर गङ्गाजी को प्रणाम किया। एक ने हँसकर कहा— यह नाव-घाट है। चलो भाई, शौच जायँ, स्नान-पूजन से भी छुट्टी कर लें। नाव ग्यारह बजे तक छूटेगी।

सब लोगों ने अपने-अपने लोटे निकाले और शौच आदि कार्यों में लग गए। स्टेशन की और भी गाड़ियाँ आ गईं और दस बजते-बजते वहाँ यात्रियों की भीड़ लग गई। सभी यात्री पार उतरने को उतावले थे, परन्तु मल्लाह लोग नाव पर बैठे परस्पर गप-शप कर रहे थे। अन्त में उन्होंने पैसा उगाहना शुरू किया। सब लोगों ने जल्दी-जल्दी पैसे दे दिए, जिससे नाव जल्दी छूटे। राम-राम करके नाव छूटी। नाव जब पार लग गई, तब **रामदास** भी सबके साथ नाव से उतरा। सब लोगों ने अपनी-अपनी राह ली। कोई गाड़ियों पर बैठा, कोई पैदल-ही चल पड़ा। **रामदास** के साथी यात्री ने कहा— आओ, हम लोग कुटी होकर निकल चलें।

रामदास ने कहा— हाँ, ठीक है, चलो।

दोनों साथी चल पड़े। जब वे कुटी के किनारे पहुँचे और **रामदास** ने देखा कि कुटी खाली पड़ी है, तब उसने पूछा— यहाँ के बाबा जी कहाँ गए?

उसके साथी ने कहा— उनकी कथा बड़ी लम्बी है। मैं अपने मुँह से कुछ कहना नहीं चाहता। अपने मौसिया जी से पूछ लेना, वे सब बता देंगे।

यह कहकर वह दूसरी बातें करने लगा। धीरे-धीरे वे रामपुर के पास पहुँच गए। गाँव के पास पहुँचकर साथी ने कहा— भाई, आप तो आ गए! (अँगुली से दिखाकर) वैद्य जी का वह मकान है। मेरे गाँव की यह राह है। मैं चलता हूँ, नमस्कार।

रामदास ने कहा— नमस्कार।

यह कहकर वह भी अपने मौसिया जी के घर की ओर घूम पड़ा।

रामदास दरवाजे पर पहुँचा। वहाँ कोई नहीं था। इतने में घर के भीतर से एक नव-युवक निकला। उसने आगन्तुक से पूछा— आप कौन हैं? कहाँ से आ रहे हैं?

आगन्तुक ने उत्तर दिया— मैं दूर से आ रहा हूँ, आप मुझे नहीं जानेंगे। यह मेरे मौसिया का घर है।

नवयुवक ने पूछा— आपका क्या नाम है? वैद्य जी तो बीमार हैं।

आगन्तुक उदास हो गया। उसने कहा—

मेरा नाम **शशिनाथ** है।

यह कहकर उसने एक लम्बी साँस छोड़ी। फिर चबूतरे पर अपना झोला रखकर उसके पास बैठ गया। नवयुवक ने घर के भीतर जाकर कहा— वैद्य जी, एक आदमी आया है। अपना नाम **शशिनाथ** बताता है, आपको मौसिया कहता है।

वैद्य जी तो कुछ न बोले, पर उनकी पत्नी ने उत्सुकता-भरे स्वर में कहा— **शशिनाथ!** अच्छा, उसको बुला लाओ।

नवयुवक ने द्वार पर आकर आगन्तुक से कहा— आइए, आपको बुला रहे हैं।

इस पर **शशिनाथ** ने अपना सामान लिया और नव-युवक के साथ भीतर चला गया। भीतर जाकर उसने बीमार पड़े हुए मौसिया के पैर छुए, फिर मौसी के। मौसी ने दुःख-भरे स्वर में पहले उसका कुशल पूछा, उसके बाद अपने वृद्ध पति की बीमारी का वर्णन किया।

शशिनाथ ने कहा— मौसी, आप चिन्ता न करें। मैं आ गया हूँ! मैं मौसिया जी को शीघ्र ही अच्छा कर दूँगा।

यह कहकर उसने जल्दी-जल्दी झोले से अपनी गठरी निकाली। गठरी खोलकर उसके भीतर से एक डिब्बा निकाला। डिब्बे से दवा निकाल कर उसने कहा— इसी दवा की तीन खुराक से मैं मौसिया को चङ्गा कर दूँगा।

अब तक उसके मौसिया जी बहुत कुछ सावधान हो गए थे। उन्होंने धीरे-धीरे कहा— बेटा **शशिनाथ!** तुम आ गए, यही बहुत है। यह मेरा अन्तिम समय है। मैंने सब दवा कर ली है। अब दवा-पानी की कोई जरूरत नहीं है।

शशिनाथ ने कहा— नहीं मौसिया जी, आप ऐसी बात न कहें। आप मुझे अवसर देने की कृपा करें। मेरी दवा की कम-से-कम ये तीन खुराक खा लेंगे, तब आप ही जान जाएँगे कि मैंने ठीक कहा है या नहीं।

वैद्य जी ने उसकी ओर हाथ बढ़ा कर धीरे-धीरे कहा— अच्छा, लाओ बेटा! तुम भी अपनी कर लो।

शशिनाथ ने एक छोटी-सी गोली अपने मौसिया के हाथ में रख दी, जिसे उन्होंने अपने मुँह में डाल लिया। उसके बाद वे चुप हो रहे। **शशिनाथ** की मौसी ने कहा— बेटा! तुमने तो कुछ खाया-पिया न होगा, कुछ जल-पान कर लो, सन्ध्या हो आई है।

शशिनाथ ने कहा— मैं जल-पान कर चुका हूँ। तुम मेरे खाने-पीने की चिन्ता न करो। यह बताओ कि मौसिया जी को तुमने कुछ खिलाया-पिलाया है या यों ही रख रही हो?

मौसी ने कहा— पहले तो कुछ खा लेते थे, परन्तु इधर दो दिन से कुछ भी नहीं खाया है। सत्य तो यह है कि इनकी बीमारी के कारण कई दिन से चूल्हा ही नहीं जला। आज तुम्हारे लिए खाना बनाऊँगी।

यह कहकर वे उठ गईं। **शशिनाथ** उसी जगह चुपचाप बैठा रहा। उसकी निगाह रोगी के मुख-मण्डल पर जमी थी। पन्द्रह-बीस मिनट के भीतर ही उसने देखा कि रोगी की चेष्टा में परिवर्तन हो रहा है। वह समझ गया कि दवा

ने अपना काम किया है। वह प्रसन्न हो उठा, पर उसने कुछ कहा नहीं। पन्द्रह-बीस मिनट के बाद रोगी ने करवट ली और उसने स्पष्ट स्वर में कहा — तुम कहाँ चली गई? **शशिनाथ** को कुछ खिलाया-पिलाया या नहीं?

बुढ़िया ने कई दिन के बाद इस तरह बोलते सुना था। वह प्रसन्नता से जल्दी-जल्दी अपने रोगी पति के पास आई। उसने कहा— मैं उसी के भोजन की तैयारी में लगी हूँ। जल-पान को मैंने पूछा था, पर उसने इन्कार कर दिया।

वृद्ध ने पूछा— क्या बनाओगी? मैं भी आज कुछ खाना चाहता हूँ। रोटी, दाल, तरकारी बना लेना।

यह कहकर वे चुप हो रहे। **शशिनाथ** चुप बैठा सुनता रहा। वह कुछ नहीं बोला, परन्तु मन-ही-मन बहुत खुश हो रहा था। उसकी मौसी भी प्रसन्न-मन होकर धीरे-धीरे वहाँ से चली गई।

सूर्यास्त हो गया। दिया-बत्ती जल गई। **शशिनाथ** ने अपने मौसिया से पूछा— आपकी कैसी तबियत है?

मौसिया ने कहा— पहल से तो अच्छा लग रहा है। कुछ खाने की भी इच्छा हो रही है, परन्तु खाऊँगा नहीं। तुम्हारी क्या राय है?

शशिनाथ ने कहा— कम-से-कम थोड़ा-सा दूध आप जरूर ले लें।

यह कहकर उसने दूसरी गोली उन्हें थमा दी और कहा— दवा की यह दूसरी खुराक आप ले लें।

उन्होंने उसे लेकर मुँह में डाल लिया। अब **शशिनाथ** उठा। वह मौसी के पास गया और उससे कहा — मौसिया जी को रात में दूध देना होगा। क्या घर में दूध है?

मौसी ने कहा— दूध तो लाना होगा, घर में नहीं है। कोई चिन्ता नहीं है, आ जाएगा। उनका क्या हाल है?

शशिनाथ ने कहा— बहुत अच्छा हाल है। कल सवेरे आप उन्हें एकदम नीरोग पाएँगी।

यह कहकर वह फिर रोगी के पास आकर बैठ गया। उसके मौसिया जी को झपकी-सी लग गई थी। वह चुप बैठा उन्हें देखता रहा। दस बजते-बजते भोजन बनकर तैयार हो गया। दूध भी गरम कर लिया गया। कोई साढ़े दस बजे रोगी की नींद खुली। उसने कहा— मुझे भूख लगी है। कुछ खाने-पीने को दोगी या नहीं?

शशिनाथ जल्दी से जाकर दूध ले आया और कहा— लीजिए, यह दूध है।

उसकी मौसी भी साथ ही आ गई थी। उसके हाथ में दूध का कटोरा देकर कहा— मैं मौसिया जी को उठाकर बैठाता हूँ, तुम दूध पिला देना।

उसने सहारा देकर रोगी को उठाकर बैठाया। जब रोगी दूध पी चुका, तब उसे उसने पूर्व-वत् ही लिटा दिया। उसके बाद उसने कहा— मौसिया जी, अब आप यह तीसरी खुराक भी खा लें।

रोगी ने गोली लेकर मुख में रख ली। थोड़ी देर के बाद रोगी सो गया। यह देखकर उसकी मौसी ने कहा— चलो बेटा, अब तुम भी भोजन कर लो।

शशिनाथ ने जाकर भोजन किया और उसके बाद उसकी मौसी ने। भोजन के बाद दोनों ने अपने-अपने बिस्तर लगाए और पड़कर विश्राम करने लगे। दूसरे दिन सवेरे वैद्य जी ने अपने को बहुत-कुछ अच्छा पाया। यहाँ तक कि वे दरवाजे पर जाकर बैठे। लोगों ने जब उन्हें देखा, तब वे बहुत चकित हुए। कई एक ने आकर पूछा— आपकी तबियत तो बहुत खराब थी!

उन्होंने कहा— ठीक कहते हो, परन्तु मेरे साढ़ू का लड़का **शशिनाथ** कल आ गया और उसने ऐसी दवा दी कि मैं चङ्गा हो गया, कुछ कमजोरी भर है।

बात-की-बात में सारे गाँव में खबर फैल गई और **शशिनाथ** उस दिन से वैद्य क्या, जादूगर समझा जाने लगा।

धर्म-मार्ग पर

१२. शशिनाथ का चमत्कार

अब **वैद्य जी** बहुत कुछ चंगे हो गए थे। सदा की भाँति दरवाजे पर उठने-बैठने भी लगे थे। एक दिन भोजन के बाद जब वे दरवाजे पर बैठे थे, तब **शशिनाथ** घर के बाहर निकला। उसे देखकर वैद्य जी ने कहा—**बेटा शशिनाथ,** तुम तो बड़े चामत्कारिक वैद्य निकले! यह सब कहाँ पढ़ा? बताओ तो।

वैद्य जी की बात सुनकर **शशिनाथ** धीरे-धीरे आकर उनके पास बैठ गया। उसने कहा—**मौसिया जी,** मैं विशेष पढ़ा-लिखा नहीं हूँ, परन्तु भाग्य से ऐसे लोगों का साथ हो गया कि थोड़ी-बहुत **वैद्यक, ज्योतिष** और **मन्त्र-विद्या** भी सीख ली।

यह कहकर उनसे संक्षेप में अपना सारा वृत्तान्त उन्हें बता दिया। उनकी यह बातचीत हो ही रही थी कि एकाएक एक बैलगाड़ी खड़खड़ाती हुई आकर उनके दरवाजे पर खड़ी हो गई। उससे एक सज्जन को उतरते हुए देखकर **वैद्य जी** उठकर खड़े हो गए और दूर ही से कहा—अच्छा **त्रिवेदी जी** हैं! आइए, आइए। सब कुशल है न?

अब तक **त्रिवेदी जी** वैद्य जी के पास आ गए थे। उन्होंने सादर वैद्य जी को प्रणाम किया और बिछी हुई चटाई पर बैठ गए। इसके बाद वे बोले—**वैद्य जी,** कुशल नहीं है। एक अतिथि घर आए हैं। वे बीमार हो गए हैं। पिता जी ने आपको बुलाया है।

वैद्य जी दुःख प्रकट करते हुए बोले—ऐसी बात है! क्या बीमारी है? मैं अवश्य चलता, परन्तु अभी-अभी बीमारी से उठा हूँ। (पास बैठे हुए **शशिनाथ**) की ओर सङ्केत करते हुए) यदि यह लड़का न आ गया होता, तो आज आप मुझे इस तरह बातें करते हुए न पाते, परन्तु इस लड़के ने मुझे मृत्यु के चङ्गुल से छुड़ा लिया। इसी को आप अपने साथ ले जायँ। यह सब ठीक कर देगा।

त्रिवेदी जी बोले— मैं देख रहा हूँ कि आप अभी कमजोर हैं। आपकी बीमारी का हाल मुझे मार्ग में ही मिल गया था, परन्तु पिता जी ने कहा था कि आपको जैसे बने, वैसे अपने साथ अवश्य लाना। आप स्वयं जानते हैं कि आप पर उनका कितना विश्वास है। फिर रोगी को रोग भर ही नहीं है, बाधा का भी सन्देह है।

वैद्य जी ने कहा— मैं इन्कार कहाँ करता हूँ। मैं चलने को तैयार हूँ। मैंने तो इतना भर कहा है कि आपका भी काम बन जाय और मेरा भी। आप मेरी बात मानें, यह सब ठीक कर देगा। यह कोरा वैद्य ही नहीं है, **ज्योतिष** भी जानता है और **मन्त्र-विद्या** भी। आप इसे अपने साथ ले तो जाइए। यह आपको चमत्कार दिखाएगा। तब आप मेरी बात को ठीक पाएँगे।

त्रिवेदी जी बोले— अच्छा, तो फिर इन्हीं को साथ कर दीजिए, परन्तु जल्दी करिए। सचमुच आप अभी कहीं आने-जाने के योग्य नहीं हैं।

वैद्य जी ने **शशिनाथ** से कहा— जाओ, झटपट तैयार होकर आ जाओ, परन्तु पहले **त्रिवेदी जी** के लिए जल-पान दे जाना।

त्रिवेदी जी ने कहा— नहीं, जल-पान की कोई जरूरत नहीं है, जरूरत है जल्दी लौट चलने की।

वैद्य जी त्रिवेदी जी से दूसरी बात करने लगे। **शशिनाथ** उनके लिए जल-पान ले आया। उनको जल-पान कराकर उसने उनके गाड़ीवान

को भी जल-पान कराया। जब वह भीतर जाने लगा, तब **त्रिवेदी जी** ने कहा—जल्दी करिएगा **शशिनाथ जी**।

'मैं अभी आया' कहता हुआ वह जल्दी-जल्दी भीतर चला गया। कुछ ही क्षणों में **शशिनाथ** तैयार होकर बाहर आ गया। उसने **वैद्य जी** के चरण-स्पर्श किए और वह **त्रिवेदी जी** के साथ गाड़ी पर जा बैठा।

गाड़ी द्रुत-गति से चल पड़ी। बैलों की जोड़ी तगड़ी थी। सन्ध्या होने के पहले ही **शशिनाथ** त्रिवेदी जी के गाँव पहुँच गया। मार्ग में बातों-ही-बातों में उसने जान लिया था कि रोगी कौन है, उसे क्या रोग है और वह रोगी कैसे हो गया? घर पहुँचने पर **त्रिवेदी जी** गाड़ी से उतरे और **शशिनाथ** को ले जाकर एक उच्च आसन पर आसीन किया। फिर वे भीतर चले गए। थोड़ी देर के बाद वे बाहर आए और **शशिनाथ** से कहा कि— भीतर आइए, पहले रोगी को देख लीजिए, तब और व्यवस्था हो।

इस पर **शशिनाथ** उनके साथ भीतर गया। रोगी को बड़े ध्यान से देखा। उसे कुछ देर देखता रहा, नाड़ी भी देखी, लक्षण भी देखे। इसके बाद उसने **त्रिवेदी जी** से कहा—बाहर आइए।

और वह लौट पड़ा। उसके साथ **त्रिवेदी जी** नहीं, किन्तु उनके पिता आए। बाहर आकर **शशिनाथ** ने **वृद्ध त्रिवेदी जी** से कहा—**जगदम्बा** की कृपा हुई, तो रोगी तीन घण्टे के भीतर चङ्गा हो जाएगा। मुझे आप अमुक-अमुक समान मँगा दें। तब तक मैं स्नान करता हूँ।

वृद्ध त्रिवेदी जी ने एक आदमी को बताया हुआ सामान शीघ्र ले आने का आदेश किया। दूसरे आदमी को **शशिनाथ** को स्नान कराने के काम में नियुक्त किया। **शशिनाथ** ने **वृद्ध त्रिवेदी जी** से कहा— मैं अपना अनुष्ठान रोगी के पास ही करूँगा। वहीं उसकी व्यवस्था करवाने का कष्ट करें।

स्नान करके अपना आसन और पूजा की पुस्तक लेकर **शशिनाथ** घर के भीतर गया। वहाँ सब प्रबन्ध ठीक पाकर उसने अपना आसन लगाया और अनुष्ठान के कार्य में संलग्न हो गया। तीन घण्टे बीतने भी न पाए थे कि रोगी गहरी नींद के खर्राटे भरने लगा। **पूजा** के समाप्त हो जाने पर शशिनाथ ने हँसकर **वृद्ध त्रिवेदी जी** से कहा—मेरा **अनुष्ठान** सफल हो गया, कल रोगी आपको भला-चङ्गा मिलेगा।

यह कहकर वह बाहर जाने को चल पड़ा। बाहर उसके भोजन और शयन की पहले ही व्यवस्था थी। बाहर आकर उसने भोजन किया और शयन करने की तैयारी की। वह थक गया था। उसके आराम की पूरी व्यवस्था कर **त्रिवेदी जी** वहीं पास अपने बिस्तरे पर जा लेटे। इन दोनों में कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। अन्त में जब **शशिनाथ** को नींद आने लगी, तब वे चुप हो रहे और सो जाने का उपक्रम करने लगे। थोड़ी देर में वे भी सो गए। तड़के ही **शशिनाथ** जाग गए थे, उनके साथ **वृद्ध त्रिवेदी जी** भी। अभी कुछ अँधेरा ही था कि भरभराती हुई एक मोटर गाड़ी **त्रिवेदी जी** के द्वार पर आकर खड़ी हो गई। मानों उसके आने की बात **त्रिवेदी जी** को ज्ञात थी, अतएव वे झटपट उठ बैठे और चारपाई से उतर कर जल्दी-जल्दी मोटर की ओर बढ़े। ड्राइवर ने गाड़ी के खड़े होते ही उससे उतर कर मोटर का द्वार खोल दिया था। **त्रिवेदी जी** के उसके पास पहुँचने के पहले ही उससे दो सज्जन उतर कर बाहर खड़े हो गए थे। उनके पास पहुँच कर **त्रिवेदी जी** ने कहा— **सेठ जी**, आप आ गए। बहुत अच्छा हुआ। **बच्चा बाबू** अच्छे हैं।

सेठ जी ने उन्हें प्रणाम किया और कहा—अच्छे हैं! हम सब लोग तो बहुत घबरा गए थे।

त्रिवेदी जी उन्हें अपने साथ चौपाल में ले आए और उन्हें कुर्सियों पर बैठाया, जो वहाँ पहले ही से रक्खी थीं। **त्रिवेदी जी** भी अपनी चारपाई पर बैठ गए। उन्होंने पूछा—आपके साथ ये दूसरे सज्जन कौन हैं?

सेठ जी ने कहा—**डाक्टर साहब** हैं। इन्हीं के कारण देर हो गई। नहीं तो मैं और पहले आ जाता। कल रात में मैं बाहर से लौटा। घर पहुँचने पर यहाँ का हाल मालूम हुआ। मैं तो उसी समय चल देता, परन्तु **डाक्टर साहब** तैयार न हो सके। अच्छा, यह तो बताइए कि **बच्चा बाबू** बीमार कैसे हो गए? घर में तो लोग विचित्र ही बात कहते थे।

त्रिवेदी जी ने कहा— **गोकरन** के साथ **बच्चा बाबू** यहाँ शिकार खेलने आए थे। दो दिन शिकार की दौड़-धूप में रहे। तीसरे दिन पास की ढकिया में दोपहर के समय एक बाग के भीतर से निकले। उसमें चार-पाँच महुवे के सघन वृक्ष थे, जिनमें से एक पर कुछ हरियल बैठे दिखाई दिए। देखते ही **बच्चा बाबू** ने बन्दूक दाग दी। और तो उड़ गए, लेकिन एक फड़फड़ाता हुआ नीचे गिरा। नीचे गिरा नहीं कि वह भी शीघ्र ही सँभलकर अपने साथियों के पास जा बैठा। **बच्चा बाबू** ने फिर उन पर गोली चलाई। उनमें से फिर एक गिरा और तुरन्त ही फिर सँभलकर उड़ कर अपने साथियों के पास जा बैठा। **बच्चा बाबू** ने फिर गोली चलाई और फिर वही बात हुई। **बच्चा बाबू** फिर गोली चलाने को उद्यत हुए, परन्तु इस बार **गोकरन** ने उन्हें रोक दिया और कहा—आइए, अब घर चलें। काफी शिकार हो गया है। फिर वे दोनों वहाँ से चुपचाप घर को लौट पड़े। घर पहुँचते-पहुँचते **बच्चा बाबू** को ज्वर हो आया। हम लोगों ने समझा कि थकान के कारण ऐसा हुआ, परन्तु रात में ज्वर अधिक बढ़ गया, साथ ही बेचैनी बढ़ गई। दूसरे दिन गाँव के वैद्य को दिखाया। उन्होंने कहा कि बुखार खराब है और अभी इस दिशा में दवा देनी ठीक नहीं। अतएव घबराकर हम लोगों ने आपको बुलाने के लिए मोटर भेज दी।

इसी बीच में दरवाजा खुला और **गोकरन** बाहर निकले। सवेरा हो गया था। **सेठ जी** को देखकर उन्होंने कहा—अच्छा, आप आ गए! **बच्चा बाबू** को आज रात में बुखार बिल्कुल नहीं रहा। रात भर सोते रहे। इस समय भी गहरी नींद में हैं। परसों रात भर नहीं सोए। कदाचित् देर में उठेंगे।

डाक्टर साहब बोल पड़े—नहीं-नहीं, उन्हें सोने दीजिए। जगाइएगा मत। एकाएक बुखार उतर कैसे गया?

गोकरन ने कहा—दवा तो कोई दी नहीं गई। हाँ, एक **पण्डित जी** ने कुछ **पूजा-पाठ** अवश्य किया था। उनके **पूजा** करते समय में ही **बच्चा बाबू** को नींद लग गई थी। रात में मैंने दो बार थर्मामीटर लगाकर देखा, ज्वर गायब ही मिला।

डाक्टर साहब—ऐं! **पूजा-पाठ** से ज्वर गायब! नान्सेन्स!!

सेठ जी बोले—ऐसा न कहिए, डाक्टर साहब! **पूजा-पाठ** में बड़ी करामात है। यह सब आप लोग अँगरेजीवाले नहीं जान सकते। **भगवान्** ने बड़ी दया की। वे **पण्डित जी** कहाँ हैं?

वृद्ध त्रिवेदी जी ने कहा—अभी तक तो वे यहीं थे। शायद शौच आदि के लिए बाहर चले गए हैं।

अब सब लोग प्रसन्न थे। **सेठ जी** के लिए चाय आदि का प्रबन्ध होने लगा। उनके लिए दो पलँग लगा दिए गए। कपड़े उतार कर वे उन पर जा बैठे। तब तक चाय भी आ गई। चाय पीकर वे विश्राम करने लगे।

शशिनाथ भी शौच आदि से निवृत्त होकर आ गए। **सेठ जी** ने बड़े आदर से उनको प्रणाम किया। उन्होंने पूछा—पण्डित जी, मेरे बच्चे को क्या हो गया था?

शशिनाथ— जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, थकान से उन्हें ज्वर हो आया था।

सेठ जी ने कहा— परन्तु ये लोग तो कुछ और ही बात कहते हैं।

शशिनाथ ने कहा— जो जैसा समझता है, वह वैसा कहता है।

सब चुप हो रहे। **शशिनाथ** आसन लगाकर

अपने **पूजा-पाठ** में लग गए। इधर वे लोग आपस में फिर बातचीत करने लगे। इसी बीच में **गोकरन** के छोटे भाई ने कहा कि 'बच्चा बाबू की नींद खुल गई है' और वे लोग जल्दी-जल्दी उठकर भीतर चले गए।उधर **बच्चा बाबू** के जागने पर **गोकरन** ने उन्हें बताया कि 'यहाँ की खबर पाकर **सेठ जी** डाक्टर लेकर आए हैं। तुम बीमार हो गए थे। मैंने मोटर भेजकर उन्हें बुलाया है।'

वे यह सब कह ही रहे थे कि **सेठ जी** डाक्टर के साथ आ पहुँचे। उन्हें देखते ही **बच्चा बाबू** उठ बैठे और पलंग से उतर कर **सेठ जी** के पैर छुए और **डाक्टर साहब** को नमस्कार किया।

डाक्टर साहब ने पूछा — क्यों, कैसी तबियत है **बाबू?**

बच्चा बाबू चारपाई पर बैठते हुए तपाक से बोल उठे— बिल्कुल अच्छी। मैंने तो अभी जाना है कि मुझे ज्वर आ गया था। आइए, देखिए।

डॉक्टर साहब ने थर्मामीटर लगाकर देखा-भाला, आले से हृदय और फेफड़े की जाँच-पड़ताल की। रक्त-चाप भी देखा-भाला। कोई भी दोष न मिला। उन्होंने चकित होकर कहा—**बाबू,** ठीक कहते हो। तुम्हारी तबियत बिल्कुल ठीक है। यहाँ तक कि यह भी नहीं प्रतीत होता कि पिछली रात तक तुम ज्वर से पीड़ित थे! आश्चर्य होता है।

मुस्कराते हुए **बच्चा बाबू** ने कहा— हाँ, मैं बिल्कुल ठीक हूँ।

सब प्रसन्न थे। **सेठ जी** बोले — तब चलो न **बच्चा!** अब घर। वहाँ सब घबरा रहे होंगे।

बच्चा बाबू ने कहा— मैं तैयार हूँ।

पिता-पुत्र की बात सुनकर **गोकरन** ने कहा—जाने से मैं नहीं रोकूँगा। **बच्चा बाबू** का जाना ही ठीक है, परन्तु **बच्चा बाबू** ने दो दिन में कुछ खाया नहीं है। कुछ खा-पी लें, तब जायँ।

त्रिवेदी जी की बात से सब लोग सहमत हो गए। **डॉक्टर साहब** ने कहा कि 'आज इन्हें मूँग की खिचड़ी दी जाय।' **गोकरन** ने कहा कि 'आप बहुत ठीक कहते हैं।' यह कहकर उन्होंने अपने छोटे भाई से कहा कि 'घर जाकर इन सब लोगों के लिए जल्दी-से-जल्दी भोजन तैयार कराओ।' इधर ये लोग अपनी तैयारी करने लगे, उधर घर में भोजन तैयार होने लगा। घण्टे भर के भीतर ही भोजन तैयार हो गया। तुरन्त ही भोजन करके बच्चा बाबू को साथ लेकर **सेठ जी** बाहर निकले। बाहर **शशिनाथ** को **पूजा** के आसन में बैठा देखकर **सेठ जी** ने कहा— **पण्डित जी,** हम लोग घर जा रहे हैं। आपकी कृपा से **बच्चा बाबू** बिल्कुल ठीक हो गए।

यह कहकर उन्होंने दस रुपए का नोट **शशिनाथ** के आगे रख दिया। **शशिनाथ** ने कहा—**सेठ जी,** मैं ब्राह्मण हूँ। आप धनवान वैश्य हैं। आपका दान लेने का मुझे अधिकार है। यही नहीं, मैं आपसे याचना करने का भी हक रखता हूँ परन्तु इस प्रसङ्ग में मैं आपकी कोई चीज भी नहीं ले सकता, रुपया तो ले ही नहीं सकता। मेरे **गुरु-देव** का ऐसा ही आदेश है। मैं क्षमा चाहता हूँ।

सेठ जी ने हँसकर कहा— तो आप यह बताने की कृपा कीजिए कि दी हुई वस्तु क्या मैं लौटा सकता हूँ?

शशिनाथ ने हँसकर कहा— यदि ऐसी बात है, तो किसी दूसरे ब्राह्मण को दे दीजिए।

सेठ जी कुछ नहीं बोले। उन्होंने नोट उठाकर अपनी जेब में रख लिया और हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम कर मोटर की ओर चल पड़े। **बच्चा बाबू** ने भी अपने पिता का अनुसरण किया और उनके साथ हो गए। **डाक्टर साहब** पहले ही मोटर पर जा बैठे थे। **त्रिवेदी जी** तथा अन्य लोग उनके साथ-साथ मोटर तक गए। **सेठ जी** ने उन सबसे बिदा ली और मोटर चल पड़ी।

■

धर्म-मार्ग पर

१३. त्रिवेदी जी का सत्सङ्ग

सेठ जी के चले जाने पर **त्रिवेदी** लोग लौट आए। **शशिनाथ** की पूजा तभी समाप्त हो चुकी थी। उन्होंने आसन आदि समेट कर यथा-स्थान रख दिया था और तखत पर बैठकर सुस्ताने का वे उपक्रम करने लगे। इसी बीच में वृद्ध **त्रिवेदी जी** उनके पास आकर बैठ गए और बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा— आपने तो चमत्कार ही कर दिखाया है! मेरे यहाँ बड़े-बड़े **'तान्त्रिक'** आए हैं, उनके **'प्रयोग'** भी देखे हैं, परन्तु इतनी सुगम रीति से और इतने अल्प-काल में काम कर दिखाते किसी को नहीं पाया। आपने यह विद्या कहाँ सीखी? **वैद्य जी** में तो यह करामात कभी नहीं रही। हाँ, उनके **पिता जी** अवश्य समर्थ **'तान्त्रिक'** थे।

शशिनाथ ने बड़ी नम्रता से कहा— मैंने तो कुछ भी नहीं किया। केवल **'प्रार्थना'**-भर करता रहा हूँ। फिर उनको कुछ वैसी तकलीफ भी नहीं थी। यह तो आप लोगों की उदारता भर है, जो मुझे इतना महत्त्व दे रहे हैं।

त्रिवेदी जी बोले— किसी को झूठा महत्त्व देने की मेरी आदत नहीं है। मैंने भी साधकों का सत्सङ्ग किया है। हाँ, इधर एक लम्बे समय से उनका अवश्य अभाव रहा है, परन्तु मेरा ज्ञान पहले का सा बना हुआ है। मैं स्वयं **शाक्त** हूँ और कोई **शाक्त** मेरी दृष्टि से छिपा नहीं रह सकता। क्यों, मैं ठीक कह रहा हूँ या नहीं?

शशिनाथ ने धीरे से कहा— आप ठीक कह रहे हैं। आप अनुभवी हैं। आपके सामने मैं बालक हूँ। मैं क्या कह सकता हूँ!

त्रिवेदी जी बोले— तब बताते क्यों नहीं हो? तुम्हारा कौन **'कुल'** है? **'दीक्षा'** ही हुई है या **'अभिषेक'** भी?

शशिनाथ ने कहा— मैं **'श्री-कुल'** का हूँ। मेरा **'पूर्णाभिषेक'** भी हो गया है।

त्रिवेदी जी खिल पड़े। उन्होंने बड़े प्रसन्न होकर कहा— तो आज पूजा हो न जाए?

शशिनाथ ने कहा— आप जो आज्ञा करेंगे, करने को तैयार हूँ, परन्तु **मौसिया जी** की तबियत अभी ठीक नहीं है। मेरा जल्दी ही घर लौट जाना ठीक होगा।

त्रिवेदी जी बोले— **वैद्य जी** मुझे अच्छी तरह जानते हैं। वे आपको कुछ नहीं कहेंगे। बिना पूजा किए यहाँ से नहीं जाने पाओगे।

गोकरन को घर के भीतर से बाहर आते देखकर उन्होंने उनसे कहा— बेटा, आज पूजा होगी। **शशिनाथ जी** माँ का पूजन करेंगे। इसका प्रबन्ध करना होगा और इनके जल-पान के लिए अभी तक कुछ नहीं आया?

गोकरन ने कहा— **छोटे भइया** लिए आ रहे हैं।

इतने में जल-पान आ गया।

शशिनाथ ने कहा— यह सब तो बहुत है।

यह कहकर उसने थोड़ी-सी मिठाई ले ली और कहा कि— जिस दिन मैं **'महा-पूजा'** करता हूँ, कुछ खाता-पीता नहीं। आप जैसे गुरु-जनों की आज्ञा पालन करने के लिए इतनी मिठाई ले ली है।

त्रिवेदी जी ने कहा— इस सम्बन्ध में मैं दबाव नहीं डालूँगा।

यह कहकर वे वहाँ से उठकर घर के भीतर चले गए। **छोटे भइया** ने **शशिनाथ** को जल-पान कराया। वह बड़ा विनम्र था, बातचीत में चतुर भी। उसके अनुरोध से **शशिनाथ** को कुछ और भी मिठाई लेनी पड़ी। साथ ही दूध भी पीना पड़ा। थोड़ी ही देर में वे दोनों हिल-मिल गए और उन दोनों में खूब घुल-मिल कर बातचीत होने लगी, मानों पहले ही से एक दूसरे से खूब परिचित हों।

गोकरन ने भी तथा घर के दूसरे लोगों ने भी **शशिनाथ** का पूरा ध्यान रक्खा। सब लोगों के इस प्रकार के सद्-व्यवहार से **शशिनाथ** ने समझ लिया कि **त्रिवेदी** लोग वास्तव में सच्चे **'शाक्त'** हैं। एक **'शाक्त'** के प्रति कैसा आत्मीय भाव रखना चाहिए, इस रहस्य को ये लोग जानते ही भर नहीं हैं, किन्तु उसका तादृश व्यवहार भी करते हैं। वह मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हो उठा।

सारा दिन गप-शप में बीत गया। सन्ध्या समय शौच आदि से निवृत्त होकर वह अपने नित्य-कर्म में संलग्न हुआ। रात में दस बजे के लगभग **छोटे भइया** ने आकर कहा— चलिए, सब तैयारी हो गई है। पोथी-पत्रा भी लेते चलिए।

शशिनाथ पूजा का झोला लेकर उनके साथ हो गया। भीतर जाकर **पूजा-घर** के द्वार पर हाथ-पैर धोकर वे दोनों ही भीतर चले गए। **छोटे भैया** ने सारी सामग्री का ब्यौरा **शशिनाथ** को दिया। उसने कहा— सब ठीक है। क्या मैं पूजा आरम्भ करूँ?

छोटे भइया ने कहा— हाँ, अवश्य।

इतने में ही वृद्ध **त्रिवेदी जी** भी **पूजा-गृह** में आ गए। उनके साथ दो वृद्ध सज्जन और थे। वे तीनों ही वहाँ बिछे हुए आसनों पर बैठ गए। **शशिनाथ** ने उनकी ओर एक बार देखा, परन्तु उसने कुछ कहा नहीं। वह चुपचाप **'पूजा'** करने में संलग्न हो गया। उसने बड़े भाव के साथ **पूजा** प्रारम्भ की और वह उसी भाव से **पूजा** बराबर करता रहा। **त्रिवेदी जी** और उनके साथी चुपचाप बैठे **पूजा-क्रम** देखते रहे। बीच-बीच में आवश्यक सामग्री त्रिवेदी जी यथा-स्थान जुटाते जाते थे। जब **पूजा** समाप्त हुई, तब सब लोगों ने **'नीराजन'** में समुचित रूप से भाग लिया और **'स्तुति-पाठ'** करते हुए देवता को **'पुष्पाञ्जलि'** प्रदान की। उस समय तक **गोकरन** के साथ घर के अन्य लोग भी आ गए थे। सब लोगों ने यथा-क्रम वहाँ बैठकर **'जगदम्बा का प्रसाद'** ग्रहण किया। **'पूजा-विसर्जन'** के बाद वृद्ध **त्रिवेदी जी** ने **शशिनाथ** से कहा— आपकी कृपा से बहुत दिनों के बाद ऐसा **यजन** हो सका है। मेरे **गुरुदेव** के समय में ही ऐसे **यजन** यहाँ प्रायः होते रहते थे। उनके दिवङ्गत हो जाने के बाद ऐसा सुअवसर कभी नहीं प्राप्त हो सका। आप सचमुच क्रिया-कुशल **साधक** हैं। आपने अच्छा सत्सङ्ग पाया है। निस्सन्देह, आप बड़े भाग्य-शाली हैं।

शशिनाथ बोला— यह तो आपकी उदारता है कि जो आप मेरी इस प्रकार प्रशंसा कर रहे हैं। अभी-अभी कुछ ही दिन से मेरा इस **मार्ग** में प्रवेश हुआ है। इस **मार्ग** का मैं अभी पूर्ण रूप से क-ख-ग नहीं जानता। यदि आप जैसे **साधकों का सत्सङ्ग** प्राप्त होता रहा, तो कदाचित् इस **मार्ग** का कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकूँ।

वृद्ध **त्रिवेदी जी** के साथ एक और वृद्ध सज्जन आए थे। उन्होंने कहा— आप चाहे जो कहें, आपका **पूजन-क्रम** देखकर कोई भी कह सकता है कि आपने इस **मार्ग** की कैसी उत्तम शिक्षा पाई है। **पूजा** तो सभी करते हैं, परन्तु आपको अच्छा अभ्यास है। आप **पूजा** के वास्तविक रूप का पूर्ण ज्ञान रखते हैं।

यह कहते-कहते वे उठ खड़े हुए। **शशिनाथ** ने कुछ नहीं कहा। उसने सबको प्रणाम किया और वहाँ से वह सबके साथ बाहर आया। **त्रिवेदी जी** भी अपने साथियों के साथ घर के बाहर निकले और वे अपने साथियों को विदाकर अपने पलँग पर जा विराजे। **शशिनाथ** ने भी अपना आसन ग्रहण किया।

त्रिवेदी जी तो कुछ ही देर में निद्रा-मग्न हो गए, परन्तु **शशिनाथ** नहीं सोया। वह अपनी **आराधना** में ही लगा रहा। निशा के चौथे पहर का आधा बीत चुका था। उसने शैया छोड़ दी और बाहर चला गया। वह **ब्राह्म मुहूर्त** तक गाँव के बाहर नहर के किनारे घूमता रहा। **ब्राह्म मुहूर्त्त** होने पर वह **प्रातः-कृत्य** में लग गया और **सूर्योदय** होने पर वहीं शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर उसने स्नान किया और **'सन्ध्या-वन्दन'** आदि करके जल्दी-जल्दी **त्रिवेदी जी** के घर की ओर चला। उसने अपने मन में कहा कि 'अब यहाँ से आज ही विदा हो जाना चाहिए। कोई कार्य भी तो नहीं है। **मौसा जी** राह देखते होंगे।'

वह जब **त्रिवेदी जी** के दरवाजे पहुँचा, वहाँ कोई नहीं था। वह अपने आसन पर जाकर बैठ गया। उसने अपने मन में कहा— 'ये **त्रिवेदी** लोग तो अच्छे मिले। अच्छे **साधक** हैं, प्रभाव-शाली भी हैं। इनके द्वारा यहाँ **'धर्म'** का अच्छा प्रचार हो सकता है। ये लोग इस सत्कार्य में मेरी सहायता अवश्य करेंगे। जान पड़ता है कि **स्वामी जी** की अदृष्ट प्रेरणा से ही मुझे यह अवसर मिला है। इस अवसर का मैं अवश्य उपयोग करूँगा, परन्तु अपनी ओर से मेरा कुछ कहना-सुनना भी ठीक नहीं है। **जगदम्बा** की इच्छा होगी, तो अपने आप ही सब काम ठीक ढङ्ग से चल निकलेगा। मैं तो निमित्त मात्र ही हो सकता हूँ। मेरे लिए यह कम गौरव की बात नहीं होगी।' वह देर तक इसी तरह की उधेड़-बुन करता रहा। इतने में ही एक ओर से वृद्ध **त्रिवेदी जी** आते हुए दिखाई दिए। उसकी विचार-धारा टूट गई और वह सावधान हो गया। ■

मनोरञ्जन के साथ धर्म की शिक्षा!

कहानी या उपन्यास पढ़कर लोग अपना अवकाश का समय बिताते हैं। अपने को— अपने थके हुए मस्तिष्क को मनोरञ्जन द्वारा पुनः ताजा बनाते हैं। यदि कहीं कहानी या उपन्यास शिक्षा-प्रद हुआ, तो **'एक पन्थ— दो काज'** होते हैं। मनोरञ्जन के साथ-साथ शिक्षा भी मिलती है। शाक्त-सिद्धान्तों की शिक्षा देनेवाले रोचक कथा-साहित्य का हिन्दी में अभाव रहा है। इस अभाव को दूर करने के उद्देश्य से **'धर्म-मार्ग पर'** नामक उपन्यास का प्रकाशन किया जा रहा है। यह उपन्यास आबाल-वृद्ध-वनिता सभी के द्वारा पढ़ने योग्य है।

इस उपन्यास में नायक परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर घर छोड़कर निकल पड़ता है और **'धर्म का मार्ग'** पकड़ता है। इस प्रसङ्ग में जो अनेक घटनाएँ घटती हैं, उन्हीं का भिन्न-भिन्न शीर्षकों से इसमें भली-भाँति वर्णन है। उपन्यास अत्यन्त रोचक है और साथ ही **धर्म की बातों का ऐसा स्पष्ट दिग्दर्शक** है कि एक साँस में एक-एक घटनाएँ पढ़ जाने के लिए मन आतुर हो उठता है। **—सम्पादक**

धर्म-मार्ग पर

१४. धर्म-कार्य का श्री-गणेश

त्रिवेदी जी शशिनाथ को अकेला बैठा देखकर जल्दी-जल्दी घर की ओर बढ़े। जब वे द्वार पर पहुँच गए, **शशिनाथ** ने उठ कर उनको प्रणाम किया। **त्रिवेदी जी** ने हँसते-हँसते कहा— बैठो, बैठो। कब लौटे? स्नान-पूजन भी हो गया! यहाँ कोई नहीं है! अच्छा, मैं आता हूँ।

यह कहते हुए वे घर के भीतर चले गए। शीघ्र ही वे फिर बाहर आए। एक हाथ में जल-पान की सामग्री और दूसरे हाथ में जल का पात्र था। बाहर निकलते हुए उन्होंने कहा— ये लड़के कहाँ चले गए? इतनी देर हो गई, अभी तक आपने जल-पान तक नहीं किया!

यह कहकर उन्होंने दोनों पात्र **शशिनाथ** के आगे रख दिए। **शशिनाथ** ने धीरे से कहा— मैं जलपान आदि करने का आदी नहीं। आपके प्रसाद-रूप में इसे सादर ग्रहण करता हूँ।

यह कहकर वह मिठाई खाने लगा। मिठाई खाते हुए उसने कहा— आज मुझे घर जाने की आज्ञा दें। मौसिया जी नाराज होंगे। उनकी तबियत अभी अच्छी तरह सँभली नहीं है।

वृद्ध त्रिवेदी जी बोले— आप ठीक कहते हैं। आपके जाने का प्रबन्ध हो जाएगा। कौन बहुत दूर है! चौथे पहर चले जाइएगा।

शशिनाथ ने पूछा— ऐसा क्यों, क्या कोई काम है?

वृद्ध त्रिवेदी जी बोले— हाँ, बहुत बड़ा काम है।

शशिनाथ ने कहा— आज्ञा करिए, वह भी कर डालूँ।

वृद्ध त्रिवेदी जी ने कहा— इतनी जल्दी नहीं हो सकेगा।

शशिनाथ चकित होकर उनके मुँह की ओर देखने लगा। उसने कहा— बताइए तो।

वृद्ध त्रिवेदी जी— यदि वचन दें, तो कहूँ।

शशिनाथ— आप जैसे गुरु-जनों की आज्ञा शिरोधार्य करने की ही शिक्षा मुझे मिली है। मैं शक्ति भर पालन करने का अवश्य प्रयत्न करूँगा।

वृद्ध त्रिवेदी जी— अच्छा तो, सुनो। **सरइया घाट** के पास **गङ्गा जी के तट** पर **'चण्डीपुर'** है। वहाँ की **'चण्डी देवी'** की इस जवार में बड़ी महिमा है। किसी समय उस क्षेत्र के शाक्त साधकों का बड़ा नाम था। उनके प्रयत्न से आस-पास के गाँवों में **'शाक्त-धर्म'** का अच्छा प्रचार था। बाद को वहाँ वैसे साधक नहीं रह गए। तब बाहर के एक **महात्मा** आकर वहाँ बसे। उनके प्रभाव से **'शाक्त-धर्म'** यहाँ फिर लहलहा उठा। उनके निधन के बाद गोल-माल हुआ। उनके उत्तराधिकारी बड़े निकम्मे निकले। इसका यह परिणाम हुआ कि लोगों ने उनसे सम्बन्ध ही तोड़ लिया। अब यह हाल है कि हम लोगों के यहाँ बरसों से लड़के बैठे हैं और उनकी **'दीक्षा'** नहीं हो रही है। कोई भी

उपयुक्त व्यक्ति नहीं दिखाई देता, जिससे लोग **'दीक्षा'** लें और अपना धर्म-कर्म करें। यदि यही हाल रहा, तो वह दिन दूर नहीं, जब यहाँ से **'शाक्त-धर्म'** बिलकुल ही उठ जाएगा। इससे आपसे मेरा अनुरोध है कि आप यहाँ **'शाक्त-धर्म'** के जागृत करने का भार अपने ऊपर लें।

शशिनाथ चुपचाप **त्रिवेदी जी** की बात सुनता रहा। जब वे अपनी बात कह चुके, तब भी वह थोड़ी देर तक चुप ही बैठा रहा। अन्त में उसने धीरे से कहा— क्या आप मुझे इस महान् कार्य के उपयुक्त समझते हैं? यह तो बड़ी भारी जिम्मेदारी का काम है। फिर मैं उतना पढ़ा-लिखा भी नहीं। कोई **'साधना'** भी वैसी नहीं की है।

वृद्ध त्रिवेदी जी— शशिनाथ जी, मैं तुमसे उम्र में बड़ा हूँ। मेरा अनुभव भी अधिक है। इन्हीं दो-तीन दिन के भीतर मैंने तुमको पहचान लिया है। यदि तुम इस महत् कार्य के उपयुक्त न होते, तो मैं तुमसे यह प्रस्ताव कदापि न करता। तुम इस कार्य के लिए पूर्ण अधिकारी हो। **'धर्म'** का काम है। पीछे पैर न डालो।

शशिनाथ थोड़ी देर तक सोचता रहा। उसने कहा— यदि ऐसी बात है, तो मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करने को तैयार हूँ, परन्तु **मौसिया जी** से अनुमति लेनी होगी।

वृद्ध त्रिवेदी जी— वह सब मेरे ऊपर छोड़िए। मैं उन्हें ठीक कर लूँगा।

शशिनाथ— यदि ऐसा है, तो मैं सेवा करने को तैयार हूँ।

वृद्ध त्रिवेदी जी ने प्रसन्न होकर कहा— तुम्हारे जैसे साधक से मुझे ऐसे ही उत्तर की आशा थी। परसों **'मकर-संक्रान्ति'** है, बहुत श्रेष्ठ पर्व है। उस दिन गाँव के लड़कों की **'दीक्षा'** हो जानी चाहिए।

शशिनाथ ने कहा— परन्तु मुझे **'प्रयाग'** जाना है। कोई और समय ठीक कीजिए।

वृद्ध त्रिवेदी जी— अभी **अमावास्या** के कई दिन हैं। आराम के साथ **'प्रयाग'** पहुँच सकते हो। यह **'दीक्षा'**-यज्ञ भी **'धर्म'**-कार्य ही है। शुभस्य शीघ्रम्। क्या कहते हो?

शशिनाथ— जो आज्ञा देंगे, वही करूँगा।

वृद्ध त्रिवेदी जी— क्या सामग्री लगेगी, एक कागज पर लिख दीजिए। वह सब समय के भीतर ही एकत्र कर ली जाय। आठ-दस लड़कों की दीक्षा होगी, यह ध्यान रखिएगा।

शशिनाथ ने कहा— कोई विशेष सामग्री नहीं लगेगी। **पूजा** में जो कुछ लगता है, वही लगेगा। और वह सब आप जानते ही हैं। तो भी मैं सब लिखे देता हूँ।

यह कहकर उसने अपनी पुस्तक खोली और उसमें देखकर **'दीक्षा'**-सम्बन्धी **पूजा** का चिट्ठा बनाकर दे दिया। उसने कहा— यदि **मौसिया जी** को इस बात की सूचना मिल जाती कि मैं अमुक दिन उनकी सेवा में पहुँचूँगा, तो बड़ी कृपा होती।

''इसके लिए आप निश्चिन्त रहें'', यह कहते हुए **वृद्ध त्रिवेदी जी** उसके पास से उठकर घर के भीतर चले गए।

दोपहर के भोजन के उपरान्त जब **शशिनाथ** आराम कर चुका, तब गाँव के कई वृद्ध-जन **त्रिवेदी जी** के यहाँ आए। **त्रिवेदी जी** अपने आसन पर आसीन थे। उन्होंने आदर के साथ उन्हें बुलाकर बिठाया। उनमें से दो सज्जनों को **शशिनाथ** जानता था। **त्रिवेदी जी** ने उन सबको **शशिनाथ** का परिचय दिया। फिर उनकी ओर मुँह करके **शशिनाथ** से कहा— हम सभी लोग गुरु-भाई हैं।

शशिनाथ ने उठकर उन सबको नमस्कार किया और उनके पास जाकर बैठ गया। वे सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए। उनमें से **एक वृद्ध** ने कहा— इसे हम **भगवती** की कृपा ही समझते हैं, जो आप यहाँ आ गए।

शशिनाथ ने हाथ जोड़कर गद्‌गद् स्वर में कहा— मुझे आप लोग अपना तुच्छ सेवक समझेंगे, तो मैं कृतार्थ होऊँगा।

वृद्ध सज्जन ने **त्रिवेदी जी** की ओर मुँह करके कहा— कल आपके यहाँ तो पूजा का समारोह होगा ही, यदि आज मेरे यहाँ **शशिनाथ जी** पूजन कर देते, तो बहुत ही अच्छा होता।

त्रिवेदी जी ने हँसकर कहा— आपका यह प्रस्ताव उचित ही है, **शशिनाथ जी** इन्कार थोड़े ही कर सकते हैं।

यह कहकर उन्होंने **शशिनाथ** की ओर देखा। **शशिनाथ** ने कहा— आप जो भी आज्ञा करेंगे, यथा-शक्ति उसका अवश्य पालन करूँगा। फिर यह तो **माता की सेवा-पूजा** का काम है। इससे तो कदापि विमुख नहीं होऊँगा।

वृद्ध सज्जन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा— बहुत दिन के बाद यह सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। अब मैं चलूँगा, **पूजा** की तैयारी करनी है।

त्रिवेदी जी की ओर मुँह करके कहा— **शशिनाथ जी** को साथ लेकर तुम्हीं को आना पड़ेगा या आप लोगों को बुलाने के लिए मैं स्वयं आऊँ?

त्रिवेदी जी ने कहा— आप कष्ट न कीजिएगा। हम लोग ठीक समय पर आ जाएँगे।

वृद्ध सज्जन तो चले गए। उनके साथ और जो लोग आए थे, वे बैठे रहे। परस्पर बातें होती रहीं। बातों का विषय **स्व-धर्म** ही था। किसी ने **'चण्डी-पुर'** के शाक्तों की दयनीय दशा का वर्णन किया और यह कहा कि 'अब वहाँ कुछ नहीं रहा।' किसी ने इधर-उधर के अपने अनुभव बताए और कहा कि 'अब **शाक्त-धर्म** बहुत कुछ गिर गया है।' प्रायः सभी ने इसी तरह की निराशा-पूर्ण बातें कहीं। **वृद्ध त्रिवेदी जी** चुपचाप बैठे सबकी सुनते रहे। **शशि-नाथ** भी चुप ही बैठा रहा।

अन्त में **वृद्ध त्रिवेदी जी** बोले— आप लोगों ने जो कुछ कहा, वह सब ठीक है, परन्तु यह मानने को मैं तैयार नहीं हूँ कि **स्व-धर्म** का विलोप हो जाएगा। **'शाक्त-धर्म'** कोई सांसारिक वस्तु नहीं है। यह एक **दैवी शक्ति पदार्थ** है। रह गया उसका ह्रास या विकाश होना, सो इसके कारण हमी लोग हैं। हम लोग **स्व-धर्म** का पालन ठीक ढङ्ग से नहीं करेंगे, तो उसका ह्रास होगा ही। देखिए, **जगदम्बा** ने एक **साधक** को हम लोगों के बीच भेज दिया है। यदि हमने इनका सदुपयोग किया, तो पहले की ही भाँति फिर **स्व-धर्म** अपने स्थान पर स्थित हो जाएगा। **शशिनाथ** एक सिद्ध महात्मा के शिष्य हैं। इन्होंने **साधना** भी अच्छी की है। यदि ये हम लोगों के बीच रह गए, तो पहले की ही भाँति यहाँ फिर **साधक** दिखाई देने लगेंगे।

सभी लोगों ने **वृद्ध त्रिवेदी जी** का समर्थन किया। **शशिनाथ** ने कहा— आप गुरु-जन हैं। कुछ भी कह सकते हैं। मैं यथा-शक्ति सेवा करने को सदैव तैयार मिलूँगा।

सन्ध्या की वेला निकट आ रही थी। यह देखकर मण्डली उठ गई। लोगों के चले आने पर **शशिनाथ** ने कहा— 'मैं नहर की ओर जाऊँगा। वहाँ बहुत एकान्त है। नित्य-कर्म करके जल्दी ही लौट आऊँगा।' यह कहकर वह भी उठ गया।

उस दिन उस निशा में उन **वृद्ध सज्जन** के घर में **पूजन** हुआ। गाँव के प्रायः सभी **साधक** उनके **पूजन** में शामिल हुए थे। बड़े अच्छे ढङ्ग से **पूजन** हुआ और उसकी समाप्ति हुई। दूसरे दिन **'संक्रान्ति'** का **'महा-पर्व'** था। सारे गाँव में खिचड़ी की धूम थी। बहुतेरे स्त्री-पुरुष **गङ्गा-स्नान** को तड़के ही चले गए थे, परन्तु **त्रिवेदी जी** के घर में **'दीक्षा-यज्ञ'** का समारोह था। सभी लोग अपने-अपने काम में व्यस्त थे। भीतर घर में स्त्रियाँ खिचड़ी के पर्व की व्यवस्था में लगी थीं। बाहर के घर में **'दीक्षा-यज्ञ'** का आयोजन हो रहा था। जिन-जिनकी **'दीक्षा'** होनेवाली थी, वे सब प्रातः-काल से ही वहाँ आ गए थे। स्नान कर वे सभी सङ्कल्प-पूर्वक **'गायत्री'** के जप में व्यस्त थे।

यथा-समय **शशिनाथ** ने **'हवन'** किया। निशा में स्वस्त्ययन-पाठ-पूर्वक **'दीक्षा'** का कार्य प्रारम्भ किया, जो रात भर होता रहा। गाँव के सभी **शाक्त** इसमें सम्मिलित हुए थे। प्रायः सभी के घर के किसी-न-किसी व्यक्ति को इस अवसर पर **'दीक्षा'** दी गई। **'दीक्षा'**-कार्य पूर्ण रूप से सफल हुआ। शशिनाथ की कार्य-कुशलता का सभी पर अच्छा प्रभाव पड़ा। उसकी योग्यता का लोहा वहाँ के सभी लोग मान गए। उसने भी मन-ही-मन अनुभव किया कि 'मैं तो कुछ जानता नहीं और मुझे यह जो सफलता मिल रही है, वह सब **स्वामी जी** की कृपा है।' दूसरे दिन **शशिनाथ** ने घर जाने का बड़ा आग्रह किया, परन्तु **वृद्ध त्रिवेदी जी** ने कहा— आज नहीं, कल जाना। अपने शिष्यों को कुछ क्रम तो आज बताए जाओ।

शशिनाथ ने कहा— आज दोपहर तक मैं सबको बता दूँगा। मुझे **प्रयाग** जाना है, अन्यथा मैं आपकी आज्ञा न टालता।

वृद्ध त्रिवेदी जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। दोपहर तक **शशिनाथ** ने अपने शिष्यों को अपने **'जप'** आदि का क्रम बता दिया। सन्ध्या-समय वह बड़ी कठिनाई से छूट पाया। सब लोगों से विदा लेकर उसने वहाँ से प्रस्थान किया। दूर तक उसके शिष्य उसे पहुँचाने गए। कई ने **'प्रयाग'** साथ चलने को कहा, **शशिनाथ** ने अपने **'प्रयाग'** जाने का दिन बता दिया। अन्त में उन्हें भले प्रकार आश्वासन देकर वह अपने गाँव की ओर चल पड़ा।

आठ बजते-बजते रात में **शशिनाथ रामपुर** पहुँच गया। सारे गाँव में सन्नाटा छाया हुआ था, परन्तु उसने देखा, उसके द्वार पर दीपक जल रहा है। शीघ्र ही गाड़ी द्वार पर जाकर खड़ी हो गई। गाड़ी से उतर कर वह घर की ओर चला। चौपाल में ओढ़े-बेढ़े बैठे **वैद्य जी** उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

शशिनाथ को देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। गाड़ी की आवाज सुनकर उसकी **मौसी** भी घर के बाहर आ गई थी। उसने हर्ष भरे स्वर में कहा— **बेटा शशिनाथ,** आ गए। हम लोग तेरी बड़ी देर से राह देख रहे हैं।

शशिनाथ ने आगे बढ़कर उन दोनों के पैर छुए और अपने **मौसिया** की चारपाई से सटकर जमीन पर बैठ गया। उसने कहा— **मौसी,** मैं जल्दी आ जाता, चलने में देर हो गई।

वैद्य जी ने कहा— अच्छे तो रहे?

शशिनाथ ने कहा— **त्रिवेदी** लोग बड़े ही सज्जन हैं।

यह कहकर उसने वहाँ का सारा हाल थोड़े में बता दिया। इतने में बैलों को यथा-स्थान बाँधकर **गाड़ीवान** ने गाड़ी से

सामान उतार कर **शशिनाथ** के पास लाकर उसे रखा। गट्ठर को देखकर **शशिनाथ** ने उससे पूछा— यह सब क्या है?

गाड़ीवान ने कहा— यह सब आपका है। **मालिक** ने मुझसे ऐसा ही कहा था।

शशिनाथ चुप हो रहा। पर **वैद्य जी** ने कहा— अच्छा, तो फिर इसे भीतर रख आओ।

फिर अपनी पत्नी की ओर देखकर कहा— इसे भीतर जाकर रखवा दो और भोजन आदि की जल्दी तैयारी करो। **गाड़ीवान** भी घर में खाएगा।

फिर उन्होंने **गाड़ीवान** की ओर मुँह करके कहा— तुम कौन भाई हो? हमारे यहाँ खाओगे?

गाड़ीवान बोला— आपके यहाँ क्यों नहीं खाऊँगा! पर आप मेरे भोजन की चिन्ता न करें। मेरा खाना मेरे पास है। बैलों का भी है। हम लोग गुरुओं को इन सब बातों के लिए कष्ट नहीं देते।

यह सुनकर **वैद्य जी** हँस पड़े। उन्होंने कहा— मैं **त्रिवेदी** लोगों को जानता हूँ, उनके नौकरों को भी। वे सभी बड़े **धर्म-भीरु** हैं।

गृहिणी का सङ्केत पाकर **गाड़ीवान** उस गट्ठर को उठाकर उनके पीछे हो गया और उसे घर में रखकर वह बाहर आया। जब गाड़ी से दूसरा गट्ठर लेकर वह भीतर जाने लगा, तब उसे देखकर **वैद्य जी** ने **शशिनाथ** से कहा— जान पड़ता है, **त्रिवेदी जी** ने बड़ा सामान दिया है!

शशिनाथ ने कहा— इसके बारे में **त्रिवेदी जी** ने तो मुझसे कुछ भी नहीं कहा था।

वैद्य जी ने कहा— वे लोग बड़े व्यवहार-कुशल हैं। किसी को कुछ कहने-सुनने का मौका ही नहीं देते।

इतने में ही भीतर से **गृहिणी** ने आकर कहा— **शशिनाथ,** पहले अपने साथ के आदमी के लिए पानी आदि लाकर दो, फिर आकर भोजन करो। सब तैयार है।

शशिनाथ जल्दी उठकर खड़ा हो गया। उसको उठते देखकर **गाड़ीवान** ने कहा— आप मेरी ओर से निश्चिन्त रहें। मेरे पास रस्सी-डोल आदि सब कुछ है। मैं अपनी सारी व्यवस्था अपने आप कर लूँगा। आप लोग जाकर भोजन करें।

वैद्य जी भी उठकर खड़े हो गए थे। उन्होंने कहा— आओ **शशिनाथ,** इन लोगों से पार नहीं पाओगे।

यह कहकर हँसते हुए वे **शशिनाथ** के साथ घर के भीतर चले गए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, **गृहिणी** दुकान-सी लगाए बैठी हैं। उनको आया देखकर उन्होंने कहा— देखिए, हमारा **शशिनाथ** कमाई की पहली ही यात्रा में कितना ले आया है: **कपड़े-लत्ते, बर्तन** और **रुपयों** से घर भर दिया है! क्या ही अच्छा हो, यदि वह एक दिन **गृह-लक्ष्मी** लाकर इस घर को मालामाल कर दे और यह एक बार फिर दमक उठे।

वैद्य जी ने प्रसन्न होकर कहा— तुम ठीक कहती हो। दया-मय शीघ्र ही एक दिन हमारा यह हौसला भी पूरा कर देंगे। चलो, अब खिलाओ-पिलाओ। देर हो गई है। यह सब रखो। कल दिन में आराम से बैठकर देखेंगे। (गहरी निगाह से देखकर) खूब दिया है!

गृहिणी ने उठते हुए कहा— सामान तो है ही, डेढ़ सौ रुपए के नोट भी हैं!

यह कहती हुई वे रसोई-घर जा पहुँचीं और भोजन परोसने लगीं। ये दोनों भी हाथ-पैर धोकर चौके में जा बैठे। थालियाँ आ

जाने पर **भगवान्** को भोग लगाकर दोनों भोजन करने लगे। भोजन कर चुकने पर **वैद्य जी** तो दालान में जाकर अपने बिस्तर पर आसीन हो गए, परन्तु **शशिनाथ** बाहर जाने लगा। यह देखकर **गृहिणी** ने कहा— तू कहाँ जा रहा है? यहीं अपनी भी चारपाई लगा ले।

शशिनाथ बोला— मैं दरवाजे ही लेटूँगा। उस आदमी को भी देखना है।

यह कहता हुआ वह बाहर चला गया। बाहर आकर **शशिनाथ** ने देखा कि **गाड़ीवान** ने बैलों को चारा लगा दिया है और वे बड़े मजे में खा रहे हैं। इधर वह भी खेश बिछाए हुए चौपाल में लेटा है। उसे देखकर उसने कहा— बैलों को तो चारा कर दिया है, तुम्हारा क्या हाल है? कुछ खाया-पिया या नहीं?

गाड़ीवान उठकर बैठ गया था, उसने नम्रता से कहा— मैं भी खा-पी चुका हूँ। बैल खा-पी लें और कुछ आराम भी कर लें, उसके बाद रात ही में मैं चला जाऊँगा। कोई पत्र तो नहीं देंगे?

शशिनाथ ने कहा— पत्र नहीं दूँगा, परन्तु रात में क्या जाओगे, तड़के जाना।

यह कहता हुआ वह घर के भीतर चला गया। वहाँ से अपने लिए बिस्तर लाकर चौपाल में चारपाई डालकर उस पर उसे बिछाया, और लेट गया। थोड़ी देर के बाद **गृहिणी** आकर उसके पीने के लिए पानी भी रख गई। दरवाजा बन्द हो गया, और सब लोग सोने लगे। रात अधिक हो गई थी।

दूसरे दिन गाँव के लोगों को जब मालूम हुआ कि **शशिनाथ** आ गया है, तब लोगों का आना शुरू हो गया। दवा बँटनी शुरू हो गई। उसकी अव्यर्थ औषधियों ने लोगों पर अच्छा प्रभाव डाल दिया था। फलतः उसकी उस जवार में अच्छी ख्याति हो गई थी। दो दिन तक वह गाँव के रोगियों की देख-भाल करता रहा। तीसरे दिन वह **'माघ-स्नान'** के लिए चल पड़ा। **मौसी** ने बहुत कुछ कहा कि 'जाड़ा है, गरम कपड़े ले लो। परदेश है, रुपए ले लो', परन्तु उसने एक न सुनी। उसने यही कहा कि 'मैं **त्रिवेदी** लोगों के साथ जा रहा हूँ। एक कम्बल और दस रुपए से मेरा काम चल जाएगा', यह कह उसने **मौसिया** के चरण स्पर्श किए और **मौसी** के भी। फिर झोले को कन्धे पर रख और कम्बल को बगल में दाब उसने नाव-घाट की राह ली।

■

'शाक्त-धर्म'

'शाक्त-धर्म' कोई सांसारिक वस्तु नहीं है। यह एक **दैवी शक्ति पदार्थ** है। रह गया उसका ह्रास या विकाश होना, सो इसके कारण हमी लोग हैं। हम लोग **स्व-धर्म** का पालन ठीक ढङ्ग से नहीं करेंगे, तो उसका ह्रास होगा ही।

धर्म-मार्ग पर

१५. पुनः प्रयाग की ओर

वह ठीक समय पर पहुँच गया। वहाँ त्रिवेदी लोग पहले ही से मौजूद थे। वे चार थे और चारों ही उसके शिष्य थे। उन्होंने आगे बढ़कर उसके चरण-स्पर्श किए और उसका सामान उससे ले लिया। नाव तैयार खड़ी थी। वह भी उन सबके साथ नाव पर ही जा बैठा। उसी की प्रतीक्षा थी। उसके आते ही नाव खोल दी गई।

गङ्गा के दूसरे किनारे पर पहुँचते ही उन्होंने नाव से उतर कर स्टेशन के लिए दो बैल-गाड़ियाँ ठीक कीं। उन पर बैठकर उन्होंने स्टेशन की राह ली। स्टेशन पर पहुँचने पर उन्होंने वहाँ यात्रियों की बड़ी भीड़ देखी। शशिनाथ ने कहा — जब यहाँ यह हाल है, तब गाड़ी का मिलना कठिन काम दिखाई देता है।

उसके एक शिष्य ने कहा— आप चिन्ता न करें, हम लोग इसी गाड़ी से चलेंगे।

स्टेशन के भीतर पहुँचने पर उसमें से एक ने एक जगह कम्बल बिछा दिया और शशिनाथ से कहा — आप इस पर आराम करें। गाड़ी के आने में अभी देर है।

शशिनाथ को आराम से बिठाकर वह चुपचाप स्टेशन के दफ्तर में चला गया। स्टेशन बाबू से उसने बातचीत की और उनसे प्रयाग के लिए पाँच टिकट ले आया। इसके बाद वह अपने साथियों के पास आ गया। जब गाड़ी के आने का समय हुआ, तब वे वहाँ से उठकर प्लेटफार्म पर एक ऐसी जगह जा खड़े हुए, जहाँ से वे आराम के साथ गाड़ी में चढ़ सकते थे। इतने में गाड़ी आ गई। उसके खड़े होते ही वे तुरन्त दरवाजा खोलकर गाड़ी में चढ़ गए। अब रही स्टेशन की वह भीड़, सो उसमें तो बहुतों को टिकट ही नहीं मिला और जिनको मिला भी, उनमें से बहुत ही कम चढ़ पाए। गाड़ी बहुत ही ठसाठस भरी आई थी।

ठीक समय पर गाड़ी छूट गई और रात होते-होते वह **'प्रयाग'** पहुँच गई। स्टेशन पर उतर कर उन लोगों ने मुसाफिरखाने में आराम करने की ठानी। सबेरा होने पर शौच आदि से छुट्टी पाकर उन्होंने **'सङ्गम-क्षेत्र'** के लिए एक टाँगा ठीक किया और उस पर सवार होकर **'सङ्गम'** की राह ली। बाँध पर पहुँच कर शशिनाथ अपने शिष्यों के साथ ताँगे से उतर पड़ा। किराया दे चुकने पर वह उन सबको लेकर बाँध से नीचे उतरने लगा। **'त्रिवेणी-तट'** को ऋषि आश्रम के रूप में परिणत देखकर आनन्द से उन्हें रोमाञ्च हो आया। **'गङ्गा-तट'** पर जाकर उन सबने स्नान किया। वहाँ से वे संन्यासी बाड़ा के एक विशेष भाग में पहुँचे। वहाँ के **महन्त जी** के स्थान में जाकर माथा टेक कर उन सबने **महन्त जी** को प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने उनका पूजन किया और फल-फूलादि अर्पित किए। **महन्त जी** ने ध्यान से देखकर कहा— अच्छा, तुम हो। कुशल है न? तुम्हारे स्वामी जी भी पधारे हैं। अपनी उसी पुरानी जगह में हैं।

शशिनाथ ने कहा— आज रात में आया हूँ। स्नान करने के बाद सीधा यहीं आया। आपके दर्शन पाकर हम लोग कृतार्थ हुए हैं।

महन्त जी बोले— कहाँ ठहरने का विचार है? यहाँ ठहरना चाहते हो, तो वैसा प्रबन्ध करवा दूँ?

शशिनाथ के एक शिष्य ने कहा— स्वामी जी महाराज, हम लोगों के ठहरने का प्रबन्ध पहले से ही हो गया है। झूँसी में सामने ही हमारे एक मित्र का मकान है। वहीं ठहरेंगे।

महन्त जी बोले— ठीक है। यहाँ की अपेक्षा वहाँ अधिक सुख से रह सकोगे। अच्छा जाओ, अपने स्वामी जी के भी दर्शन करो।

महन्त जी का आदेश पाकर शशिनाथ अपने शिष्यों के साथ **स्वामी जी** की कुटिया की ओर गया। **स्वामी जी** कुटी के बाहर रेत पर बैठे धूप ले रहे थे। इन लोगों ने समीप पहुँच कर **स्वामी जी** को सविधि प्रणाम किया। उनकी तेजवन्त मूर्ति इन लोगों को देखकर जैसी-की-तैसी अचल गम्भीर बनी बैठी रही। जब ये सब लोग हाथ जोड़े उनके सम्मुख चुपचाप थोड़ी देर तक बैठे रहे, तब **स्वामी जी** ने कहा— **शशिनाथ,** ये लोग कौन हैं?

शशिनाथ ने उन लोगों का **स्वामी जी** को परिचय दिया। वह कुछ अधिक बातचीत करना चाहता था परन्तु उनकी गम्भीर मुख-मुद्रा और भाव-भरी आँखों को देखकर वह ताड़ गया कि **स्वामी जी** एकान्त चाहते हैं। अतएव वह चुप हो रहा। इतने ही में वे ध्यानस्थ हो गए। यह देखकर वे लोग वहाँ से चुपचाप उठ आए।

त्रिवेदी ने कहा— गुरुदेव, चलिए अपनी जगह देख लें।

शशिनाथ ने कहा— अच्छा चलो, देख आऊँ। रहूँगा तो मैं यहीं।

यह कह वे 'झूँसी' की ओर चल पड़े। घाट पर पहुँच नाव पर सवार हो वे कुछ ही देर में उस पार पहुँच गए। ऊपर पहुँचने पर **त्रिवेदी** ने कहा— यही वह सामनेवाला मकान है। हम लोग इसी मकान में ठहरा करते हैं।

मकान के पास पहुँचकर उन्होंने घूमकर देखा, **'मेला-क्षेत्र'** का सारा दृश्य उनके सामने था।

शशिनाथ ने कहा— बड़ी अच्छी जगह है।

फिर वे सब मकान के भीतर घुस गए। मकान बिल्कुल खाली था। पहले से आए हुए **त्रिवेदी** के दोनों नौकर ही वहाँ उपस्थित थे। उनमें से एक ने कहा— मुन्शी जी शहर गए हैं। शाम तक आ जायँगे। हम लोगों का सब प्रबन्ध कर दिया है। नौकर की बात सुनते हुए वे सब मकान की दालान में, जहाँ बिस्तर लगा हुआ था, जा बैठे।

त्रिवेदी ने कहा— कुछ खाने-पीने को हो तो लाओ।

आज्ञा पाते ही नौकर मिष्ठान्न ले आया। सबने मिठाई खाई। जल-पान कर चुकने के बाद **शशिनाथ** ने कहा— बहुत सम्भव है कि हमारे और भी लोग आवें। क्या उन्हें हम यहाँ ठहरा सकेंगे?

त्रिवेदी ने कहा— आप जिसे चाहें, ठहरा लें। सबका प्रबन्ध हो जाएगा। रहने का भी और खाने-पीने का भी।

यह सुनकर **शशिनाथ** पुलकित हो उठा— वह उठकर खड़ा हो गया। उसने कहा— मैं संन्यासी बाड़े जाता हूँ। यदि वे लोग आए होंगे, तो उन सबको लेकर शाम तक यहाँ आ जाऊँगा। बीस तक लोग आ सकते हैं।

त्रिवेदी ने कहा— आज्ञा हो तो मैं भी चलूँ।

शशिनाथ बोला— नहीं, तुम यहीं रहो, बीस-पचीस आदमियों के भोजन आदि की व्यवस्था किए रहना। हाँ, मेला आदि देखना चाहो, तो देख आना।

यह कहकर शशिनाथ वहाँ से चल पड़ा।

धर्म-मार्ग पर

१६. प्रयाग का सत्सङ्ग

नाव से **गङ्गा जी** पार कर वह संन्यासी बाड़े में फिर आ गया। यहाँ उसने देखा कि **ब्रह्मचारी कुलानन्द महन्त जी** के पास बैठे हुए हैं। **शशिनाथ** ने आकर उनके चरण-स्पर्श किए।

कुलानन्द ने **शशिनाथ** को देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने कहा— **महन्त जी** से तुम्हारा पता मुझे मिल चुका है। मैं चाहता हूँ कि हम सब लोग एक ही जगह रहें। क्या तुम्हारे स्थान में इतनी जगह है?

शशिनाथ ने कहा— यह तो बहुत ही अच्छा होगा। मेरा स्थान क्या, वह तो एक खासा बड़ा घर है। चलिए, अभी सबको वहाँ पहुँचा दूँ।

कुलानन्द ने कहा— अभी तो प्रभु ने दर्शन ही नहीं दिए। अभी ध्यानस्थ हैं। जब उनके दर्शन हो जाएँगे, तभी चलेंगे। **महन्त जी** कहते हैं, चार बजे से पहले उनकी समाधि भङ्ग नहीं होगी।

यह कहकर वे उठकर खड़े हुए। उन्होंने कहा— **ठाकुर साहब** आए हैं, तुम्हारे साथी लोग आए हैं। चलो, तब तक उन्हीं लोगों से भेंट-मुलाकात कर लो। यहीं पास ही **गङ्गा पट्टी** में **ठाकुर साहब** का डेरा है।

यह कहकर वे चल पड़े। **शशिनाथ** उनके पीछे हो लिया।

डेरे पर पहुँचने पर **ठाकुर साहब** ने **शशिनाथ** को देखकर कहा— अच्छा आप हैं। आइए-आइए, बैठिए, **ब्रह्मचारी जी**।

उनके ऐसा कहते ही वहाँ बैठे हुए सभी लोगों की आँखें **शशिनाथ** पर जा पड़ीं। उसको देखकर सभी लोग खिल उठे। **शशिनाथ** ने भाव-भरे ढङ्ग से सबको अभिवादन किया। उसके बैठ जाने पर **ठाकुर साहब** ने कहा— **ब्रह्मचारी जी**, आप कब आए और कहाँ ठहरे हैं?

शशिनाथ ने कहा— आज सबेरे यहाँ आया हूँ, उस पार झूँसी में ठहरा हूँ। आपके दर्शन पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

ठाकुर साहब बोले— झूँसी में कहाँ ठहरे हैं?

शशिनाथ ने कहा— एक मकान है, बिल्कुल खाली है। मेरे साथ चार आदमी हैं। अच्छा होता, आप सब लोग भी वहीं चले चलते। एक ही जगह सब लोग रहते। यहाँ की अपेक्षा वहाँ अधिक आराम भी रहेगा।

ठाकुर साहब थोड़ी देर सोचने के बाद बोले— कहते तो आप ठीक हैं, यहाँ जगह भी थोड़ी है और हम लोग हैं बीस आदमी! चलते तो हम अवश्य, परन्तु यहाँ का सा आनन्द वहाँ कहाँ!

शशिनाथ ने मुस्कुराते हुए कहा— यहाँ का आनन्द तो आप वहाँ रहकर भी ले सकते हैं। भोजन और रात में शयन वहाँ करिए। शेष समय यहाँ व्यतीत करिए।

कुलानन्द बोले— **शशिनाथ** कहता तो ठीक है। मेरी समझ में एक-दो आदमी यहाँ छोड़ दिए जाएँ। बाकी सब लोग उस पार चले चलें। फिर कल आप पूजन भी करना चाहते हैं। यह काम वहाँ बड़े सुभीते से हो सकेगा।

ठाकुर साहब मान गए। उन्होंने कहा— आओ, चलकर पहले उस स्थान को देख आएँ।

यह कहकर वे उठ खड़े हुए। उन्होंने अपने नौकरों से कहा कि 'तुम यहीं रहना, हम लोग थोड़ी देर में आते हैं।'

यह कहकर वे चल पड़े। **शशिनाथ** सबके आगे था। घाट पर पहुँच, नाव पर बैठ वे सब कुछ ही देर में उस पार पहुँच गए। कगार से कुछ ही हटकर वह मकान था। मकान को देखकर **ठाकुर साहब** बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा— यह तो बहुत ही अच्छी जगह है।

कुलानन्द ने कहा— यदि आप कहें, तो सामान वहाँ से मँगवा लिया जाए।

ठाकुर साहब बोले— कुछ ही देर बाद तो हम लोग **स्वामी जी** के दर्शनार्थ उस पार जाएँगे ही, तब देखा जाएगा।

शशिनाथ ने कहा— तो यही आज्ञा दीजिए कि आप लोगों के लिए भोजन का क्या प्रबन्ध हो। मेरी समझ में एक ही रसोई ठीक होगी। मिल-जुल कर सब लोग भोजन बना लेंगे। द्रव्य भी है, पूजन भी हो जाएगा।

कुलानन्द ने कहा— सर्वोत्तम।

ठाकुर साहब कुछ नहीं बोले। इतने में **शशिनाथ** का एक शिष्य सबके जल-पान के लिए दोनों में मिठाइयाँ ले आया।

कुलानन्द ने कहा— इसकी क्या जरूरत है!

शशिनाथ ने नम्रता से कहा— इसका समय भी तो है। फिर यह बाजार से नहीं आया है। शुद्ध घर की बनी मिठाई है।

सभी ने जल-पान किया। जब जल-पान हो गया, तब **कुलानन्द** ने कहा— अब समय निकट है, आओ **स्वामी जी** का दर्शन करने को चलें।

यह कह कर वे उठ खड़े हुए और बाहर की ओर चल पड़े। सभी ने उनका अनुसरण किया। **'गङ्गा-तट'** पर पहुँच कर वे नाव से उस पार हो गए।

संन्यासी बाड़े में पहुँचकर वे सीधे **स्वामी जी** की कुटी की ओर गए। **स्वामी जी** अपनी कुटिया के सामने टहल रहे थे। इन लोगों ने उनको यथा-विधि प्रणाम किया। एक ओर बालू में बैठते हुए **स्वामी जी** ने कहा— आओ, आओ, बैठो। **ठाकुर साहब,** तुम सब लोग कब आए? कहाँ ठहरे हो?

ठाकुर साहब ने कहा— **प्रभो,** हम लोग आज ही की गाड़ी से आए हैं। अपने पण्डे के यहाँ ठहरने का प्रबन्ध किया था, परन्तु अब उस पार उठ जाऊँगा। **शशिनाथ** के साथ ठहरूँगा। अच्छा घर है। बड़ा आराम है।

स्वामी जी ने कहा— **शशिनाथ** का हाल तो मुझे ज्ञात हो गया है, परन्तु तुम लोगों का हाल क्या रहा, क्रम से एक-एक करके बताओ।

आदेश पाकर सभी शिष्यों ने अपनी-अपनी कथा कह सुनाई। **स्वामी जी** बड़े ध्यान से सुनते रहे। जब सब अपना-अपना अनुभव कह चुके, तब उन्होंने कहा— बहुत ठीक है। ऐसा ही होना चाहिए। **हमारे प्रचार का यही ढङ्ग होना चाहिए। हमें तो अपने ही लोगों को अपनी राह लाना है। उन्हीं की बहुत बड़ी संख्या है। नई भरती करने की जरूरत नहीं है। यह मार्ग 'अधिकारी' के लिए है और 'अधिकारी' कौन है, यह 'तन्त्र' में 'गुरु-शिष्य' के दिए हुए लक्षणों से भले प्रकार समझ में आ जाता है। हमें केवल अपने लोगों में ही इसकी चर्चा करनी चाहिए और जो इसे जानना चाहें, उन्हें उदारता के साथ बता देना चाहिए। साथ ही ऐसे ढङ्ग से रहना चाहिए कि अपने लोग समझें कि साधक लोग आदर्श-चरित्र हो हैं। तुम सब लोग पूर्णाभिषिक्त हो। तुम लोगों को अपने कुल का, अपने धन का, अपने प्रभाव का अपनी भलमनसी का तनिक भी गर्व न होना चाहिए सबके साथ सम भाव से रहो और जहाँ तक हो सके सबके साथ सद्-व्यवहार ही करो। किसी का उपकार न करते बने, तो किसी का अपकार तो करो**

नहीं। ईर्षा, द्वेष और वैर-भाव किसी से कदापि न करो। इस बात को न भूलो कि तुमने **'शिवत्व'** प्राप्त करने का व्रत लिया है और यह तत्त्व तुम्हें तभी प्राप्त होगा, जब तुम अपने मन को निर्विकार कर उसे अपने हाथ कर लोगे। **हरि ॐ हरि ॐ—** कह कर **स्वामी जी** चुप हो रहे।

शिष्य-मण्डली का भी ध्यान भङ्ग हो गया। उसमें से प्रत्येक ने इस बात का अनुभव किया कि **गुरुदेव** के उपदेश-रूपी अमृत-वर्षा से वे कितना अधिक कृतार्थ हुए हैं। कुछ देर तक वहाँ शान्ति रही।

कुलानन्द ने कहा— **प्रभो,** आशीर्वाद दीजिए कि हम लोग आपके उपदेशानुसार अपना जीवन-यापन करने में समर्थ हों। कार्य बहुत कठिन है। समय बहुत विपरीत है। हिन्दू-समाज में ईश्वर के प्रति विश्वास तक नहीं रहा! उसके पढ़े-लिखे लोग धर्म-कर्म छोड़कर धर्म की बातें भर करते रहते हैं! उनकी वे सब बातें नास्तिकता से ओत-प्रोत रहती हैं! रहे समाज के अज्ञ जन, सो वे श्रद्धालु तो हैं, परन्तु अन्ध-वत् टूटी-फूटी अन्ध-परम्परा को चलाते भर रहते हैं! सारे समाज में इस समय स्वार्थ ने ही धर्म का स्थान ले लिया है! अपनी बने, दूसरे भाड़ में जाएँ— यही इस समय हिन्दुओं का एक-मात्र धर्म है! ऐसे समाज में **'विज्ञान-मूलक शाक्त-धर्म'** की बात कौन सुनेगा? और सो भी उस दशा में, जब लोग **'शाक्त-धर्म'** का नाम सुनकर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं! हमारे धर्माचार्यों ने हिन्दू-समाज में **'शाक्त-धर्म'** को अत्यधिक बदनाम कर रखा है।

स्वामी जी जोर से हँस पड़े। उन्होंने धीरे से कहा— **कुलानन्द,** आज तुम यह क्या कह रहे हो? यह सब कहाँ से सीख आए! पहले तो तुम ऐसी बातचीत कभी नहीं किया करते थे। सुनो, यह संसार है। **हमें इसके प्रपञ्चों से क्या मतलब? हिन्दू-समाज में आस्तिकता छाई हुई है या नास्तिकता, इस बात से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारा सम्बन्ध एक-मात्र अपने कर्त्तव्य-पालन से है और वह कर्त्तव्य यही है कि जो सन्देश हमें मिला है और जिस पर हमारा दृढ़ विश्वास है, उसी का अनुसरण हमें निष्ठा के साथ करना चाहिए।** मेरे **गुरुदेव** ने मुझे ऐसा ही आदेश किया था। उसका मैं यथा-शक्ति पालन भी कर रहा हूँ। यही बात मैं तुम लोगों से भी कहता हूँ। **हम लोगों ने हिन्दू-समाज या किसी का ठेका नहीं लिया है। ठेका लिया है, तो कर्त्तव्य-पालन भर का** — इह-लोक के और पर-लोक के भी। यही सब मैंने तुम लोगों से भी बार-बार कहा है। **गृहस्थ-धर्म का निष्ठा-पूर्वक पालन करते हुए थोड़ा-सा समय निकाल कर आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करो! और जो भाग्य-शाली राह चलते मिल जाएँ तथा यदि वे चाहें, तो उन्हें भी अपने साथ ले लो।**

यह कहकर **स्वामी जी** बड़े मधुर स्वर में **'हरि ॐ, हरि ॐ'** का उच्चारण करने लगे।

जब **स्वामी जी** चुप हो रहे, तब **कुलानन्द** ने हाथ जोड़कर बड़े विनीत भाव से कहा— प्रभो, अपराध क्षमा हो। यही आशीर्वाद दें कि भविष्य में ऐसे भाव मन में उदय न हों। साथ ही ऐसी शक्ति भी प्राप्त हो कि आपके आदेशों का पालन करते हुए ही सारा जीवन व्यतीत कर सकूँ।

स्वामी जी ने मुस्कुराते हुए कहा— मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो तुम लोगों को सुलभ न हो। मेरी आत्मा सदैव तुम लोगों के साथ रहती है। अहर्निश जो कुछ ध्यान-धारणा करता रहता हूँ, वह सब भी लोगों के कल्याण के लिए ही है। मेरा हृदय से यही आशीर्वाद है कि **माँ** तुम सबको कर्त्तव्य-पालन की पूर्ण शक्ति दे।

यह कहकर **स्वामी जी** ने कहा— सन्ध्या हो आई है। अब जाओ , कल फिर मिलेंगे।

यह कहते-कहते वे उठ खड़े हुए। सब लोगों ने भूमि पर माथा रखकर उन्हें प्रणाम किया और आँखों में आनन्दाश्रु भरे हुए वे **स्वामी जी** से विदा हुए।

संन्यासी बाड़े से बाहर निकलने पर पहले पहल **ठाकुर साहब** बोले — **ब्रह्मचारी जी,** अब क्या कार्य-क्रम है?

कुलानन्द ने कहा— कार्य-क्रम तो पहले ही से तय है। **शशिनाथ** के यहाँ आराम से रहेंगे। चलो, ओढ़ना-बिछौना ले लिया जाए।

यह कहकर वे डेरे की ओर चल पड़े। सबने उनका अनुसरण किया। डेरे में पहुँच कर **ठाकुर साहब** ने अपने नौकरों से कहा— हम लोग उस पार जाकर रहेंगे। तुम यहाँ रहकर ठीक-ठीक देख-भाल करना। अपने भर के लिए भोजन बना लेना। हम सबका भोजन वहीं होगा। हाँ, तुममें से एक कोई चला चले।

उनका मुख्य नौकर **गङ्गादीन** तैयार हो गया। उसने उनका बिस्तरा और कुछ जरूरी सामान उठा लिया। अन्य लोगों ने भी अपने-अपने कपड़े आदि ले लिए और सभी लोग **शशिनाथ** के साथ हो गए। नाव से **गङ्गा जी** को पार कर वे सब लोग शशिनाथ के घर पहुँच गए। **त्रिवेदी** लोगों ने उन सबके रहने की व्यवस्था करके कहा— यहाँ तो आप लोगों के विश्राम करने का स्थान होगा। शौचादि से निवृत्त होकर आप लोग अपने नित्य-कर्म में लगें। तब तक हम लोग भोजन तैयार करते हैं।

यह कहकर वे रसोई-घर की ओर चले गए। इधर अन्य लोग **शशिनाथ** के साथ शौचादि के लिए बाहर निकले। स्नान, पूजन से निवृत्त होकर जब वे घर लौटे, तब यहाँ उन्हें भोजन तैयार मिला। **कुलानन्द** एक एकान्त स्थान में जाकर अर्चन करने लगे। पूजन समाप्त होने के बाद सब लोगों ने भोजन किया। जब भोजन कर चुके, तब सब लोगों ने विश्राम करने के लिए अपने-अपने बिछौने लगाए। दिन भर के थके तो थे ही, थोड़ी ही देर में सब लोग सो गए, परन्तु **शशिनाथ** तभी सोया, जब नौकरों ने भोजन कर लिया और भीतर से द्वार बन्द कर वे भी अपने विश्राम की तैयारी करने लगे।

दूसरे दिन **स्नान का महा-पर्व** था। अतएव सभी लोग तड़के ही जाग कर शौचादि से निवृत्त होकर ठीक **पर्व-काल** में स्नान करने के लिए नौका द्वारा **सङ्गम** में जा पहुँचे। वहाँ स्नान कर नाव को वहीं छोड़ दिया और **'मेला-क्षेत्र'** में उतर गए। वहाँ से डेरे में पहुँच कर उन्होंने अपने वस्त्रादि रखे और इस बात पर विचार करने लगे कि आज का दिन कैसे बिताया जाय। **ठाकुर साहब** ने कहा कि— जल-पान करके **मेला** देखा जाए। दोपहर में कुछ खा लिया जाए। तीसरे पहर **स्वामी जी** का सत्सङ्ग करके उनसे विदा ली जाए और जहाँ तक बन पड़े, रात की ही गाड़ी से हम लोग यहाँ से चल पड़ें। नहीं तो **मेले** की भीड़ के कारण हम कल गाड़ी नहीं पा सकेंगे।

कुलानन्द ने भी **ठाकुर साहब** के प्रस्ताव का समर्थन किया। **ठाकुर साहब** के नौकरों ने जल-पान की व्यवस्था शीघ्र ही कर दी। सबने जल-पान किया और **मेला** देखने को निकल पड़े।

साधु-सन्तों के अखाड़े तो नहीं थे, किन्तु व्यक्ति-गत रूप से जो **साधु-महात्मा** आए थे, उनके दर्शन उन लोगों ने लिए। इधर-उधर **धर्म-कथाएँ** तथा **धर्म-उपदेश** भी सुने। घूम-घाम कर वे सब ११ बजे लौटे। नौकरों ने जल्दी-जल्दी खिचड़ी पकाने का प्रबन्ध किया। दो-चार बड़ी-बड़ी हँडिया अलग-अलग चढ़ीं, तब कहीं जाकर खिचड़ी तैयार हुई। सबने सराह-सराह कर वह खिचड़ी खाई। जब नौकर भी खा-पी चुके, तब **ठाकुर साहब** ने एक को बुलाकर कहा कि— **पण्डा जी** से कह आना कि आज की रात की गाड़ी से हम लोग यहाँ से चले जाएँगे। सन्ध्या समय वे हमें अवश्य दर्शन दें।

यह कहकर वे उठ खड़े हुए और सबके साथ उन्होंने **संन्यासी बाड़े** की राह ली।

मार्ग में **कुलानन्द** ने **शशिनाथ** से पूछा कि— सबेरे जो परची दिखला रहे थे, वह कहाँ है?

शशिनाथ ने जेब से वह परची निकाल कर उन्हें दे दी। उसे देखकर **कुलानन्द** ने **ठाकुर साहब** से कहा कि— आओ चलें, **स्वामी गोविन्दा जी** की कथा ही सुनें। अभी तो **स्वामी जी** अपने ध्यान ही में होंगे। इस परचे में लिखा है कि **स्वामी जी** की कथा तीन बजे तक होगी।

ठाकुर साहब ने कहा— अति सुन्दर।

अस्तु, उन सब लोगों ने **संन्यासी बाड़े** के उस भाग में प्रवेश किया, जहाँ कि **स्वामी जी** की कथा हो रही थी। **स्वामी जी** गम्भीर भाव से कथा कह रहे थे। कोई बीस-पचीस स्त्री-पुरुष बैठे बड़े भक्ति-भाव से कथा सुन रहे थे। यद्यपि यह कथा **संन्यासी बाड़े** में ही हो रही थी, तथापि श्रोताओं में एक भी **संन्यासी** नहीं था। ये सब लोग भी जाकर उनके पास बैठ गए। इन लोगों के पहुँचने से **स्वामी जी** का उत्साह बढ़ा और वे अपनी कथा कुछ अधिक ललित बनाकर कहने लगे। परन्तु कोई कथा हो तो ललित हो, **उपनिषद् का गम्भीर विषय** कहाँ तक ललित हो सकता है और यदि ललित भी बनाकर उसका वर्णन किया जाए, तो भी उसे अधिक धैर्यवान्, व्यक्ति ही सुनते रहने का साहस कर सकते हैं। चाहे जो हो, **स्वामी जी** की कथा के श्रोता सचमुच ही धैर्यवान् थे। नवागन्तुक-मण्डली ने भी अपने धैर्य का अच्छा परिचय दिया। कोई तीन बजे स्वामी जी ने अपनी कथा समाप्त की। उन्होंने कहा— **उपनिषद् के रहस्य का उद्घाटन करना, साथ ही उसे समझना— दोनों ही कठिन बातें हैं। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि आप लोगों ने मेरी कही हुई इस उपनिषद्-कथा को ध्यान से सुना।** मैं आज ही इस कथा को समाप्त कर देना चाहता था, परन्तु कुछ भक्तों का आग्रह है कि मैं अपनी कथा **पूर्णिमा** तक बराबर कहता रहूँ। मैंने उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया है और इस कथा को मैं **पूर्णिमा** तक बराबर कहूँगा। जो लोग शङ्का-समाधान करना चाहें, वे सन्ध्या समय मुझसे फिर मिल सकते हैं।

'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः' का उच्चारण करते हुए **स्वामी जी** चुप हो रहे। पहले के बैठे हुए श्रोता सबसे पहले उठे और **स्वामी जी** को प्रणाम कर विदा हो गए, परन्तु **कुलानन्द** की मण्डली बैठी रही। उन लोगों को बैठे देखकर **स्वामी जी** ने पूछा— आप लोग कहाँ के तीर्थ-यात्री हैं?

कुलानन्द ने कहा— हम लोग भिन्न-भिन्न जगहों के हैं। यहाँ आने पर एक साथ हो गए हैं। आपकी कथा की परची पाकर हम लोग सुनने चले आए। सचमुच ही यह कथा बड़े महत्त्व की होती है। हमें तो पहले-ही-पहल सुनने को मिली है।

स्वामी जी ने कहा— परन्तु सुनता कौन है? ये जो लोग उठकर गए हैं, मेरे शिष्य हैं, यही सुनते हैं। इन्हीं ने परची बाँटी। **संक्रान्ति** के दिन से कथा कह रहा हूँ। यदि कोई आ जाता है, थोड़ी देर बैठकर उठकर चल देता है! मैं जानता हूँ। **'ब्रह्म-ज्ञान'** की बातें कोई सुनना नहीं चाहता, परन्तु मेरा कर्त्तव्य है कि उसे लोगों को सुनाऊँ। इसी से जहाँ जाता हूँ, वहाँ लोगों को यह कथा सुनाता हूँ।

ठाकुर साहब ने कहा— यदि आप मेरे यहाँ पधारने की कृपा करें और वहाँ कुछ समय तक ठहर कर कथा सुनाने की कृपा करें, तो हम लोगों का बड़ा उपकार हो। आपकी हम लोग यथा-शक्ति सेवा भी करेंगे। किसी प्रकार का कष्ट न होने पाएगा।

स्वामी जी ने कहा— **पूर्णिमा** के बाद ही मैं आ सकूँगा। आप अपना ठीक-ठीक पता दें।

ठाकुर साहब ने अपना पता दिया, मार्ग का भी परिचय दिया और कहा कि— यदि आप

द्वितीया को यहाँ से प्रस्थान करेंगे, तो रात में हमारे स्टेशन पर पहुँच जाएँगे। स्टेशन पर हममें से कोई-न-कोई आपके स्वागत के लिए अवश्य मौजूद रहेगा। यदि इस दिन नहीं पहुँचेंगे, तो **तृतीया** को भी दिन भर और रात भर आपकी प्रतीक्षा में हमारे आदमी वहाँ ठहरे रहेंगे।

स्वामी जी ने कहा— ऐसा नहीं होगा। मैं **द्वितीया** को ही प्रस्थान करूँगा।

इस पर **ठाकुर साहब** ने उठकर दस रुपये का एक नोट **स्वामी जी** के आगे रख दिया। नोट को देखकर **स्वामी जी** ने कहा— मैं तो द्रव्य-संग्रह नहीं करता। इसे आप अपने पास रख लें।

ठाकुर साहब ने कहा— यह आपके मार्ग-व्यय के लिए है।

स्वामी जी ने कहा— यह ठीक है, परन्तु जब मुझे ऐसी कोई जरूरत पड़ती है, तब भक्त लोग उसे पूरा कर देते हैं। मेरे शिष्य मुझे यहाँ गाड़ी में बिठा देंगे। आप निश्चिन्त रहिए।

कुलानन्द ने कहा— हाँ महाराज, आप ठीक कहते हैं।

यह कहकर उन्होंने नोट उठा लिया। इसके बाद उन सब लोगों ने **स्वामी जी** को प्रणाम किया और वहाँ से वे सब बाहर निकल आए।

बाहर आने पर **कुलानन्द** ने कहा— इनकी **उपनिषद्-कथा** से तो यही झलकता है कि ये **स्वामी जी** भी **शाक्त साधक** हैं।

ठाकुर साहब ने कहा— मुझे भी ऐसा जान पड़ा। इसी से इनका आवाहन किया है। यदि आ गए, तो सब लोग इनकी कथा सुनकर अपना कल्याण-साधन करेंगे।

इस तरह बातचीत करते हुए वे सब अपने **स्वामी जी** के बाड़े में पहुँच गए। जब वे **स्वामी जी** की कुटिया के पास पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि वे किसी व्यक्ति से बातचीत कर रहे हैं। सब लोगों ने **स्वामी जी** को नत-जानु होकर प्रणाम किया और एक ओर चुपचाप बैठ गए।

स्वामी जी ने उस व्यक्ति को इन लोगों का परिचय दिया। उन्होंने कहा— तुम्हारे आश्रम की तरह इन **ठाकुर साहब** ने भी अपने यहाँ एक **आश्रम** खोला है। उस आश्रम के अधिपति इन **कुलानन्द** ने, यह देखो, इन **साधकों** को तैयार किया है, जो उस **आश्रम** की सफलता का द्योतक है।

फिर उन्होंने उस व्यक्ति का परिचय देते हुए कहा— इनका भी एक आश्रम **'वैद्यनाथ धाम'** में स्थापित है। वहाँ भी वही कार्य हो रहा है, जो तुम्हारे यहाँ हो रहा है।

इसके बाद **स्वामी जी** ने पुनः उस व्यक्ति की ओर देखकर कहा— हाँ, अब कहो, क्या कहते हो?

उस व्यक्ति ने कहा— मैं कह क्या सकता हूँ। अनुनय-विनय भर कर सकता हूँ। एक युग के बाद आपके दर्शन हुए हैं। मुझे समय नहीं है कि आपके साथ कुछ समय तक रह सकूँ। फिर आप **कलकत्ता** आने से घबड़ाते हैं। मैं सोचकर ही **प्रयाग** आया हूँ कि आपके दर्शन अवश्य होंगे और **अमावास्या की 'महा-पूजा'** में आपके हाथ का **'महा-प्रसाद'** ग्रहण करूँगा। पूजा का सारा प्रबन्ध कर आपके दर्शनार्थ यहाँ दौड़ा आया, परन्तु आप इन्कार कर रहे हैं। आप तो मेरा बहुत ही अधिक स्नेह किया करते थे। अवश्य आठ-दस वर्ष से मैंने आपके दर्शन नहीं किए। आपकी दासी ने आज निराहार व्रत किया है। कहा था, **प्रभु के हाथ का प्रसाद** पाकर ही **व्रत का पारण** करूँगी। मेरा अपराध क्षमा हो।

यह कहते हुए उसने अपना सिर **स्वामी जी** के पैरों पर रख दिया। उसका सिर अपने हाथ से उठाते हुए **स्वामी जी** ने कहा— **चतुर्भुज,** मैंने बस्ती में आना-जाना छोड़ दिया है। ऐसी दशा में तू ही बता, मैं कैसे चल सकता हूँ? फिर इन सब शिष्यों को कैसे छोड़ सकता हूँ?

चतुर्भुज ने हाथ जोड़कर कहा— **प्रभो,** मैं आपको बस्ती में नहीं ले जाऊँगा। मैं तो **किले के मैदान** में, **अलोपीबाग** में एक **राजा की कोठी** में ठहरा हूँ— बिल्कुल एकान्त स्थान! अब रहे ये हमारे बन्धु, सो इन सबका भी स्वागत करूँगा। अब दया करके अनुमति दीजिए।

कुछ देर तक सोचने के बाद **स्वामी जी** ने कहा— अच्छा, जाओ, जो तुम्हारी इच्छा।

चतुर्भुज प्रसन्न हो उठा। उसने कहा— दस बजे मोटर लेकर मैं आऊँगा (बैठे हुए **ठाकुर साहब** आदि की ओर देख कर) आप लोग भी तैयार रहें।

उसने **स्वामी जी** को प्रणाम किया और वहाँ से विदा हो गया।

उसके चले जाने पर **स्वामी जी** ने कहा— **कलकत्ते** में इसका अच्छा कारबार है। इसके पूर्वज धन और धर्म दोनों से सम्पन्न रहे हैं। वैसे ही यह भी है। **'वैद्यनाथ धाम'** में मेरा जो आश्रम है, उसकी देख-रेख इसी के हाथ में है। आठ-दस वर्ष से मैं उधर नहीं गया। इसी से बुलाने आया है। मैंने वचन दे दिया है, **'शिव-रात्रि'** में **नेपाल की यात्रा** कर जब मैं लौटूँगा, तब **मिथिला** होते हुए **'वैद्यनाथ धाम'** अवश्य जाऊँगा।

ठाकुर साहब बीच ही में बोल पड़े— तो **प्रभु,** जान पड़ता है, हम लोगों पर कृपा नहीं करेंगे।

मुस्कुराते हुए **स्वामी जी** ने कहा— आप तो क्षत्रिय हैं, राज-वंशीय हैं, न्याय कीजिए न।

ठाकुर साहब चुप रहे। **कुलानन्द** से बातचीत होने लगी। उन्होंने **स्वामी जी** को **पाठशाला** की स्थिति से अवगत किया, जिससे **स्वामी जी** बहुत प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने एक-एक व्यक्ति से बातचीत की। **शशिनाथ** के शिष्यों से भी। और उनसे तो यहाँ तक भी कहा कि— अपने पिता से कहना कि मैं उनको अच्छी तरह जानता हूँ। बहुत दिन हुए, एक बार **'चण्डी-क्षेत्र'** में **पीपल-वृक्ष** के नीचे **'गङ्गा-तट'** पर अपने हाथ से भोजन बनाकर भिक्षा कराई थी, वही मैं हूँ।

ठाकुर साहब ने कहा— **प्रभो,** हम लोग तो आज ही रात की गाड़ी से चले जाना चाहते हैं।

स्वामी जी ने कहा— कितने बजे की गाड़ी से?

ठाकुर साहब ने कहा— सबेरे चार बजे की गाड़ी से।

स्वामी जी ने कहा— कोई हर्ज नहीं, अपना सब सामान साथ लेते चलना। उधर ही से स्टेशन चले जाना।

साँझ हो रही थी। अतएव वे सब लोग **स्वामी जी** से आज्ञा लेकर अपने डेरे की ओर चले। बाड़े के बाहर निकलने पर **शशिनाथ** ने **ठाकुर साहब** से कहा— नित्य-कर्म से निपट कर हम लोग भी ठीक समय पर आपके यहाँ आ जायँगे।

यह कह कर वह **गङ्गा जी** की ओर घूम पड़ा। **ठाकुर साहब** अपने साथियों के साथ अपने डेरे पर चले गए। **पण्डा जी** को भेंट-पूजा चढ़ाकर उनसे भी विदा ले ली। इतने ही में **शशिनाथ** भी अपने शिष्यों के साथ आ गया। उसने देखा कि **ठाकुर साहब** सामान बाँधे अपने साथियों के साथ तैयार हैं। उसने कहा— क्या मैं देर करके आया हूँ?

ठाकुर साहब ने कहा— नहीं, ठीक समय पर आए हो। ठीक साढ़े आठ बजे हैं। मेरी समझ में यह अच्छा होगा कि हम लोग यहाँ से चलकर मोटर के अड्डे पर ही बैठें। नहीं तो **सेठ जी** हम लोगों को कहाँ ढूँढ़ते फिरेंगे। **स्वामी जी** की कुटिया जाना ठीक न होगा।

कुलानन्द ने कहा— आप ठीक कहते हैं। वहीं चलकर बैठना ठीक है।

यह कह कर वे आगे हो गए। अड्डा वहाँ से बहुत दूर नहीं था। अड्डे के निकट पहुँच कर वे सब सड़क के किनारे रेत पर बैठ गए। नौ बजते-बजते जब वहाँ एक मोटर

आती हुई दिखाई दी, तब **ठाकुर साहब** ने कहा— जान पड़ता है, **सेठ जी** की यही मोटर है। अड्डे के बाहर ही मोटर खड़ी हो गई। वहीं पास ही ये सब लोग बैठे थे। **सेठ जी** ने मोटर से उतर कर उन्हें देखा, तब पास आकर कहा— आप लोग आ गए! अच्छा किया। मैं **स्वामी जी** को लाता हूँ। आप लोगों के लिए और दो मोटरें आ रही हैं। ठीक नौ बजे यहाँ पहुँचेंगी। अभी दस मिनट बाकी हैं।

यह कहकर वे जल्दी-जल्दी **संन्यासी-बाड़े** की ओर लपके। बाड़े के बाहर की उनकी **स्वामी जी** से भेंट हो गई। उन्होंने कहा— **चतुर्भुज!**

सेठ जी बोले— हाँ **प्रभो!**

स्वामी जी ने कहा— मैं तैयार हूँ, चलो।

यह कहकर वे अड्डे की ओर चल पड़े। **चतुर्भुज** ने राह में बताया— वे सब लोग भी अड्डे के पास बैठे हैं। दो मोटरें और आ रही हैं। जो लोग न जा सकें, उन्हें दूसरी बार ले जाऊँगा।

स्वामी जी कुछ नहीं बोले। अड्डे के पास पहुँचकर **स्वामी जी** चुपचाप जाकर मोटर में बैठ गए। **ठाकुर साहब** और **कुलानन्द** को पीछे बिठाकर जितना सामान उसमें आ सका, वह सब उसमें रख लिया। इतने ही में वे दो मोटरें भी आ गईं। अन्य लोगों को उनमें बिठाया। जो रह गए, उनसे कहा— आप लोग यहीं बैठे रहिए, मोटरें अभी भेजता हूँ।

थोड़ी ही देर में मोटरें **अलोपीबाग** में पहुँच गईं। जब सवारियाँ **कोठी** में उतर गईं, तब मोटरें फिर **सङ्गम** की ओर दौड़ पड़ीं और शेष लोगों को भी लेकर **कोठी** में पहुँच दिया।

इधर जब **स्वामी जी** कोठी में पहुँचे, तब **सेठानी जी** ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और भूमि पर माथा टेककर उनको प्रणाम किया। फिर उन्हें भीतर ले जाकर एक सुन्दर आसन पर बैठाया। उनके पैर धोकर उनका पूजन किया और कहा— आज कितने दिनों के बाद मेरा भाग्य उदय हुआ है, जो **श्री-चरणों** के दर्शन हुए हैं।

स्वामी जी ने कहा— ठीक कहती हो, परन्तु तुम तो मेरी परिस्थिति से परिचित हो। संन्यास ले लिया है, तो भी वह तरह-तरह के नाच नचाया करती है!

सब लोग हँस पड़े।

सेठ जी ने कहा— **प्रभो,** सब प्रबन्ध हो गया है। क्या आज्ञा है?

स्वामी जी ने उनकी पत्नी की ओर सङ्केत कर कहा— इनसे पूछो, इनकी क्या इच्छा है?

सेठानी ने कहा— श्री-चरणों को यदि कष्ट न हो, तो आज के **यजन का प्रसाद** श्री कर-कमलों से ही प्राप्त करना चाहती हूँ।

स्वामी जी ने कहा— अच्छी बात है।

यह कह कर वे उठ खड़े हुए। **सेठ जी** उन्हें वहाँ लिवा ले गए, जहाँ **पूजा** करने की व्यवस्था थी और सब लोग भी उनके सङ्केत पर हाथ-पैर धोकर वहाँ पहुँच गए। **स्वामी जी** के आदेश पर उन सब लोगों ने अपना-अपना **आसन** ग्रहण किया। **पूजन** प्रारम्भ हुआ। **सेठानी जी** यथा-आवश्यक पूजोपकरण देने के लिए एक **आसन** पर **स्वामी जी** के निकट बैठी थीं। **स्वामी जी** पूजन की क्रिया इतनी सुगमता से सम्पादित कर रहे थे, जैसे कोई **नित्य का पुजारी** हो। उधर **सेठानी** भी यथा-अवसर **स्वामी जी** को पूजोपकरण इतनी सावधानी से दे रही थीं, मानो उनका यही काम सदा रहा है। इधर अन्य **साधक** लोग अपने-अपने **आसन** पर बैठे अपने-अपने **कल्प** के अनुसार **क्रिया** करने में संलग्न थे। किसी तरह का कोई शब्द नहीं हो रहा था। एकाग्रता का एक विलक्षण वातावरण बन गया था। इतने ही में **स्वामी जी** ने **'यन्त्र-राज'** में **देवता** का आवाहन किया। उनके **'यन्त्र'** पर पुष्प रखते ही सभी ने

देखा कि **तेज-रूपा देवी** की एक आकृति प्रकट होकर पुष्प रूप में परिवर्तित हो गई। इस दिव्य छटा की झलक को देखकर उपस्थित मण्डली क्षण भर के लिए चकित होकर **आनन्द** से भर गई। सभी ने मन-ही-मन उस **देवी-स्वरूप** की वन्दना की। **स्वामी जी** पूर्ववत् अपने कार्य में इस प्रकार संलग्न थे, मानो समाधिस्थ हों। **नीराजन** के बाद जब वे **पुष्पाञ्जलि** की स्तुति करने लगे, तब उनकी आँखों से अश्रु की धारा बह निकली। अन्य लोगों को भी **भावावेश** हो गया। तदनन्तर **स्वामी जी** ने ही **शक्ति-पूजा** और **वीर-पूजा** भी की और स्वयं ही सबको **प्रसाद** भी निदान किया।

प्रसाद-ग्रहण-काल में जब **कुलानन्द** ने अपना **उल्लास स्तवन— 'भैरवोऽहम् शिवोऽहम्'** पढ़कर समाप्त किया, तब **स्वामी** जी हँसते हुए बोले— बहुत दिन की बात है, मैं ब्रह्मचारी था। गुरुदेव के साथ मैं **काशी जी** गया था। वहाँ उन्हीं के साथ एक पूजन में भी गया। मैंने **कुलानन्द** ही की तरह बड़े भाव के साथ यही स्तवन पढ़ा था। स्तवन के समाप्त होने पर गुरुदेव ने कहा कि **'इस स्तुति को पढ़ते तो बहुत से लोग हैं, परन्तु इसकी अनुभूति बहुत ही कम लोग करते हैं। साधक के लिए इसकी अनुभूति करना अत्यावश्यक है। हम लोगों की इस 'महा-पूजा' का उद्देश्य ही यह है कि हम भैरव बनें, शिव बनें। पूजा के प्रारम्भ में जीव-न्यास द्वारा हम अपनी आत्मा को 'देवत्व' प्रदान करते हैं। अन्तर्यजन में अपनी उसी 'देवता-स्वरूप आत्मा' का ही पूजन करते हैं और बाह्य यजन में उसी को बाहर लाकर 'यन्त्र' में प्रतिष्ठित कर देवता के साकार रूप में उसी का सोलहों प्रकार पूजन करते हैं। अन्त में उसका विसर्जन कर फिर वहीं पहुँचा देते हैं, परन्तु साधक की यह 'भैरव' बनने की भावना पूजा के बाद प्रायः लुप्त हो जाती है। यदि यह भावना स्थायी रूप धारण कर ले अर्थात् पूजन के बाद भी बराबर प्रति-क्षण बनी रहे, तभी वह इस उल्लास स्तवन के पढ़ने का अधिकारी है। अन्यथा नहीं।'** गुरुदेव की यह बात सुनकर मैं हत-प्रभ हो गया था, परन्तु उनकी इस मधुर भर्त्सना का मुझ पर अच्छा प्रभाव पड़ा। मैंने उनकी सीख ग्रहण कर ली और जब उसका अभ्यास प्रारम्भ किया, तब सचमुच ही बड़ा आनन्द मिला। प्रत्येक **शाक्त साधक** के लिए यह आवश्यक है कि वह इसको समझे ही नहीं, किन्तु इसका यथा-सम्भव **अभ्यास** भी करे। उसे निस्सन्देह परम सुख मिलेगा।

विनय के साथ **शशिनाथ** ने कहा— प्रभो, जो लोग इस **महा-पूजा** में शामिल होते हैं, वे इस तथ्य को कैसे अनुभव कर सकते हैं?

स्वामी जी ने कहा— **'चक्रार्चन'** में शामिल होनेवाले को ठीक समय पर आना चाहिए और यथा-विधि अपने-अपने **आसन** ग्रहण कर यदि वह **'अन्तर्यजन'** तक अपने **कल्प** के अनुसार **यजन** करेगा, तो उसे अवश्य ही इस तथ्य की अनुभूति होगी।

यह कहकर **स्वामी जी** ने शेष यजन-पूजा करने के बाद **शान्ति-पाठ** आदि किया।

पूजा की समाप्ति के बाद **स्वामी जी** उठ खड़े हुए। उन्हीं के साथ और सब लोग भी। **स्वामी जी** के पीछे-पीछे पूजा-गृह से सब लोग बाहर आ गए। उस समय तीन बज रहे थे। उन्होंने कहा— **चतुर्भुज** तीन बज गया। इन सब लोगों को स्टेशन पहुँचाना चाहिए।

चतुर्भुज ने कहा— प्रभो, बाहर सवारियाँ तैयार खड़ी हैं। यह प्रबन्ध पहले ही से कर रखा है।

कोठी के बाहर आने पर सचमुच ही कई एक्के खड़े दिखायी दिए। **ठाकुर साहब** आदि ने **स्वामी जी** को यथा-विधि प्रणाम किया तथा **सेठ** जी आदि से भी प्रेम-पूर्वक मिलकर एक्कों पर बैठे और एक्के स्टेशन की ओर बढ़े। उन लोगों के चले जाने पर **चतुर्भुज** ने **स्वामी जी** से कहा— प्रभो, आप कुछ देर ठहरें, तो मैं कार निकाल लाऊँ

और आपको **'मेला-क्षेत्र'** में पहुँचा दूँ।

स्वामी जी ने हँसकर कहा— नहीं, तुमको इस अवस्था में मैं कार नहीं चलाने दूँगा। हम लोग बड़े आराम से सीधी राह से चले जायँगे। कौन बहुत दूर है!

यह कहकर वे चल पड़े। **शशिनाथ** और **त्रिवेदी** लोगों ने उनका अनुसरण किया। **चतुर्भुज** ने कोई बाधा नहीं दी। **'जो आज्ञा'** कहकर उसने बढ़कर **स्वामी जी** के चरण-स्पर्श किए और कोठी के भीतर चला गया। **स्वामी जी** चुपचाप चल रहे थे। **शशिनाथ** ने भी कोई बात नहीं छेड़ी। **संन्यासी बाड़े** के पास **शशिनाथ** और उसके साथियों ने **स्वामी जी** को प्रणाम किया और वे **घाट** की ओर मुड़ गए। **स्वामी जी** उधर बाड़े के भीतर चले गए। **घाट** पर पहुँच कर **शशिनाथ** नाव से शीघ्र ही उस पार हो गया और वहाँ से अपने स्थान पहुँच गया। स्थान पहुँचने पर वे सब विश्राम करने लगे। दिन भर के थके थे, शीघ्र ही सो गए। दूसरे दिन जब नींद खुली, तब शौचादि से निवृत्त होकर उन सब लोगों ने स्नान-पूजन किया। पूजा आदि से निश्चिन्त होकर यह निश्चय किया गया कि आज रात की गाड़ी से घर चलना चाहिए।

शशिनाथ ने कहा— अच्छी बात है। भोजन आदि से छुट्टी पाकर मकान गृह-स्वामी को सौंप कर सामान के सहित पार उतर चलें। सन्ध्या समय चार बजे **स्वामी जी** के दर्शन कर उनकी आज्ञा लेकर वहाँ से स्टेशन को चल दें। दस बजे की गाड़ी बड़े आराम से मिल जाएगी।

त्रिवेदियों में एक ने कहा— हाँ गुरू जी, ऐसा ही करना ठीक होगा।

यह कहकर वह भोजन की व्यवस्था करने चला गया। भोजन तैयार हो जाने पर सबने भोजन किया और उसके बाद थोड़ी देर विश्राम भी किया। इतने में उनके नौकर भी खा-पीकर छुट्टी पा गए। वे सब सामान बाँधने लगे। जब चलने की पूरी तैयार हो गई, तब पता चला कि गृह-स्वामी **मेले** से अभी तक लौटे नहीं। कोई तीन बजे तक जब वे आए, तब उनसे विदा लेकर इन सब लोगों ने वहाँ से प्रस्थान किया। नाव से पार होकर ये सब **सङ्गम-क्षेत्र** में आए। **संन्यासी बाड़े** के पास पहुँच कर इन्होंने नौकरों को सामान के साथ बाड़े के बाहर ही बैठा दिया और उनसे कहा कि— 'तुम लोग यहीं आराम से बैठो। हम लोग **स्वामी जी** के दर्शन करके थोड़ी देर में आते हैं।' यह कहकर ये लोग बाड़े के भीतर हो गए। इन लोगों ने दूर ही से देखा कि **स्वामी जी** कुटिया के बाहर बालू पर लेटे हुए हैं। समीप पहुँच कर इन सब लोगों ने बड़ी भक्ति के साथ **स्वामी जी** को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और आज्ञा मिलने पर वहीं बैठ गए। **स्वामी जी** ने लेटे-ही-लेटे कहा— **शशिनाथ,** क्या अब घर जा रहे हो? अच्छा है, **मेला** भी समाप्त हो गया है। किस गाड़ी से जाने का विचार किया है?

शशिनाथ ने कहा— प्रभो, रात में दस बजे की गाड़ी से, परन्तु यदि आप आज्ञा देंगे तभी।

स्वामी जी ने कहा— हाँ, हाँ जा सकते हो। कोई काम भी तो नहीं है। काम की सब बातचीत हो ही चुकी है। तुम जिस ढङ्ग से काम कर रहे हो, वह मुझे अच्छा लगा है। तुम्हारी जवार में एक समय **स्व-धर्म** का अच्छा प्रचार था। वहाँ **'चण्डी-क्षेत्र'** ही है। इसी ढङ्ग से यदि काम करोगे, तो तुम्हें पूर्ण सफलता मिलेगी। इन **त्रिवेदियों** का घराना धर्म और धन दोनों से सम्पन्न रहा है। तुम्हें इन लोगों से बड़ी सहायता मिलेगी। (**त्रिवेदियों** की ओर देखकर) क्यों, अपने गुरु-देव की इस **धर्म-कार्य** में सहायता करोगे न?

उन सब लोगों ने हाथ जोड़कर कहा— प्रभो, ऐसा आशीर्वाद दें कि हम लोग यथा-शक्ति सेवा करने में कभी शिथिल न हों।

स्वामी जी हँस पड़े। उन्होंने कहा— क्यों न

हो, तुम लोग ऐसे ही हो। मुझे तुम लोगों से ऐसी ही आशा है। मैं हृदय से चाहता हूँ कि **जगदम्बा** तुम्हें बल दे, जिससे तुम अपने गुरु के साथ उनका सन्देश अपनी जवार में घर-घर पहुँचा सको। मैं हृदय से चाहता हूँ कि **'चण्डी-क्षेत्र'** एक बार फिर अपना पहले-सा गौरव प्राप्त करे। मैं तुम सबकी कल्याण-कामना करता हूँ। मैं तुम्हारी ओर जल्दी-से-जल्दी आऊँगा। अच्छा, अब तुम लोग जाओ। अँधेरा होने से पहले ही स्टेशन पहुँच जाना ठीक होगा।

यह कहकर **स्वामी जी** उठ कर बैठ गए। सब लोगों ने माथा टेक कर **स्वामी जी** को प्रणाम किया और एक-एक कर सबने उनके चरण-स्पर्श किए। वहाँ से वे **महन्त जी** के पास आए। सबने उनको प्रणाम किया और यथा-शक्ति भेंट भी चढ़ाई।

महन्त जी ने कहा— अच्छा, तो क्या आप लोग अब घर जा रहे हैं? क्या अपने **स्वामी जी** से विदा हो आए?

शशिनाथ ने कहा— हाँ महाराज!

महन्त जी ने कहा— अच्छा है जाओ।

महन्त जी से विदा होकर वे बाड़े के बाहर आए। बाड़े के बाहर नौकरों को साथ लिया और वहाँ से **बाँध** की ओर बढ़े। **बाँध** पर पहुँच कर उन्होंने एक्के किए और वहाँ से स्टेशन की राह ली, जहाँ वे अँधेरा होने के पहले ही पहुँच गए। स्टेशन में मुसाफिर खाने में उन्होंने एक जगह पर अपना आसन लगा दिया और बैठकर आराम करने लगे। साढ़े नौ बजे जब टिकट बँटने लगा, तब टिकट लेकर वे स्टेशन के भीतर पहुँचे। दस बजे की गाड़ी से वे चलकर सबेरा होने के पहले ही अपने स्टेशन पर जा उतरे। यहाँ बैलगाड़ियाँ किराए पर कर **'रामपुर घाट'** की ओर चले। आठ नौ बजे के लगभग घाट पर पहुँच कर स्नान-पूजन करने के बाद उन्होंने नाव से **गङ्गा जी** को पार किया। पार उतरने पर **शशिनाथ** ने **त्रिवेदी** लोगों ने कहा— चलो न, आज हमारे ही यहाँ ठहरो। कल चले जाना।

एक **त्रिवेदी** बोला— नहीं गुरुदेव, ऐसी आज्ञा न दीजिए। इस समय सीधा गाँव ही जाने दीजिए। फिर सेवा में उपस्थित होऊँगा।

शशिनाथ ने कहा— अच्छी बात है। तो मैं जाता हूँ।

उन लोगों ने **शशिनाथ** को प्रणाम कर विदा किया। **शशिनाथ** ने **रामपुर** की राह ली और वे सब गाड़ी करके अपने गाँव की ओर रवाना हुए। ■

'तन्त्र-मार्ग'

'तन्त्र-मार्ग'— 'अधिकारी' के लिए है और 'अधिकारी' कौन है, यह 'तन्त्र' में 'गुरु-शिष्य' के दिए हुए लक्षणों से भले प्रकार समझ में आ जाता है। **'तन्त्र'** को जो जानना चाहे, उसे उदारता के साथ बता देना चाहिए। साथ ही ऐसे ढङ्ग से रहना चाहिए कि लोग समझें कि साधक लोग आदर्श-चरित्र होते हैं। अपने कुल का, अपने धन का, अपने प्रभाव का, अपनी भलमनसी का तनिक भी गर्व न होना चाहिए। सबके साथ सम भाव से रहे और जहाँ तक हो सके, सबके साथ सद्-व्यवहार ही करना चाहिए। किसी का उपकार न करते बने, तो किसी का अपकार तो करना ही नहीं चाहिए। ईर्षा, द्वेष और वैर-भाव किसी से कदापि नहीं करना चाहिए।

धर्म-मार्ग पर

१७. शशिनाथ का विवाह

शशिनाथ ने त्रिवेदी लोगों से विदा लेकर रामपुर की राह पकड़ी। जब वह कगार पर चढ़ने लगा, उसके मन में इच्छा हुई कि आश्रम को देखते हुए चलूँ। वह उधर घूम गया। जब आश्रम में पहुँचा, तब उसे देखकर बड़ा दुःख हुआ। कुटिया ध्वंस पड़ी थी। भण्डार-गृह का भी बहुत कुछ वही हाल था। उसके आगे जो छप्पर पड़ा था, उसके नीचे उसने एक **वृद्ध साधु** को बैठे देखा। धीरे-धीरे वह उनके पास गया और उनको प्रणाम कर वहीं बैठ गया। उसने पूछा—**बाबा जी,** आप यहाँ कब से हैं?

बाबा जी ने कहा— मैं परिव्राजक हूँ। परसों यहाँ आते-आते सन्ध्या हो गई। अतएव यहीं ठहर गया।

शशिनाथ ने विनय के साथ पूछा— **भिक्षा** मिली थी या नहीं?

बाबा जी ने हँसकर कहा— हाँ, कल एक चरवाहा इधर से निकला था। उसने कुछ आँवले तोड़ कर भून दिए थे। उनसे मेरी **भिक्षा** हो गई थी। उसी ने बताया था कि 'यह स्थान बहुत दिनों से खाली है। यहाँ कोई आता-जाता भी नहीं।'

शशिनाथ ने कहा— क्यों न आप इसका जीर्णोद्धार करें? एकान्त स्थान है। गङ्गा का पुनीत तट है। आश्रम में एक सुन्दर कूप है। यदि आप ठहर जाएँगे, तो भक्त लोग भी एकत्र होने लगेंगे। स्थान भी बन जाएगा।

बाबा जी ने घबड़ाकर कहा— यह न कहो। मैं इस झगड़े में न पड़ूँगा। जब तक शरीर में चलने की शक्ति है, मैं गङ्गा के किनारे-किनारे भ्रमण ही करता रहूँगा!

शशिनाथ ने कहा— कल भी आपकी **भिक्षा** नहीं हुई और न आज ही उसका कोई लक्षण दिखाई देता है। यदि अनुचित न हो, तो बस्ती तक चलने का कष्ट करें, मेरे घर को पवित्र करें। बस्ती यहाँ से दूर नहीं है।

बाबा ने कहा— मैं तो बस्ती के भीतर जाता नहीं। हाँ, गाँव के बाहर ला दोगे, तो **भिक्षा** ले लूँगा।

शशिनाथ ने कहा— मुझे यह भी स्वीकार है, चलिए।

बाबा जी उठ खड़े हुए। **शशिनाथ** ने कहा— आपका सामान कहाँ है?

बाबा जी ने कहा— जो कुछ तुम देखते हो, वही तो है।

शशिनाथ ने कहा— ठीक है, आइए।

वह आगे-आगे चल पड़ा। जब वह गाँव के समीप पहुँचा, तब एक सघन नीम का वृक्ष देखकर **बाबा जी** ने कहा— अब बस्ती आ गई है। मैं इसी नीम के नीचे बैठकर तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। मेरे लिए विशेष चिन्ता न करना। जब **भिक्षा** तैयार हो जाय, तब ले आना। कोई जल्दी नहीं है।

'जो आज्ञा' कह कर **शशिनाथ** गाँव की ओर बढ़ा। द्वार पर पहुँचने पर उसने देखा कि **मौसिया जी** पूजा के स्थान में बैठे हुए जप कर रहे हैं। जब उनकी निगाह **शशिनाथ** के मुँह पर पड़ी, तब उनका मुख-मण्डल प्रसन्नता से खिल उठा, पर वे

कुछ बोले नहीं। **शशिनाथ** ने भी दूर से ही भूमि पर मस्तक रख कर उन्हें प्रणाम किया और जल्दी-जल्दी घर के भीतर चला गया। उसकी **मौसी** रसोई-घर में थीं। उसके आने की आहट पाकर जब **मौसी** ने घूम कर देखा, तब प्रसन्नता से उन्होंने कहा— मेरा बेटा **शशी** आ गया! आओ बेटा, आओ, भले आए।

शशिनाथ ने दूर से भूमि पर माथा रखकर उन्हें प्रणाम किया और कहा— **मौसी,** तुम्हारे आशीर्वाद से कुशल-पूर्वक आ गया हूँ, पर एक भार भी साथ लाया हूँ।

मौसी ने हँसकर कहा— क्या **'बहू'** भी ले आए हो? वह भार कैसे होगी?

झेंप कर **शशिनाथ** ने कहा— वह सब तो आप लोगों का काम है। राह में एक **संन्यासी जी** मिल गए। गाँव के बाहर रुक गए हैं। उन्हें **'भिक्षा'** कराना है।

मौसी जी ने प्रसन्नता से कहा— बेटा, उसको भार कहते हो! **'अतिथि'** को भोजन कराना हम लोगों का पहला धर्म है। भोजन तैयार है। पहले उनको **'भिक्षा'** करा आओ, फिर तुम भी भोजन करो।

यह कह कर उन्होंने एक स्वच्छ थाली में **'भिक्षा'** सजा दी और उसे एक पत्तल से ढँक कर रसोई-घर के बाहर रख दिया। उन्होंने कहा— बाल्टी में वह लोटा, गिलास डाल कर पानी ले लो और अपने अँगौछे में थाली बाँध कर लटका लो। इस प्रकार दोनों चीजें आसानी से चली जायँगी।

शशिनाथ ने वैसा ही किया। जब वह घर के बाहर निकला, तब **मौसिया जी** की निगाह फिर उस पर पड़ी। उसने कहा— गाँव के बाहर एक **संन्यासी जी** आए हैं। उनके लिए **'भिक्षा'** लिए जा रहा हूँ। मैं जल्दी लौटूँगा, परन्तु आप मेरी राह न देखिएगा, भोजन कर लीजिएगा।

यह कहता हुआ वह चला गया। गाँव के बाहर पहुँच कर वह **संन्यासी जी** के पास पहुँचा। उसे इतनी जल्दी लौटते देख कर उन्होंने कहा— बड़ी जल्दी आ गए!

साफ जगह देख कर हाथों का सामान रखते हुए **शशिनाथ** ने कहा— महाराज, सब तैयार था। इसलिए जल्दी आ गया।

यह कह कर बाल्टी से लोटा-गिलास निकाल कर **संन्यासी जी** के हाथ धुलाए और अँगौछे से थाली खोल कर उनके सामने रख दी।

संन्यासी जी ने कहा— यह तो बहुत है! मेरे लिए पत्तल में निकाल कर जितना मैं कहूँ, रख दो।

शशिनाथ ने उनकी आज्ञा का पालन किया। जब वे **'भिक्षा'** कर चुके, तब उन्हें चुल्लू में पानी भी पिलाया। उसने कहा— जान पड़ता है, आप धातु का स्पर्श नहीं करते।

संन्यासी जी ने कहा— तुम्हारा अनुमान ठीक है। मेरी **'भिक्षा'** हो गई और अब मैं चला।

शशिनाथ ने उनको प्रणाम किया। **संन्यासी जी** ने गङ्गा जी की ओर की राह ली। **शशिनाथ** भी बचा हुआ भोजन, पात्र आदि लेकर घर चला आया।

घर के द्वार पर पहुँचने पर उसने देखा कि **मौसिया जी** चौपाल में खड़े हैं। उन्होंने पूछा— क्या **स्वामी जी** वहीं विराजमान हैं?

शशिनाथ ने कहा— नहीं, वे तो **'भिक्षा'** करके तुरन्त ही चले गए।

मौसिया जी ने कहा— अरे, मैं तो दर्शनार्थ आ रहा था। ठीक है **संन्यासी** लोग भिक्षा करने के बाद प्रायः तुरन्त ही चले जाते हैं। मुझे दर्शन नहीं मिले। इसमें क्या कुछ बचा है? यदि बचा हो, तो भीतर ले जाकर ढँक कर रख देना। चलो, हम लोग भी भोजन कर लें।

यह कह कर वे भी **शशिनाथ** के पीछे-पीछे घर के भीतर चले गए।

घर के भीतर जाकर **शशिनाथ** ने बची हुई **'भिक्षा'** ढाँक कर रख दी। बाल्टी और लोटा भी उसने धो डाला। भोजन तैयार ही था। **मौसी** ने कहा— बेटा, आओ, तुम लोग भी भोजन कर लो।

शशिनाथ भी **मौसिया जी** के पास चौके में जा बैठा। भगवान् को भोग लगा कर **मौसिया जी** ने भोजन प्रारम्भ किया। **मौसी** ने कहा— बेटा **शशी,** क्या **स्वामी जी** गाँव के बाहर ही रहेंगे?

शशिनाथ ने कहा— वे तो **'भिक्षा'** करके तुरन्त ही चलते बने।

मौसी ने कहा— अरे, दर्शन भी नहीं मिले! एक तो बहुत दिन के बाद **संन्यासी** को **'भिक्षा'** कराने का अवसर मिला, इस पर यह घाटा कि दर्शन भी नहीं कर सकी!

मौसिया जी ने कहा— बहुत दिन के बाद **संन्यासी** को **'भिक्षा'** देने का अवसर मिला। दर्शन नहीं मिले, तो कोई हर्ज नहीं। हम लोगों के लिए इतना ही बहुत है। पिता जी कहा करते थे कि जिस ब्राह्मण के घर **संन्यासी 'भिक्षा'** करता है, उसके लिए शुभ होता है। मेरे लड़कपन में प्रायः **संन्यासी** आया ही करते थे। उन दिनों वे **काशी** से **हरद्वार** और **हरद्वार** से **काशी** आया-जाया करते थे। अब जान पड़ता है, उन्होंने अपनी यह यात्रा बन्द कर दी है।

इस तरह बातचीत करते भोजन समाप्त हुआ। हाथ-मुँह धोकर **मौसिया जी** अपने पलँग पर जा बैठे।

शशिनाथ भी उन्हीं के पास जाकर एक चारपाई पर बैठ गया। उन्होंने उससे **प्रयागराज** का हाल पूछा। **शशिनाथ** ने रोचक ढङ्ग से संक्षेप में वहाँ का हाल कह सुनाया, जिसे सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उसकी **मौसी** ने तब तक पान लगाकर उन्हें खिलाया। वे आराम करने को लेट गए। यह देखकर **शशिनाथ** दरवाजे चला आया और चौपाल में चारपाई डालकर वह भी आराम करने लगा।

शशिनाथ के आ जाने की खबर गाँव में पहिले ही लग गई थी। अतएव उसके सङ्गी-साथी एक-एक करके आ ही जुटे। साथ ही वे लोग भी एक-एक कर आने लगे, जिन्हें उसकी जरूरत थी। कोई कहता कि 'मेरी बहू को यह शिकायत है।' कोई कहती कि 'मेरा बच्चा दो दिन से दूध नहीं पी रहा है और चौंक-चौंक पड़ता है।' इस प्रकार वे अपना दुखड़ा उससे कहते। वह मधुर ढङ्ग से सबका समाधान करता और कहता कि 'घबड़ाओ नहीं, मैं शाम को आऊँगा, देखकर दवा दूँगा। सब ठीक हो जाएगा।' इधर वह अपने साथियों को **प्रयाग के मेले** की बातें बताता और उनका मनोरञ्जन करता। इस प्रकार बातचीत करते-करते जब शाम होने को आई, तब उसने दवाओं का डब्बा लिया और साथियों के साथ रोगियों को देखने चल पड़ा।

इसी समय **मौसिया जी** भी घर से बाहर निकले थे। उन्होंने साथियों के साथ उसे जाते देखकर कहा—**बेटा शशी,** जल्दी आना। देर न करना, जाड़े की रात है। ठण्ड लग जाने का डर है।

शशिनाथ घूम कर खड़ा हो गया। उसने विनय के साथ कहा— यथा-शक्ति जल्दी ही करूँगा, परन्तु रोगी कई हैं।

मौसिया जी ने कहा— तो ओढ़ने को कुछ लेते जाओ।

शशिनाथ ने कहा— नहीं, मैं ठीक पहने हूँ। आप चिन्ता न करें।

यह कह कर वह साथियों के साथ गली की ओर मुड़ गया।

शशिनाथ के चले जाने पर उसके **मौसिया जी**

अपनी ठण्डाई-बूटी की तैयारी में लगे। आसन डालकर कूँडी-सोंटा लेकर ठण्डाई घोटने लगे। जब वह घुट गई, तब उसकी गोली बनाकर उसे अभिमन्त्रित किया और **'मन्त्र'** पढ़कर उसे पा गए। फिर जल-पान कर तमाखू मलकर उसे खाया और लोटा-डोर लेकर गाँव के बाहर चले गए। शौच आदि से निवृत्त होकर उन्होंने गाँव के बाहर कुएँ पर हाथ-मुँह धोए। फिर पूजा के लिए शुद्ध जल लेकर घर लौट आए। चौपाल में बैठकर वे अब **'सन्ध्योपासन'** करने लगे। इसी समय एक वृद्ध सज्जन उनके द्वार पर आकर खड़े हो गए। वैद्यजी को **'जप'** करते देखकर उन्होंने अपना झोला एक जगह रख दिया और कम्बल डालकर वे उस पर बैठ गए। जब **वैद्य जी** का पूजन समाप्त हुआ, तब उन्होंने **आगन्तुक** से पूछा— आप कहाँ से पधारे हैं?

आगन्तुक ने कहा— इस समय मैं गङ्गा-पार से आ रहा हूँ। गङ्गा पार करने में देर हो गई। यह सोचकर कि इतना दिन नहीं है कि ठीक ठिकाने पहुँच सकूँ। अतएव आपके यहाँ चला आया। आपके पिता के समय मैं प्रायः आया करता था। आपके **जनेऊ** में भी मैं आया था। उसके बाद फिर मैं नहीं आ सका। आप मुझे पहचान नहीं सकेंगे। मैं बहुत अधिक वृद्ध हो गया हूँ, मेरा घर **रामनाथपुर** में है।

वैद्य जी बीच ही में बोल उठे। उन्होंने कहा— आप **पाठक जी** तो नहीं हैं? पण्डितों की गोष्ठी में पिता जी **रामनाथपुर** के **पाठक जी** का नाम लेकर प्रायः प्रशंसा किया करते थे।

वृद्ध सज्जन ने कहा— हाँ, मैं वही हूँ। उनकी मुझ पर बड़ी कृपा थी।

इतने में भीतर से **गृह-स्वामिनी** दीपक लेकर आईं। **वैद्य जी** ने उनके हाथ से दीपक लेकर यथा-स्थान रख दिया। फिर आगे आकर **पाठक जी** के चरण-स्पर्श किए और कहा— आइए, यहाँ भीतर पुवाल पर आपका आसन लगा दूँ।

पाठक जी ने कहा— अच्छी बात है। मैं ठीक किए लेता हूँ। आप मेरे लिए थोड़ा जल लेते आइए।

वैद्य जी भीतर गए। पत्नी ने पूछा— कौन सज्जन आए हैं?

उन्होंने कहा— पिता जी के मित्र हैं। उनके लिए भी भोजन का प्रबन्ध करना, तब तक थोड़ी-सी मिठाई दे दो, उनको जल-पान करा दूँ।

पत्नी ने एक कटोरी में मिठाई लेकर और लोटा-गिलास सहित उन्हें दिया। **वैद्य जी** वह सब लेकर बाहर आए और **पाठक जी** के सामने रख दिया।

पाठक जी ने कहा— अरे, मिठाई की तो कोई जरूरत नहीं थी!

फिर उन्होंने हाथ-पैर धोए और मिठाई खा जल-पान कर आसन पर बैठ गए। **वैद्य जी** भी वहीं उनके पास बैठे।

वैद्य जी ने कहा— आपने यहाँ पधार कर बड़ी कृपा की। आपके दर्शन करके मुझे पिता जी की याद हो आई और उनके समय का चित्र आँखों के सामने खिंच गया, वह भी हम लोगों का एक दिन था।

वृद्ध सज्जन ने कहा— वे बड़ी प्रतापी थे। जितने विद्वान् थे, उतने ही सुजन भी थे। **'चण्डी-क्षेत्र'** में दोनों **'नवरात्रों'** पर हम दोनों एकत्र होते थे। सचमुच ही वे दिन हम लोगों के जीवन के आनन्द-दायक दिन थे। अब वे सङ्गी-साथी नहीं रहे। अब तो मेरा निरानन्द का जीवन है। मारा-मारा फिरता रहता हूँ। संस्कृत का पण्डित ठहरा, कोई क्या पूछे!

वैद्य जी ने कहा— गङ्गा-पार कहाँ गए थे?

पाठक जी ने कहा— इसकी भी एक दुःखद कथा है। एक लड़की है बड़ी सुशील, पढ़ी-लिखी।

मैंने लड़के की भाँति ही उसे संस्कृत की शिक्षा दी है। उसकी माँ ने उसे गृह-कार्य में कुशल किया है। लड़का समझो या लड़की समझो, वही हमारे घर का दीपक है। अब सयानी हो गई है। चार वर्ष से उसके लिए वर खोज रहा हूँ। यदि उपयुक्त वर मिलता है, तो बातचीत नहीं ठीक होती। अधिक लोग **'पाठक'** समझ कर विवाह करने से ही इन्कार कर देते हैं! अनुनय-विनय करने पर जो तैयार भी हो जाते हैं, वे अनाप-शनाप दहेज माँगते हैं और मेरे पास धन है नहीं। गङ्गा-पार अपने एक मित्र के यहाँ गया था। वे मेरे सह-पाठी हैं। उनके यहाँ एक लड़का है। पहले भी गया और इस बार फिर गया। बहुत कुछ कहा-सुना, परन्तु उनका मुँह ही नहीं सीधा होता। दहेज की माँग— यही सङ्कट है। इससे उद्धार का कोई उपाय नहीं दीख रहा है। अब वृद्ध भी हो गया हूँ।

यह कहते-कहते उनका गला भर आया और उनकी सूखी हुई आँखों से टप-टप कर आँसू टपक पड़े।

वैद्य जी ने कहा— **पण्डित जी,** आप दुःख न करें। मैं आपको लड़का बताऊँगा। पढ़ा-लिखा, स्वस्थ, सुन्दर और बहुत ही विनयी। दहेज भी नहीं माँगा जायगा। यह बात दूसरी है कि लड़का आपको पसन्द न हो।

पाठक जी चौंक-सा पड़े। उनकी दुःख की मुद्रा भङ्ग हो गई, हर्षातिरेक से हड़बड़ा कर उन्होंने पूछा— कहाँ है वह लड़का, किसका लड़का है, किस गाँव का है?

वैद्य जी ने कहा— आप गम्भीर मनोभाव से काम लें। इस सम्बन्ध की चर्चा आप रत्ती भर न करें। यहाँ तक न कहें कि आप किस कार्य के लिए घूम रहे हैं। लड़का मेरे घर में ही आपको देखने को मिलेगा। वह मेरे साढ़ू का पुत्र है।

यह कहकर उन्होंने **शशिनाथ** का सारा परिचय उन्हें दे दिया। **पाठक जी** उनकी बातचीत बड़े ध्यान से सुनते रहे। जब **वैद्य जी** चुप हो रहे, तब उन्होंने कहा— मैं कुछ नहीं कहूँगा। मुझे बिना देखे ही लड़का पसन्द आ गया है। लड़की भी आपकी है, लड़का भी आपका है। जो उचित हो, वह आप करें। इस घर से कितनों ही का उद्धार हुआ है। यह **भगवान् की कृपा** है कि आज मेरा भी हो रहा है।

उनका मुख-मण्डल प्रसन्नता से खिल उठा।

वैद्य जी और **पाठक जी** देर तक बातचीत करते रहे। इतने में **शशिनाथ** गाँव के रोगियों को देखकर घर लौटा। उसे आया देखकर **वैद्य जी** ने कहा— **बेटा शशी,** आ गए। आओ, **पाठक जी** को प्रणाम करो। आप मेरे पिता जी के सङ्गियों में से हैं।

वैद्य जी की आज्ञा पाकर **शशिनाथ** चौपाल में चढ़ आया और **पाठक जी** के समीप पहुँचकर विनय-पूर्वक उनके पैर छुए। **'आयुष्मान् भव'** कहकर **पाठक जी** ने उसे आशीर्वाद दिया।

वैद्य जी ने कहा— बेटा, **पाठक जी** के भोजन का प्रबन्ध करो, बहुत देर हो गई है।

'बहुत अच्छा' कहकर **शशिनाथ** भीतर चला गया। उसके चले जाने पर **पाठक जी** ने कहा— अब तो आपके यहाँ मेरा भोजन करना ठीक न होगा। जल-पान आपने करा ही दिया है। भोजन करने की वैसी इच्छा भी नहीं है।

वैद्य जी ने कहा— हम भिन्न-गोत्रीय हैं। फिर आप तो मेरे **'अतिथि'** हैं। आप जैसे विद्वान् को इस प्रकार का विचार नहीं करना चाहिए। फिर यह भी है कि यह बात अभी हमें इतने ही तक रखनी चाहिए।

पाठक जी ने कहा— अच्छी बात है। आपका परामर्श मान्य है, ऐसा ही करूँगा।

इतने में **शशिनाथ** ने भीतर से आकर कहा— भोजन तैयार है।

शशिनाथ की बात सुनकर **वैद्य जी** उठ खड़े हुए। 'चलिए **पाठक जी**'— उन्होंने कहा। **पाठक जी** उठकर उनके पीछे हो गए। भीतर पहुँचने पर **शशिनाथ** ने उनके पैर धुलाए और उन्हें ले जाकर चौके में बिठा दिया। फिर थाली लाकर उनके सामने रख दी। पक्का भोजन देखकर **पाठक जी** ने कहा— यह क्या किया! मैंने तो आपके यहाँ कच्चा भोजन भी किया है।

वैद्य जी ने कहा— ठीक है। आज यही करिए। कल कच्चा कर लीजिएगा।

पाठक जी हँस पड़े। भगवान् को भोग लगाकर उन्होंने भोजन प्रारम्भ किया। भोजन कर चुकने पर हाथ-मुँह धोकर वे बाहर को चले। **शशिनाथ** उन्हें चौपाल तक पहुँचा आया। **पाठक जी** ने उससे कहा— तुम भी जाकर भोजन करो।

शशिनाथ उनकी अनुमति पाकर भीतर चला गया। **वैद्य जी** के साथ वह भी भोजन करने को बैठ गया। भोजन कर चुकने पर वह अपना बिस्तर लेकर बाहर चला गया। **पाठक जी** के पास ही उसने भी अपना बिस्तर लगाया। इधर जब गृह-स्वामिनी **वैद्य जी** को पान देने आई, तब उन्होंने **पाठक जी** का हाल उनसे बताया। सारा हाल सुन चुकने कुछ देर तक सोचती रहीं। फिर उन्होंने कहा— मैं इन **पाठक जी** को जानती हूँ। मैंने इनकी पत्नी को भी देखा है और लड़की को भी। चार-पाँच वर्ष हुए, मैं जब **तिवारीपुर** के **'ब्रह्म-भोज'** में गई थी, तब वहाँ ये लोग भी आए थे। इनकी लड़की ने वहाँ अपनी कार्य-कुशलता से बड़ी प्रशंसा पाई थी। लड़की बड़ी परिश्रमी, विनम्र और सुशील है। पढ़ी-लिखी भी है और सुन्दर है। **शशी** का अच्छा जोड़ होगा। दहेज नहीं मिलेगा, न सही। मैं **शशी** को राजी कर लूँगी। तुम विवाह ठीक कर लो।

यह कहकर वे हँसती हुई भोजन करने को चली गईं।

वैद्य जी चुप हो गए और आराम करने लगे।

दूसरे दिन सबेरा होने पर **पाठक जी** ने **वैद्य जी** से पूछा— मेरे लिए क्या आज्ञा है?

उन्होंने कहा— आप निश्चिन्त रहें। हम लोग तो तैयार हैं, परन्तु लड़के से भी पूछ लूँ। अभी स्नान करने गया है। लौटने पर पूछूँगा।

पाठक जी ने कहा— मैं भी **गङ्गा-स्नान** कर आऊँ।

यह कहकर वे चले गए।

शशिनाथ स्नान करके घर आया, तब उसने **वैद्य जी** से कहा— **रमईपुर** के **ठाकुर गदाधरसिंह** मुझे बुलाने आए हैं। उनका लड़का बीमार है। आज्ञा दें, तो देख आऊँ।

वैद्य जी ने कहा— हाँ, **गदाधरसिंह** बड़े अच्छे आदमी हैं। मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। जरूर जाओ, परन्तु दूर है। कुछ खा-पी लेते, तो अच्छा होता।

शशिनाथ ने कहा— वे जल्दी चलने को कह रहे हैं। लड़का ज्यादा बीमार है। खाने-पीने लगूँगा, तो देर हो जाएगी।

वैद्य जी बोले— परन्तु तुमसे आज मुझे कुछ बातचीत करनी थी।

चकित होकर **शशिनाथ** ने कहा— क्या आज्ञा है?

यह कहता हुआ वह उनके पास जल्दी जाकर खड़ा हो गया।

वैद्य जी धीरे-धीरे कहने लगे— देखो बेटा, तुम अब काफी सयाने हो गए हो। यदि तुम अपने घर में होते, तो तुम्हारा बहुत पहले ही विवाह हो गया होता। अब तुम हमारे यहाँ आ गए हो। हमारा यह कर्तव्य है कि हम तुम्हारा विवाह करें। ये जो **पाठक जी** आए हैं, बड़े विद्वान् सत्पात्र ब्राह्मण हैं। इनके एक कन्या है। तुम्हारी **मौसी** ने उसे देखा भी है। लड़की बड़ी सुशील

और गृह-कार्य-कुशल है। **पाठक जी** दूर के अपने रिश्तेदार भी हैं और मेरे पिता के परिचितों में हैं। हम लोगों को यह घर पसन्द है, परन्तु इस सम्बन्ध में तुम्हारी राय लिये बिना मैं अपना वचन नहीं दे सकता।

शशिनाथ उनकी बातें अब तक खड़ा चुपचाप सुनता रहा, परन्तु राय लेने की बात सुनकर उससे नहीं रहा गया। वह बीच ही में बोल उठा। उसने विनम्रता से कहा— मैं तो आपका दास हूँ और जब तक यहाँ रहने देंगे, तब तक सेवा करता रहूँगा। यही मेरे **'गुरुदेव' का आदेश** है और उन्हीं के आदेश से मैं सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। ऐसी दशा में किसी दास को राय देने का कोई अधिकार नहीं। मैं पूर्ण शक्ति से आदेशों का पालन करना भर जानता हूँ।

यह कहकर उसने उनके चरणों पर अपना सिर रख दिया।

वैद्य जी ने उसे उठाते हुए भरे हुए स्वर में कहा— बेटा, ठीक है, परन्तु तुम दास नहीं हो। जिस दिन से तुम यहाँ आए हो, उसी दिन से हम दोनों ने ही तुम्हें अपने पुत्र के रूप में ग्रहण किया है। तुम इस घर के स्वामी हो। इसी से हम दोनों चाहते हैं कि तुम्हारा विवाह भी जल्दी ही कर डालूँ। ये **पाठक जी** सुपरिचित हैं। इनके यहाँ तुम्हारा विवाह करने का हम दोनों ने निश्चय किया है। अच्छा जाओ, तुम अपनी तैयारी करो।

मौसी उसके जलपान करने के लिए कुछ मिठाई और दूध ले आई, जिसे उसने खाया-पिया और जल्दी-जल्दी कपड़े पहन और दवाओं का डब्बा लेकर वह चलने को तैयार हो गया। उसने **मौसी** और **मौसिया जी** के पैर छुए और जल्दी-जल्दी घर के बाहर चला गया।

वैद्य जी भी अपने स्नान-पूजा में लगे। जब उनकी पूजा समाप्त हो गई, तब तक **पाठक जी** भी आ गए। आते ही उन्होंने कहा— **शशिनाथ** से आपकी बातचीत हुई या नहीं?

वैद्य जी ने कहा— बातचीत क्या करनी थी! यह बात उसके कान में डाल कर उसका मनोभाव भर जानना जरूरी था, सो कर दिया। वह तो मेरे पुत्र के समान है। यह घर-द्वार सब उसी का है।

पाठक जी बोले— तब क्या आज्ञा करते हैं?

वैद्य जी बोले— आपको आज्ञा! विवाह पक्का है। वरीक्षा का रुपया दे दीजिए।

पाठक जी की आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने कहा— ठीक है, आप योग्य पिता के योग्य पुत्र निकले।

यह कहकर उन्होंने एक रुपया निकाल कर उनके हाथ में रख दिया और कहा कि— इसी फाल्गुन में विवाह हो जाना चाहिए। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी की लग्न बहुत अच्छी है। समय भी तैयारी के लिए काफी है। अब मुझे आज्ञा दीजिए।

वैद्य जी ने कहा— भोजन करके दूसरे पहर जाइएगा।

पाठक जी ने हँसते हुए कहा— मेरा पेट भर गया। आपने मेरा उद्धार कर दिया।

यह कहकर उन्होंने अपना सामान सँभाला और **वैद्य जी** को नमस्कार कर जल्दी-जल्दी अपनी राह ली।

इधर **वैद्य जी** ने घर के भीतर जाकर पत्नी से कहा— **विवाह** पक्का हो गया। **वरीक्षा** का यह रुपया लेकर ठीक जगह रख दो, इसका काम पड़ेगा।

वृद्धा पत्नी ने पति के हाथ से रुपया लेकर बड़े प्रसन्न-मन होकर भगवान् को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और कहा— बहुत दिन के बाद हे प्रभु! तुमने यह शुभ दिन दिखाया है।

यह कहती हुई वह रुपया ले जाकर

पूजा-घर में रख आई।

आज **वैद्य जी** और उनकी पत्नी— दोनों ही प्रसन्नता से भरे हुए थे। **वैद्य जी** गम्भीर थे। इससे उनकी प्रसन्नता भीतर-ही-भीतर दबी हुई थी, पर उनकी पत्नी उसे छिपा नहीं पा रही थीं। यहाँ तक कि वे अपनी सुध-बुध भूल-सी गई थीं। भोजन तैयार रखा था और **वैद्य जी** पूजा भी कर चुके थे, परन्तु उन्होंने उनके भोजन की कोई तैयारी नहीं की। यह देखकर **वैद्य जी** ने मुस्करा कर कहा— आज की खुशी में क्या भोजन भी नहीं दोगी?

वृद्धा पत्नी झेंप गई। उसने लाज-भरे स्वर में कहा— ध्यान ही नहीं रहा कि **शशिनाथ** बाहर गया है।

यह कहकर जल्दी-जल्दी रसोई-घर में जाकर भोजन परोसने लगीं और वहीं से पति को बुलाया। **वैद्य जी** जाकर भोजन करने लगे। इसी बीच में पड़ोस के **रामदीन** की माँ उनके घर आई। उसे देखकर **वैद्याइन** ने कहा— दालान में आ जाइए, मैं अभी आती हूँ।

यह कहकर पति से अनुमति लेकर वे पड़ोसिन के पास चली गईं। पड़ोसिन से बातचीत करते हुए उन्होंने उससे **शशिनाथ** का विवाह ठीक हो जाने की बात भी कह दी। इसके बाद उन्होंने पड़ोसिन को विदा किया। इधर **वैद्य जी** भी भोजन कर चुके थे। उन्हें पान देकर वे स्वयं भोजन करने रसोईघर चली गईं। **वैद्य जी** विश्राम करने लगे। उधर पड़ोसिन के द्वारा **शशिनाथ** के विवाह के ठीक हो जाने की बात कुछ देर में सारे गाँव में फैल गई। सन्ध्या समय इष्ट-मित्रों ने उनके पास आकर उन्हें बधाई दी। **वैद्य जी** ने सबको बताया कि कहाँ विवाह ठीक हुआ है और किस तरह कब होगा।

यथा-समय **'फल-दान'** हुआ और **'लगन'** आई। **'फल-दान'** के दिन **वैद्य जी** ने बन्धु-बान्धव आदि को धूम-धाम से खिलाया-पिलाया। विवाह की तिथि आने पर वे भाई-बिरादरी और इष्ट-मित्रों को साथ लेकर बारात सजाकर **पाठक जी** के गाँव पधारे। **पाठक जी** ने यथोचित ढङ्ग से बारात का स्वागत किया और बारातियों को बड़े आदर के साथ ले जाकर ठहराया। ठीक मुहूर्त पर **शशिनाथ** का विवाह सम्पन्न हुआ। तीन दिनों तक **पाठक जी** ने बारातियों को सम्मान-पूर्वक खिलाया-पिलाया। **पाठक जी** के सद्-व्यवहार से सभी लोग बहुत प्रसन्न रहे। अन्त में लड़की को विदा कराकर **वैद्य जी** बारात के साथ खुशी-खुशी अपने गाँव लौट आए।

'नई वधू' का **वैद्य जी** के घर में बड़ा स्वागत किया गया। जब नातेदार और रिश्तेदार चले गए और **वैद्याइन** भर अपने घर में रह गई, तब **'वधू'** को चुपचाप एक कोने में बैठी रहना असह्य हो उठा। उसने अपनी **नई मौसी** से अनुमति लेकर उनके कामों में सहारा देना शुरू किया। सहारा क्या देना शुरू किया, सात ही आठ दिन के भीतर बड़ी चतुराई के साथ घर का सारा काम अपने हाथों में ले लिया। सभी लोग उसकी कार्य-निपुणता, उसका परिश्रम तथा उसका शील-स्वभाव देखकर बहुत अधिक प्रसन्न हुए।

वैद्याइन ने जैसा उसके सम्बन्ध में कहा था, उससे अधिक वह गुणवती निकली। **शशिनाथ** का उसे आदेश था कि **मौसिया जी** और **मौसी** को सब प्रकार से प्रसन्न रखना। उसने उसके आदेश से अधिक उनको प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। वे दोनों तो प्रसन्न हो ही गए थे, जो भी घर आता, **'बहू'** की प्रशंसा करता ही जाता। जैसी आशा थी, **वैद्य जी** के घर में सचमुच ही नए दीपक का प्रकाश फैल रहा था।

इधर **शशिनाथ** का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। उसकी **'चिकित्सा'** और **'ज्योतिष'** के विचार ने उसका चारों ओर नाम कर दिया था। उसको घर में बैठने तक की फुरसत न मिलती थी। आज यहाँ, तो कल वहाँ! दौड़ा-दौड़ा फिरता था! आय भी उसकी बढ़ गई थी। जो भी पाता, **मौसी जी** के चरणों पर लाकर रख देता। वह **'मातृ-सुख'** का अनुभव करता और वे **'पुत्र-सुख'** का अनुभव करतीं।

धर्म-मार्ग पर

१८. अनूठी चिकित्सा का प्रभाव

धीरे-धीरे **'चैत्र का नवरात्र'** समीप आ गया। **'चैत्र की अमावास्या'** के एक दिन पहले त्रिवेदी जी सवारी लेकर आ पहुँचे। उन्होंने **शशिनाथ** से कहा— पिता जी ने बुलाया है। **'शत-चण्डी'** की तैयारी है। बिना आपके यह यज्ञ पूर्ण नहीं होगा।

शशिनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने **मौसिया जी** से सारा हाल जाकर कहा। **वैद्य जी** बोले — तुम तो लोगों के मारे एक क्षण भी घर में बैठने नहीं पाते। अब ये **त्रिवेदी** आए हैं! धर्म का कार्य है। क्या करोगे, जाना ही होगा!

शशिनाथ ने **त्रिवेदी जी** के लिए जलपान की सब सामग्री ली और बाहर आया। उसने कहा— लो भाई, जलपान कर लो। तब तक मैं तैयार होकर आता हूँ।

यह कहकर वह भीतर चला गया। वहाँ वह अपना सामान ठीक करने लगा। **मौसी** अलग भुनभुना रही थीं कि 'दुनियाँ अपने मतलब कीं है। बेचारा लड़का घर में बैठने नहीं पाता।' जब सामान ठीक हो गया, तब उसने **मौसा** और **मौसी** के चरण-स्पर्श किए और अपना सामान लेकर बाहर चला आया। **वैद्य जी** भी उसके पीछे-पीछे बाहर आ गए। **त्रिवेदी जी** ने उनके पैर छुए। उन्होंने कहा— **शशिनाथ** तो यज्ञ में पाठ करेगा नहीं। इसे जल्दी ही लौटा देना। इसके बिना यहाँ बड़ा हर्ज होगा।

त्रिवेदी जी बोले— आप ऐसी अनुमति न दें। हम गुरु जी को दशमी तक रखेंगे। इनके रहे बिना वहाँ का काम पूरा नहीं होगा।

वैद्य जी ने कुछ झुँझला कर कहा— अच्छा भाई, ले जाओ। जो तुम्हें जान पड़े, करो।

वे गाड़ी पर बैठ गए। गाड़ीवान ने गाड़ी चला दी।

आठ बजते-बजते **शशिनाथ त्रिवेदी जी** के गाँव पहुँच गया। जब भरभराती हुई गाड़ी **त्रिवेदी जी** के द्वार पर खड़ी हो गई, तब चौपाल पर बैठे हुए वृद्ध **त्रिवेदी जी** उत्सुकता-पूर्ण दृष्टि से गाड़ी की ओर देखने लगे। **शशिनाथ** गाड़ी से उतर कर उनके पास पहुँचा और उनके चरण-स्पर्श किए, तब उन्होंने कहा— अरे भाई, यह क्या करते हो, आप तो महात्मा हैं!

शशिनाथ ने कहा— मैं तो आपका **शशिनाथ** हूँ। मैं आपका 'आप' नहीं हूँ। मुझे तो आपका आशीर्वाद ही चाहिए।

वृद्ध **त्रिवेदी जी** ने कहा— ठीक कहते हो बेटा! क्यों न हो। तुम्हारे गुरुदेव सचमुच ही बड़े भारी महात्मा हैं, तब तुम क्यों न ऐसे उच्च विचार रखो। (नौकर को सामान रखते देखकर) **शशिनाथ** के शौचादि जाने के लिए पानी यहाँ लाकर रख दो।

शशिनाथ ने कहा— मैं मार्ग में ही शौच से निवृत्त हो चुका हूँ। हाँ, कुछ जल जरूर चाहिए क्योंकि मैं पूजा करूँगा।

वृद्ध **त्रिवेदी जी** ने कहा— छोटे ने **प्रयाग** का सब हाल बताया था। **स्वामी जी** की भी बात बताई थी। **चण्डी-क्षेत्र** में मेरी रसोई में भोजन करने की बात भी कही थी। वे मुझे भली प्रकार याद आ गए। सचमुच ही वे बड़े महात्मा हैं। उस समय वे **चण्डी-क्षेत्र** में दो-तीन दिन तक ठहरे थे। वहाँ के पण्डितों में से कई एक ने उनका सत्सङ्ग किया था। मैंने भी दो-तीन बार उनसे बातचीत की थी, परन्तु उस समय हममें कोई उन्हें नहीं जान सका कि वे **शक्त्युपासक** भी हैं।

नौकर शीघ्र ही जल लाकर रख गया। यह देखकर वृद्ध **त्रिवेदी जी** ने कहा— लो, सब तैयार है, तुम पूजन कर लो।

शशिनाथ अपनी पूजा की तैयारी में लग गया।

इधर गाँव के और कई आदमी वहाँ आ गए थे। वे सब वहाँ बैठकर वृद्ध **त्रिवेदी जी** से बात करने लगे। जब **शशिनाथ** की पूजा समाप्त हो गई, तब **त्रिवेदी जी** ने अपने लड़के से कहा— **छोटे, शशिनाथ** को भीतर लिवा ले जाओ, भोजन तैयार हो गया होगा।

शशिनाथ को उनका पुत्र भीतर लिवा ले गया। वहाँ **शशिनाथ** ने भोजन किया, फिर वह चौपाल में आ गया। अभी तक **त्रिवेदी जी** के पास दो-तीन आदमी बैठे गप-शप कर रहे थे। **शशिनाथ** भी उन्हीं के पास आकर बैठ गया।

वृद्ध **त्रिवेदी जी** ने कहा— भाई, ये लोग नहीं मानते। तुम्हारे शिष्यों की इच्छा है कि इस वर्ष **शत-चण्डी** तुम्हारी ही अध्यक्षता में हो। ये लोग यह भी चाहते हैं कि वह **तान्त्रिक विधि** से ही हो।

शशिनाथ ने कहा— **छोटे** ने मुझसे मार्ग में **शत-चण्डी** की बात बताई थी, परन्तु मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। मेरा तो मत यह है कि जिस प्रकार **शत-चण्डी** आपके यहाँ अब तक होती आई है, उसी विधि से होनी चाहिए। **परम्परा को तोड़ना** मैं ठीक नहीं समझता।

वृद्ध **त्रिवेदी जी** हँस पड़े। उन्होंने कहा— मेरा भी ऐसा ही मत है। अब रहा **तान्त्रिक विधि** से करना, सो मैं उसके विरुद्ध नहीं हूँ। उस विधि से जब चाहे कर सकते हो, परन्तु **कुल की परिपाटी में फेर-फार** नहीं होना चाहिए। अब तुम्हीं अपने इन शिष्यों को समझाओ।

शशिनाथ ने कहा— मार्ग में **छोटे** से मेरी बातचीत हो चुकी है। वे आपके तर्क को समझ गए हैं और आपके विचार के अनुकूल हैं। आपकी आज्ञा के विरुद्ध कोई भी काम नहीं कर सकता। इन लोगों का नया-नया उत्साह है, उसी भाव से अपने सभी काम करने को उत्साहित हो उठते हैं। आप अनुभवी पुरुष हैं। आप परिस्थितियाँ भी जानते हैं। **शास्त्र, कुल-मर्यादा** आदि-आदि बातों के बारे में आपको पूर्ण ज्ञान है। आपके कल्याण-कारी आदेशों को ग्रहण करके ही हम लोग अपने जीवन के कार्यों में अग्रसर हो सकते हैं, तभी हम लोगों का कल्याण होगा, अन्यथा नहीं।

वृद्ध **त्रिवेदी जी** पुलकित हो उठे, उन्होंने कहा— तब हमारे यहाँ **शत-चण्डी** पूर्ववत् ही होगी, यही तुमने भी निश्चय किया है। ऐसा ही होना ठीक होगा, परन्तु तुम्हीं **शत-चण्डी** की अध्यक्षता करना। तुम्हारी अध्यक्षता में यह महत् कार्य और भी उत्तम ढङ्ग से सम्पन्न होगा।

शशिनाथ ने कहा— मेरा आपसे विनम्र अनुरोध है कि जिन पण्डित जी की अध्यक्षता में **शत-चण्डी** अब तक होती रही है, वही अब भी अध्यक्ष हों। मैं भी उसमें रहूँगा। **शत-चण्डी** जैसे महत्त्व-पूर्ण यज्ञ के

अध्यक्ष-पद का भार ग्रहण करना सब किसी का काम नहीं है। कम-से-कम मैं तो उसका अधिकारी भी नहीं हूँ। इसलिए जैसा यहाँ अब तक होता आया है, वैसा ही होने दीजिए।

शशिनाथ की बात पूरी नहीं होने पाई थी कि **छोटे** ने कहा— जान पड़ता है, किसी की मोटर-गाड़ी आ रही है। उसका शब्द तो सुनाई ही पड़ रहा है, प्रकाश भी दिखाई दे रहा है। वह देखो, इधर ही आ रही है।

सभी लोग चकित होकर बाहर की ओर देखने लगे। सचमुच ही मोटर-गाड़ी आ रही थी और उधर ही आ रही थी। बात-की-बात में गाड़ी आकर उनके दरवाजे पर खड़ी हो गई। मोटर से उसके **बड़े भाई** उतरे। उसको आता देखकर वृद्ध **त्रिवेदी जी** चिन्तित-सा हो उठे क्योंकि उसके आने की कोई सूचना नहीं थी। इतने ही में लड़के ने आकर उनके चरण स्पर्श किए। **शशिनाथ** को देखकर — अच्छा, आप भी हैं।

यह कहते हुए उनके भी चरण स्पर्श किए।

वृद्ध **त्रिवेदी जी** ने अपने पुत्र को लक्ष्य करके कहा— बेटा, तुम्हारे आने की कोई सूचना नहीं थी। क्या बात है, जो तुम इस प्रकार यहाँ एकाएक आए हो?

बड़े ने कहा— एक बड़ा जरूरी काम है। वास्तव में मैं **गुरुजी** को बुलाने आया हूँ। बड़ी खुशी की बात है कि **गुरु जी** यहाँ मौजूद हैं, नहीं तो **छोटे** को साथ लेकर मुझे इसी समय **रामपुर** जाना पड़ता। मुझे वहाँ का मार्ग मालूम नहीं था, इससे घर आना पड़ा। यदि मार्ग मालूम होता, तो मैं पहले **रामपुर** ही जाता। यह अच्छा ही हुआ।

वृद्ध **त्रिवेदी जी** ने कहा— क्या बात है? कुशल तो है?

बड़े ने कहा— **सेठ रणछोड़मल** बहुत बीमार हैं। उन्हीं के लिए मैं **गुरु जी** को ले जाने के लिए आया हूँ। मैं इसी समय लौट जाना चाहता हूँ। (**शशिनाथ** की ओर मुँह करके कहा) आपकी क्या आज्ञा है?

शशिनाथ ने कहा— पिता जी का जो आदेश होगा, वह मैं करने को तैयार हूँ। उनको क्या बीमारी है?

बड़े ने कहा— यह सब मार्ग में बताऊँगा। आप चलने का कष्ट स्वीकार करें। हम लोगों के लिए भारी सङ्कट उपस्थित है। मुझे विश्वास है कि आपके पधारने से **सेठजी** के प्राणों की रक्षा हो जाएगी।

वृद्ध **त्रिवेदी जी** बोले— जब यह बात है, तब तो जाना ही पड़ेगा। बेटा **शशिनाथ,** जाओ। तुम तो सदा दूसरों के दुःख दूर करने के लिए तैयार ही रहते हो। **रणछोड़मल जी** हम लोगों के अन्न-दाता हैं। उनके प्राणों की रक्षा अवश्य होनी चाहिए। बेटा, जाओ, खा लो, इधर **शशिनाथ** तैयार हो रहे हैं।

इस पर **बड़े** घर के भीतर चले गए और वहाँ से **छोटे** के हाथ मोटर चलानेवाले के लिए भोजन भेज दिया। **शशिनाथ** को तैयार देखकर **छोटे** ने उनका सामान मोटर पर रख दिया। इतने में **बड़े** भी भीतर से आ गए। उधर मोटरवाला भी भोजन कर चुका था। सब लोगों ने वृद्ध **त्रिवेदी जी** को प्रणाम किया और जल्दी-जल्दी वे मोटर पर सवार हो गए। ड्राइवर ने मोटर चला दी।

मार्ग में **बड़े** ने **सेठ जी** की बीमारी का हाल **शशिनाथ** से बताया और यह भी कहा कि उनके घर के डाक्टर और वैद्य ने एक प्रकार से जवाब दे दिया है कि **सेठ जी** की बीमारी साध्य नहीं है।

शशिनाथ ने कहा— यह तो **संग्रहणी** है। जैसा आपने बताया है, उससे जान पड़ता है कि वह अपने उग्र रूप में है। देखो, चलो। **जगदम्बा** की जो इच्छा होगी, वही होगा। हम लोग तो प्रयत्न भर कर सकते हैं। होता है यह बहुत कठिन रोग।

बड़े ने कहा— क्या आपको भी यही जान पड़ता है कि **सेठ जी** बचेंगे नहीं?

शशिनाथ ने कहा— यह बात मैं कैसे कह सकता हूँ! आपने जो लक्षण बताए हैं, उनके आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि रोगी की दशा चिन्ता-जनक अवश्य है।

मोटर द्रुत गति से चली जा रही थी। बातें करते-करते **बड़े** कुछ ऊँघ गए, परन्तु **शशिनाथ** चुपचाप बैठा रहा। कोई दो बजे के लगभग जब मोटर शहर में पहुँची, तब **बड़े** जाग पड़े।

उन्होंने कहा— हम लोग आ गए।

थोड़ी ही देर के बाद मोटर-गाड़ी **सेठ जी** की कोठी के सामने जाकर खड़ी हो गई। पहरेदार मोटर को देखकर जल्दी-जल्दी उसके पास आया। **बड़े** ने चिन्ता-भरे स्वर में उससे पूछा— **रघुवीर**, कुशल तो है न?

पहरेदार ने कहा— हाँ महाराज, सब कुशल है।

यह सुनकर **बड़े** उतर पड़े, साथ ही **शशिनाथ** भी। **बड़े** ने पहरेदार से कहा— सामान लेते आओ।

और वे दोनों कोठी की ओर बढ़े। पहरेदार ने दरवाजा खोल दिया। कोठी के भीतर जाकर **बड़े** ने जीने का दरवाजा खटखटाया। तुरन्त ही दासी ने आकर दरवाजा खोल दिया। वे दोनों धीरे-धीरे ऊपर चढ़ गए। उसके बाद वे दोनों **सेठ जी** के कमरे में पहुँचे। **सेठानी जी** और परिचारिकाएँ मुस्तैदी के साथ **सेठ जी** की परिचर्या में लगी हुई थीं।

बड़े को देखकर **सेठानी जी** ने कहा— आप ही **वैद्य जी** हैं? आइए, नमस्कार। बैठिए।

शशिनाथ ने धीरे से **सेठानी जी** को अभिवादन किया, पर वह बैठा नहीं बल्कि रोगी के पास जाकर खड़ा हो गया। क्षण भर तक वह रोगी को ध्यान-पूर्वक देखता रहा। रोगी तन्द्रावस्था में था।

फिर उसने रोगी की नाड़ी देखी। जब वह नाड़ी देख चुका, तब उसने **बड़े** की ओर मुँह करके कहा— ठीक है, कोई चिन्ता की बात नहीं है। यदि आज्ञा हो, तो मैं अपनी दवा दूँ। **भगवती** ने चाहा, तो **सेठ जी** की तकलीफ दो-तीन खुराक ही में ठीक हो जाएगी।

सेठानी जी ने बड़े आर्त-स्वर में कहा— इसी के लिए आपको कष्ट दिया है। आज सायं से मैंने कोई दवा नहीं दी है। कोई दवा फायदा ही नहीं कर रही है। शाम को मैंने निश्चय किया कि यदि **वैद्य जी** आएँगे, तो उनकी दवा दी जाएगी, अन्यथा केवल **गङ्गा-जल** ही इन्हें दिया जाएगा।

शशिनाथ ने कुछ नहीं कहा। उसने अपनी पोटली निकाली। फिर एक डिबिया से ३ गोलियाँ निकालीं और **'खलरी'** माँगी। एक परिचारिका ने तुरन्त एक **'खलरी'** लाकर उसे दी। एक गोली पीसकर जल में घोलकर उसने **सेठजी** को पिलाने के लिए परिचारिका को दिया। परिचारिका ने बड़ी सावधानी से दवा **सेठ जी** को पिला दी। उसने शेष दो गोलियाँ **सेठानी जी** को देकर कहा — एक गोली सबेरे दी जाएगी और एक दस बजे। बारह बजे आकर मैं देखूँगा। **जगदम्बा की कृपा** हुई,

तो दोपहर तक **सेठ जी** की आधी तकलीफ दूर हो जाएगी।

यह कह कर वह रोगी के पास जाकर खड़ा हो गया और उसे ध्यान से देखता रहा। इसके बाद उसने कहा— देखिए, रोगी को अब तन्द्रा नहीं है। अब वह सोने लगा है।

उसने **सेठानी जी** की तरफ मुँह करके कहा— आप लोग अब इनको छेड़ें नहीं, अब ये सोएँगे। सबेरे इनकी नींद खुलेगी। इस बीच उन्हें दस्त भी नहीं होंगे। देखते भले ही आप लोग रहें, परन्तु छेड़िएगा नहीं।

यह कह कर वह चुप हो रहा।

सेठानी जी ने कहा— इनको तो दस्त-पर-दस्त हो रहे हैं। बेहोश-सा पड़े रहते हैं! आप कहते हैं कि छेड़िएगा नहीं, ये सो रहे हैं, तो क्या इन्हें बिस्तरे पर ही पाखाना फिरने दूँ।

शशिनाथ ने धीरे से कहा— अभी दस मिनट में आपको स्वयं मालूम हो जाएगा कि **सेठ जी** सो रहे हैं। मेरी बात मानिए। जब तक ये सोते रहेंगे, इन्हें दस्त नहीं होगा। सबेरे जब इनकी नींद खुलेगी, तभी दस्त होगा।

सेठानी जी चकित होकर **वैद्य जी** के मुख की ओर देख रही थीं। उन्होंने कहा— क्या ऐसा?

शशिनाथ ने धीरे से कहा— जी।

सेठानी ने **बड़े** की ओर देखकर कहा— अच्छी बात है। **वैद्य जी** के रहने के लिए मैंने यहीं कोठी में प्रबन्ध करा दिया है। पहरेदार को मालूम है। तुम भी यहीं रह जाओ, सबेरे **सेठ जी** को देखकर ही जाना।

यह कहकर उन्होंने **शशिनाथ** को नमस्कार किया।

शशिनाथ अभिवादन का उत्तर देकर **बड़े** के साथ नीचे उतर आया। नीचे आने पर पहरेदार ने कहा — सामने का कमरा आप लोगों के लिए ठीक किया गया है।

यह कहकर उसने कमरा खोल दिया। दो पलँग बिछे हुए थे। मेज पर जल-पान का सामान भी रखा था।

पहरेदार ने कहा— यह सब आपके लिए रखा है। जल-पान कर लीजिए।

बड़े ने कहा— हम लोग कुछ खाएँगे नहीं, केवल आराम करना चाहते हैं। इसको उठाकर रख दो।

यह कहकर उसने **शशिनाथ** से कहा— आप एक पलँग पर लेट जाइए।

शशिनाथ पलँग पर जाकर बैठ गया और दूसरे पर **बड़े** ने अपना आसन लगाया। थके हुए थे ही, पड़ते ही सो गए।

प्रातः सबसे पहिले **शशिनाथ** ही उठा। वह **भगवत्-स्मरण** कर रहा था, इतने ही में एक परिचारिका आई। उसने **शशिनाथ** से कहा— वैद्य जी, **सेठ जी** जागे हैं। जागने पर उन्हें थोड़ा पाखाना भी हुआ है। चलिए, आपको **सेठानी जी** ने बुलाया है।

शशिनाथ उठ खड़ा हुआ। वह परिचारिका के पीछे हो गया। ऊपर पहुँचने पर जब वह **सेठ जी** के पास पहुँचा, तब **सेठ जी** ने उसे देखकर हाथ जोड़ा और बहुत धीरे से कहा— आपकी दवा से मुझे लाभ हुआ है। कई दिन के बाद मैं कुछ सोया हूँ। आँखों में नींद भरी है। सोने की इच्छा है।

बड़े मधुर स्वर में **शशिनाथ** ने कहा— आप खूब सोइए। आप बहुत जल्दी ठीक होते हैं।

यह कहकर वह उनकी नाड़ी देखने लगा। नाड़ी देख चुकने पर उसने परिचारिका से पूछा कि 'पाखाना कहाँ है?' उसने जाकर टट्टी भी देखी, फिर वह **सेठानी जी** के पास आया। उसने

कहा — 'अब दवा की दूसरी खुराक देनी चाहिए' और एक गोली लेकर **'खरली'** में पीस कर पानी में घोल कर उसने परिचारिका को दिया। परिचारिका ने सावधानी से दवा पिला दी। वह खड़ा होकर फिर रोगी को देखने लगा। आठ-दस मिनट देखने के पश्चात् उसने कहा— **सेठ जी** फिर सो गए हैं। अब दस बजे इनकी नींद खुलेगी। उस समय यह तीसरी गोली दी जाएगी। शायद एक टट्टी भी होगी। रोगी की अवस्था में काफी सुधार हुआ है। जैसा मेरा अनुमान है, **जगदम्बा की कृपा** हुई, तो १२ बजे तक अवस्था बहुत अधिक सुधर जाएगी।

सेठानी जी ने हर्ष-मिश्रित स्वर में कहा— सचमुच बहुत सुधार हुआ है। **वैद्य जी,** आपने चमत्कार किया है। क्या आपकी दवा में कोई नशे की चीज पड़ी है? दवा के पीते ही नींद आ जाती है! क्या बात है?

शशिनाथ ने कहा— इस छोटी-सी गोली में ऐसी कौन नशे की चीज हो सकती है, जो इतनी जल्दी नींद ला दे! एक गोली आपके पास है, खाकर देख लें। इसमें केवल जड़ी-बूटियाँ पड़ी हुई हैं। चमत्कार की कोई बात नहीं। सब **जगदम्बा की कृपा** है। आज्ञा हो, तो मैं चलूँ।

सेठानी जी बोलीं— हाँ, हाँ, आप जाइए। पहरेदार आपकी सेवा में बराबर उपस्थित रहेगा। **बड़े** आपका सब प्रबन्ध कर देंगे। तो भी जिस बात की जरूरत हो, आज्ञा दीजिएगा। किसी बात का सङ्कोच न कीजिएगा।

शशिनाश नीचे उतर आया।

जब वह कमरे में पहुँचा, देखा कि बड़े पलँग पर बैठे ऊँघ रहे हैं। उसने हँसते हुए कहा— क्या बैठकर सोना चाहते हो?

शशिनाथ की बात सुनकर **बड़े** हड़बड़ा कर पलँग से उतर कर नीचे खड़े हो गए और बढ़कर उसके चरण स्पर्श कर कहा— कल बहुत थक गया, आप कहाँ गए थे?

शशिनाथ ने कहा— **सेठ जी** को देखने गया था। उनकी तबियत अच्छी है, दवा खिला आया हूँ। अब उन्हें १२ बजे देखूँगा। शौच जाना चाहता हूँ।

'आइए, मैं आपको बताता हूँ।' यह कहकर उसने उन्हें ले जाकर शौचादि की व्यवस्था बता दी। जब **शशिनाथ** स्नान आदि से छुट्टी पा गया और अपनी पूजा की व्यवस्था में लगा, तब **बड़े** शौचादि के लिए गए। स्नानादि से छुट्टी पाकर वे **सेठ जी** को देखने के लिए गए। वहाँ उन्होंने देखा कि **सेठ जी** सो रहे हैं और **सेठानी जी** प्रसन्न-मन बैठी आराम कर रही हैं। **बड़े** को देखकर उन्होंने कहा— **बड़े,** ये तुम्हारे **वैद्य जी** तो बड़े विलक्षण व्यक्ति जान पड़ते हैं! अभी उम्र भी वैसी नहीं है, परन्तु दवा करने में एक ही हैं। जान पड़ता है, वे इन्हें सुला-सुलाकर ही अच्छा करेंगे। कुछ भी हो, उनका मुझ पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। हाँ, उनकी सुख-व्यवस्था की सारी जिम्मेदारी तुम्हीं पर है। जाओ, तुम भी आज अच्छी तरह विश्राम करो। इधर तुम्हें बहुत परेशानी उठानी पड़ी है।

बड़े ने कहा— परेशानी की कोई बात नहीं। मेरा तो आराम इसी में है कि **सेठजी** जल्दी-से-जल्दी स्वस्थ हो जाएँ। मुझे भी जान पड़ता है कि **गुरु जी** को अपने प्रयत्न में सफलता अवश्य मिलेगी। बहुत अच्छी दवा करते हैं। उनसे आप निश्चिन्त रहिए। बड़े सरल और सुजन हैं। देहात के **सन्तोषी तपस्वी ब्राह्मण** हैं। मैं अब १० बजे ही आऊँगा क्योंकि तभी **सेठ जी** की नींद खुलेगी।

यह कहकर **बड़े** वहाँ से जाने लगे। **सेठानी जी** ने कहा— परन्तु **वैद्य जी** ने कहा है कि बारह बजे देखने आएँगे। अच्छा होता कि वे १० बजे ही आते और दवा अपने हाथ से खिलाते।

बड़े ने कहा— हाँ, मैं उन्हें अपने साथ १० बजे ले आऊँगा।

यह कहकर वे नीचे उतर गए। कमरे में पहुँचकर **बड़े** ने देखा कि **गुरु जी** अभी पूजा ही कर रहे हैं। वे वहाँ बैठकर उनकी पूजा की समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगे। देर तक प्रतीक्षा करने के बाद जब उनकी पूजा समाप्त हुई, **बड़े** ने कहा— यदि आज्ञा हो, तो कुछ जल-पान का प्रबन्ध करूँ।

शशिनाथ ने कहा— तुम तो भाई, मेरी आदतों से परिचित ही हो। मैं तो केवल दो ही बार खाता-पीता हूँ।

बड़े ने कहा— सो तो ठीक है, परन्तु यह तो कुबेर का घर है। कुछ यहाँ के भी नियमों की रक्षा आपको करनी पड़ेगी, अन्यथा ये लोग कुछ-का-कुछ अर्थ लगाएँगे। कुछ-न-कुछ तो जल-पान अवश्य ही करिए।

शशिनाथ ने हँसकर कहा— यदि ऐसी बात है, तो कोई हर्ज नहीं।

बड़े ने दरबान को आवाज दी। वह एक थाल में जल-पान का सामान लेकर उपस्थित हुआ। **शशिनाथ** और **बड़े** ने भी मिष्ठान्न खाकर जल-पान किया। जल-पान के बाद उसने कहा— अब क्या इच्छा है? यहीं आराम करेंगे या शहर देखना चाहते हैं?

शशिनाथ ने कहा— मैं शहर देखने के लिए नहीं आया। मेरा जो काम है, पहले मैं उसी को करूँगा। इसके बाद और कुछ।

'तब फिर अब विश्राम करें। मुझे आज्ञा दें, मैं बाजार हो आऊँ। दूकान भी देखता आऊँ। १० बजते-बजते मैं लौट आऊँगा।'

'तुम जा सकते हो।'

गुरु का आदेश पाकर वह बाहर चले गए। इधर **शशिनाथ** विश्राम करने लगा।

शशिनाथ के तीन ही दिन के उपचार से **सेठ जी** को बहुत लाभ पहुँचा। चौथे दिन उसने दवा बदल दी और पथ्य में भी सुधार कर दिया। उसने कह भी दिया कि आपका रोग अब नहीं रहा। निर्बलता भर है और वह भी पाँच-सात दिन में दूर हो जाएगी। उसकी बात से सभी लोग प्रसन्न हुए। वे देख भी रहे थे कि **सेठ जी** बहुत अच्छी तरह हैं। **सेठानी जी** ने प्रसन्न होकर कहा— यदि आपकी राय हो, तो उन डाक्टरों और वैद्यों को भी दिखा लूँ, जो इनकी दवा करते रहे हैं।

शशिनाथ ने कहा— यह और भी अच्छा होगा।

डाक्टर और वैद्य बुलाए गए। वे नियत समय पर आए। सभी ने एक-एक करके **सेठ जी** को देखा। उनकी दशा को देख-कर उन सबने एक स्वर से कहा— आप तो एकदम चङ्गे हैं! किसकी दवा से आपको लाभ पहुँचा है?

स्वयं **सेठ जी** ने **शशिनाथ** की ओर सङ्केत करते हुए धीरे-धीरे कहा— यह सब इन **वैद्य जी** का चमत्कार है।

डाक्टरों और वैद्यों ने जब **शशिनाथ** की ओर देखा, तब सबके सब झेंप-सा गए, परन्तु उन्होंने उसकी प्रशंसा की और सबने उसे साधुवाद दिया। इसके बाद वे सब अपनी-अपनी फीस लेकर विदा हो गए। **शशिनाथ** भी नीचे अपने कमरे में चला गया। ■

धर्म-मार्ग पर

१६. बाबा जी का सत्सङ्ग

सेठ जी के नीरोग हो जाने की बात्त बाजार में पहले ही फैल गई थी। उनके इष्ट-मित्र और सम्बन्धी **सेठ जी** से मिलने आने लगे। वे **शशिनाथ जी** से भी मिलते। उस दिन सन्ध्या समय बड़े के साथ **रतनलाल** आए। **शशिनाथ** को नमस्कार करने के बाद उन्होंने कहा— आपने मुझे पहिचाना?

शशिनाथ ने कहा— क्यों नहीं पहिचानूँगा! **बाबू भइया** कहाँ हैं?

रतनलाल ने कहा— वे कलकत्ते में हैं। **चाचा जी** को अच्छा करके आपने बड़ा यश कमाया है। सारे शहर में आपके नाम की धूम है। हम लोग तो निराश हो गए थे। तीन दिन से आप इसी कोठी में बन्द हैं। चलिए, आपको बाहर घुमा लाऊँ।

बड़े ने कहा— हाँ **गुरु जी,** चलिए। शहर के बाहर **गङ्गा जी** के किनारे इनका बाग है। इस समय वहाँ एक **महात्मा** भी ठहरे हुए हैं, बड़े अच्छे हैं। उनका भी सत्सङ्ग हो जाएगा।

शशिनाथ ने कहा— अच्छी बात है।

शशिनाथ के स्वीकार करने पर **सेठ जी** उठ खड़े हुए। उनके साथ **बड़े** और **शशिनाथ** हो गए। कोठी के बाहर आने पर वे तीनों मोटर पर सवार होकर चल पड़े। शहर के बाहर पहुँचने पर **सेठ जी** का बाग मिला। उसके भीतर पहुँचने पर वे गाड़ी से उतर गए और इधर-उधर बाग में घूमने लगे। थोड़ी देर के बाद एक आदमी आया। उसने **सेठ जी** से कहा— सरकार, **बाबा जी** आपको बुला रहे हैं।

सेठ जी ने **शशिनाथ** से कहा— आओ, **बाबा जी** के दर्शन करें।

यह कहकर वे चल पड़े। बाग के एक कोने में एक छोटा-सा कमरा था। **बाबा जी** उसी में ठहरे थे। वहाँ पहुँचने पर सबने **बाबा जी** को यथा-विधि प्रणाम किया और उनके आगे पड़ी हुई चटाइयों पर वे बैठ गए। **सेठ जी** ने **शशिनाथ** का परिचय देते हुए कहा— इन्हीं ने **भइया** को अच्छा किया था। **चाचा जी** की दवा करने को आए हैं।

हँसते हुए **बाबा जी** बोले— तो आप **तान्त्रिक** भी हैं और **वैद्य** भी!

शशिनाथ ने विनम्रता से कहा— **स्वामी जी,** आप जैसे महात्माओं की सेवा करके कुछ पा जरूर गया हूँ। पर न **तान्त्रिक** हूँ, न **वैद्य** ही।

हँसते हुए **बाबा जी** फिर बोले— **रतनलाल** ने तो मुझसे कहा था कि आपने भइया को बात-की-बात में अच्छा कर दिया था! सचमुच **'तन्त्र-विद्या'** बड़े काम की है। **काम्य कर्म** की उसके द्वारा अवश्य सिद्धि होती है।

शशिनाथ ने बड़ी विनम्रता से कहा— **'तन्त्र-विद्या'** मैं जानता नहीं हूँ, परन्तु आप जैसे महात्माओं के श्री-मुख से सुना है कि **काम्य-कर्मों** की अपेक्षा उससे **मोक्ष-पद** की कहीं अधिक जल्दी प्राप्ति होती है। **तान्त्रिक साधक जीवन-मुक्त** हो जाता है।

बाबा जी बड़े जोर से हँस पड़े। उन्होंने **सेठ जी** की ओर मुँह करके कहा— कहाँ **तान्त्रिक विद्या** और कहाँ **मोक्ष-पद की प्राप्ति!** यद्यपि कुछ भी कह सकते हैं, तथापि **शाक्तों की सप्तशती** लोक-प्रसिद्ध है, परन्तु उसका उपयोग **काम्य-कर्मों की सिद्धि** के लिए ही लोग करते हैं। इसी प्रकार

मन्त्र-विद्या का भी।

शशिनाथ ने हाथ जोड़कर कहा— विवाद के भाव से नहीं कह रहा हूँ। लोग अपनी भावना के अनुसार किसी वस्तु का सदुपयोग तथा दुरुपयोग करने के लिए स्वतन्त्र हैं, परन्तु वास्तविक वस्तु क्या है? विचार करने के योग्य वही है। **सप्तशती** की बात आपने कही है। उसके श्रोता **सुरथ** और **समाधि** ने देवी की साधना की। उनमें से एक ने **मोक्ष-पद** प्राप्त किया और दूसरे ने अपनी **कामना की पूर्ति**। स्वामी जी महाराज, सदुपयोग तथा दुरुपयोग **साधक की भावना** पर निर्भर करता है। **शाक्त-साधना— भोग** और **मोक्ष** दोनों प्रदान करती है। उसे केवल **काम्य उपासना** बताना **शाक्त-धर्म** के साथ, मेरी तुच्छ बुद्धि में, भारी अन्याय होगा।

बाबा जी अट्टहास-पूर्वक हँस पड़े। उन्होंने कहा— अच्छा, यह बात है! अरे भाई, **तान्त्रिकों में पञ्च-मकार** का ही सेवन तो होता है। ठीक है, **मोक्ष** भी एक **म-कार** है!

यह कहकर वे फिर जोर से हँस पड़े। **बाबा जी** के इस प्रकार के उपहास-मिश्रित कथन से **शशिनाथ** हत-प्रभ नहीं हुआ। उसने पहले ही की भाँति विनम्रता के साथ कहा— **स्वामी जी,** क्या **तान्त्रिकों** में केवल **पञ्च-मकारों** का ही सेवन होता है? क्या वे **यजन-पूजन** आदि कुछ नहीं करते?

बाबा जी ने दृढ़ता के स्वर में कहा— तुम्हीं बताओ। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि **तान्त्रिक** लोग **पञ्च-मकारी** मात्र होते हैं।

शशिनाथ ने धीरे से हँसकर कहा— मैं आपके आगे क्या कह सकता हूँ!

इसी बीच में एक नौकर आया। उसने **सेठ जी** से कहा— **माँ जी** आपको बुला रही हैं।

यह सुनकर **सेठ जी** ने **बड़े** से कहा— आओ, **माँ जी** से मिल आएँ, तब फिर शहर चलें। (**शशिनाथ** की ओर देखकर) आप तब तक **बाबा जी** का सत्सङ्ग कीजिए, हम लोग अभी आते हैं। **माँ जी** आज-कल **नवरात्र** में यहीं बाग में रहती हैं। देख आऊँ, क्या बात है?

उन दोनों के चले जाने पर **बाबा जी** ने **शशिनाथ** से कहा— क्यों भाई, तुमने कहाँ **दीक्षा** पाई? **अभिषेक** भी हुआ है या नहीं?

शशिनाथ चुप रहा। उसे चुप देखकर **बाबा जी** ने धीरे-धीरे हँसते हुए कहा— सङ्कोच क्यों करते हो? मैं भी साधक हूँ। इन लोगों के सामने अति-गुप्त रहने में ही अपना और धर्म दोनों का कल्याण है। इसी से मैं तो प्रगट रूप से **शाक्त-धर्म** के सम्बन्ध में ऐसी ही ऊट-पटाँग बात किया करता हूँ। कहा भी तो है— **'अन्तः शाक्ता बहिः शैवा, सभा-मध्ये च वैष्णवाः।'**

यह कहकर **बाबा जी** हँस पड़े। **शशिनाथ** ने धीरे से कहा— **स्वामी जी, दीक्षा** भी हुई है और **अभिषेक** भी।

यह कहकर उसने उन्हें अपने **गुरुदेव** का परिचय दिया। **बाबा जी** चुपचाप **शशिनाथ** की बात सुनते रहे। फिर थोड़ी देर तक सोचते रहे। एकाएक वे हँस पड़े। उन्होंने कहा— मैं जान गया। उन **महात्मा** के दर्शन मुझे हुए हैं। वे तो **सिद्ध पुरुष** हैं। मैंने उनका सत्सङ्ग किया है। **काशी जी** में **सङ्कटा जी** के मठ में मैं उनके साथ चार दिन तक रहा हूँ। अच्छा, अब यह बताओ कि **अष्टमी के महा-पर्व** पर पूजन करोगे या नहीं?

शशिनाथ ने कहा— **स्वामी जी महाराज,** हमारा तो पूजन इस दिन कुछ अधिक रूप में होगा। क्या आप पधारने की कृपा करेंगे या आपके ही आश्रम में उसकी व्यवस्था की जाए?

बाबा जी ने घबड़ाकर कहा— अरे राम-राम, यहाँ कैसे हो सकेगा! वह बुढ़िया जो यहाँ ठहरी है! फिर यहाँ सब नौकर घोर पशु हैं और वहाँ भी सेठ के घर कैसे आ सकता हूँ! क्या तुम उन लोगों में प्रकट हो?

शशिनाथ ने धीरे से कहा— मैं स्वयं अत्यन्त गुप्त हूँ। **गुरुदेव के आदेश** को कैसे भङ्ग कर सकता हूँ? **सेठ जी** के साथ जो यह दूसरा आदमी है, वह

ब्राह्मण है और मेरा शिष्य है। उसी के यहाँ हमारा नित्य-पूजन गुप्त रीति से होता रहता है। दिन में देवादि-दर्शन के बहाने आप शहर आ जाएँ और हमारे यहाँ ठहर जाएँ।

बाबा जी ने कहा— तुम्हारे यहाँ तुम्हारी पूजा में शहर का और तो कोई शामिल नहीं होगा? मैं आप लोगों का घर कैसे पाऊँगा?

शशिनाथ ने कहा— हम लोग दो ही रहेंगे। शहर के किसी साधक से मेरा परिचय भी नहीं है, न किसी से परिचित होना चाहता हूँ। **अष्टमी** के दिन चौक में **वाराही जी के मन्दिर** में मैं चार बजे तक रहूँगा, वहीं आप दर्शन देने की कृपा करें। वहाँ से हम लोगों का स्थान भी समीप ही है।

बाबा जी ने कहा— ठीक है। मैं प्रयत्न करूँगा।

इतने ही में **सेठ जी** और **बड़े** आ गए। **सेठ** ने **बाबा जी** से कहा— **महाराज,** अब आज आज्ञा दें। अभी बहुत काम करना है। कल फिर सेवा में उपस्थित होऊँगा, किसी प्रकार का आपको कष्ट तो नहीं है।

बाबा जी ने कहा— जब से **माँ जी** आ गई हैं, तब से आराम तो और भी बढ़ गया है। आपके यहाँ— और कष्ट !

यह कहकर वे हँस पड़े। सबने यथा-क्रम **बाबा जी** को प्रणाम किया। वहाँ से बिदा होकर वे गाड़ी पर आ बैठे और शहर की राह ली। राह में **सेठ जी** ने कहा— **बड़े,** आज **बाबा जी** की बातचीत मुझे अच्छी नहीं लगी। वे **गुरु जी** को लक्ष्य करके ही **तान्त्रिकों** पर आक्षेप करते रहे।

बड़े ने कहा— आप ठीक कहते हैं। किसी साधु को इस तरह किसी धर्म पर आक्षेप नहीं करना चाहिए।

शशिनाथ बोला— मैं तो ऐसा नहीं समझता। जो कुछ उन्होंने कहा है, प्रसङ्ग-वश ही कहा है। **तान्त्रिकों** के सम्बन्ध में सभी लोग इसी तरह कहा करते हैं। **बाबा जी** ने भी वही कह दिया।

सेठ जी बोले— वे तो साधारण आदमी नहीं हैं, संन्यासी हैं, उन्हें तो सुनी-सुनाई बात नहीं कहनी चाहिए।

शशिनाथ ने कहा— जन-श्रुति का प्रभाव सब पर पड़ता है।

इस प्रकार बातचीत करते हुए जब गाड़ी कोठी के पास पहुँची, तब यहाँ **बड़े** और **शशिनाथ** उतर पड़े। **सेठ जी** अपने घर चले गए। कोठी के भीतर जाकर **शशिनाथ** ने **सेठ जी** को दवा खिलाई। इसके बाद उसने कहा— अब तो आपकी तबियत बहुत अच्छी है। रात में मेरा अब कोई काम भी नहीं पड़ता। यदि आप आज्ञा दें, तो अब **बड़े** के घर उठ जाऊँ। इस बार मेरी **नवरात्र की पूजा** खण्डित हो गई है। इन तीन दिनों में उसे पूरी कर लेना चाहता हूँ।

सेठ जी प्रसन्नता के साथ बोले— **बड़े** का घर भी मेरा ही घर है। उसके यहाँ **पूजा-पाठ** की विशेष सुविधा होगी। आप खुशी से जा सकते हैं। जब जरूरत होगी, आपको बुलवा लूँगा। साँझ-सबेरे तो आप आएँगे ही।

शशिनाथ बोला— अवश्य।

इसके बाद **शशिनाथ बड़े** के साथ उसके घर चला गया। वहाँ वह अपना **यजन-पूजन** करने लगा। साँझ-सबेरे वह **सेठ जी** को देख लेता था। उनकी दशा शीघ्रता से सुधर रही थी। **अष्टमी** के दिन वह **वाराही जी के मन्दिर** में पूजन करने गया। वह वहाँ चार बजे तक रहा। इसके बाद अपने स्थान को लौटा। जब मन्दिर के बाहर आया, तब उसने देखा कि बागवाले **स्वामी जी** आ रहे हैं। आगे बढ़कर उसने उनको प्रणाम किया और कहा— आप आ गए। मुझ दीन पर बड़ी कृपा की। क्या दर्शन करेंगे?

बाबा जी ने कहा— नहीं, सीधा अपने घर ले चलो।

शशिनाथ ने हाथ के सङ्केत से बताते हुए

कहा— यहीं तो है, आइए।

यह कहकर **शशिनाथ** चल पड़ा। **बाबा जी** भी उसके साथ हो गए। घर पहुँच कर वह उन्हें अपने कमरे में ले गया। वहाँ उसने उनके पैर धोए और एक सुन्दर आसन पर उन्हें बिठाया और कहा — यदि आज्ञा दें, तो कुछ जल-पान के लिये लाऊँ।

बाबा जी बोले— **'व्रत'** से हूँ। **'महा-पर्व'** है न? तुम अपना काम करो। मेरी चिन्ता न करो। यही समझो कि यहाँ अकेले हो, कोई दूसरा नहीं।

यह कहकर वे हँस पड़े। **शशिनाथ** ने भी हँस दिया। फिर वह अपने काम में लग गया। शौच आदि से छुट्टी पाकर **शशिनाथ बाबा जी** के पास आकर बैठ गया और उनसे बातचीत करने लगा। इसी बीच में **बड़े** वहाँ पधारे। उन्होंने **बाबा जी** को देखकर कहा— अच्छा, आप पधारे हैं! बड़ी कृपा की, आज्ञा कीजिए। आपकी क्या सेवा की जाए?

बाबा जी बोले— मैं तो **वैद्य जी** के निमन्त्रण पर आया हूँ।

यह कहकर हँस दिया। **शशिनाथ** ने कहा— हाँ, मैं निमन्त्रण दे आया था। **स्वामी जी** आत्मीय हैं, **कुलाचारी** हैं। उनकी उपस्थिति में आज का पूजन कहीं अधिक सफलता के साथ होगा।

बड़े ने कहा— ऐसा है! यह तो बड़ी प्रसन्नता की बात है। सुना था कि संन्यासियों में **कुलाचारी** होते हैं, परन्तु दर्शन आज पहले ही पहल हुए हैं। कहिए **बाबा जी,** आपके सम्प्रदाय में **कुल-मार्ग** की क्या स्थिति है?

बाबा जी ने कहा— सच तो यह है कि **कुल-मार्ग** गृहस्थों ही का है। हम लोगों ने तो उसे लाचार होकर ग्रहण किया। **भगवान् शङ्कर** ने प्रारम्भ में ही समझ लिया था कि **कोरे ब्रह्म-वाद** से काम नहीं चलेगा। अतएव उन्होंने अपने शिष्यों को **शक्ति की साधना** का उपदेश किया। बौद्धों और जैनों को भी तो अन्त में **शक्ति-मार्ग** का आश्रय लेना पड़ा था। **कोरे सदाचार** और **तर्क** से उनकी भी गाड़ी नहीं चल सकी। यह सब बात **भगवान् शङ्कर** ने ताड़ ली थी। इसी से उन्होंने अपने चारों मठों में **श्री-यन्त्र की स्थापना** कर **भगवती महा-त्रिपुर-सुन्दरी के पूजन और साधन** की व्यवस्था की थी।

बड़े ने कहा— परन्तु **बाबा जी,** आपके संन्यासी लोग जगह-जगह **कुलाचार** की निन्दा ही करते देखे जाते हैं। आप सरीखे कोई- कोई भले ही **कुलाचारी** हों, अधिकांश तो निन्दक ही हैं।

बाबा जी ने कहा— आप ठीक कहते हैं। देश-काल का प्रभाव हमारे संन्यासियों पर भी पड़ा है। दण्ड-धारी संन्यासी तो **कुलाचार** के सर्वथा विरुद्ध हैं। उनमें जो **भगवती की उपासना** करते भी हैं, वे बाह्य यजन बिल्कुल ही नहीं करते। उन्होंने अपने लिए एक अलग पूजा-विधि ही बना ली है। उसे वे **'समय'**-मत कहते हैं।

बड़े ने पूछा— **बाबा जी,** यह **'समय-मत'** क्या है? यह कहाँ से आया?

बाबा जी ने हँसकर कहा— यह भी तन्त्रोक्त ही है। परन्तु इसने जोर पकड़ा है उस समय, जब **'पञ्च-दशी'** के रचयिता **भगवान् शङ्कराचार्य शृङ्गेरी मठ** की गद्दी पर विराजमान थे। इसमें **कुण्डलनी-योग** की ही विशेषता है, परन्तु वह **योग-क्रिया** तो कोई जानता नहीं। हाँ, ये **'समय'**-मतानुयायी **श्री-यन्त्र** को सामने रखकर फूल-अक्षत से उसका **यजन-पूजन** अवश्य किया करते हैं।

बड़े ने कहा— तब तो आपके संन्यासियों में भी **कुल-मार्ग** को कोई स्थान नहीं रहा।

बाबा जी बोले— आप ठीक कहते हैं। दण्ड-हीन संन्यासियों में अधिक समय तक **कुल-मार्ग** का व्यवस्थित रूप से प्रचार रहा, परन्तु अब उनमें भी उसका अभाव हो गया है। जहाँ देखो, उनमें भी मन-मानी की धूम है। संन्यासियों में विरले ही वास्तविक **कुल-मार्गी** मिलेंगे। बात

यह है कि संन्यासी होने के कारण **यजन-पूजन** की उन्हें सुविधा नहीं होती। मैं अपनी ही कहता हूँ। वर्षों के बाद आज **चक्रार्चन** में सम्मिलित होने का अवसर मिल रहा है। **अन्तर्यजन** करके सन्तोष कर लेता हूँ। कोई उपाय ही नहीं है। गृहस्थ साधकों का लोप हो गया है। भगवती की कृपा से आज आप मिल गए। मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ। पूजन देखूँगा और प्रसाद ग्रहण करूँगा।

शशिनाथ ने कहा— नहीं **स्वामी जी,** आप ही यजन करें। आज के यजन के आप ही **चक्रेश्वर** बनें।

बाबा जी ने कहा— यह ठीक न होगा। **नवरात्र का पूजन** आप ही लोगों को करना चाहिए। यदि आप लोग चाहेंगे, तो किसी दिन आकर मैं भी पूजा कर लूँगा।

शशिनाथ ने कहा— आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु प्रार्थना है कि **दशमी** को पधारने का कष्ट करें।

बाबा जी ने कहा— अवश्य आऊँगा। परन्तु हाँ, उस दिन तो मेला-ठेला होगा।

शशिनाथ ने कहा— हमारा मेला यही है। आप अवश्य आने की कृपा करें।

बड़े ने कहा— आपने अभी देश-काल के प्रभाव की बात कही थी, वह समझ में नहीं आई।

बाबा जी हँस पड़े।

वे बोले— आप कलकत्ते के **दक्षिणेश्वर** चले जाएँ। जगत्-प्रसिद्ध **रामकृष्ण परमहंस** का वह स्थान है। वहाँ **आद्या की प्रतिमा** स्थापित है, परन्तु उसका पूजन **दक्षिणाचार** से होता है। **परमहंस जी** ने अपने यहाँ इसी आचार का प्रचलन किया। उधर उनके शिष्य **स्वामी विवेकानन्द** के **बेलूर-मठ** के संन्यासियों में **ब्रह्म-वादी** भी हैं और **वीराचारी** भी। यह सब क्या है? देश-काल का प्रभाव नहीं तो और क्या? कुछ दिनों से एक महात्मा **माँ तारा** की उपासना का प्रचार कर रहे हैं और सो भी विशुद्ध **वैष्णवाचार** के रूप में! यह सब देश-काल का प्रभाव है। **आद्या, तारा** आदि महा-विद्याओं का यजन-पूजन **वीराचार** से ही होता है, शास्त्र का ऐसा ही मत है, परन्तु आज के महात्मा लोग देश-काल के प्रभाव में आकर मन-मानी कर रहे हैं। वास्तव में यह धर्म-ग्लानि का काल है। फलतः सर्वत्र अव्यवस्था ही दिखाई दे रही है।

शशिनाथ बोला— हाँ **स्वामी जी,** आप जो कह रहे हैं, ठीक है। हमारा अपना मार्ग भी छिन्न-भिन्न हो गया है, उसका कोई सङ्गठन नहीं।

बाबा जी ने कहा— आप सङ्गठन की बात कहते हैं! मैं तो यह कहूँगा कि हम लोग तो अपना **कुलाचार** ही भूल गए हैं, केवल उसकी लकीर भर पीटते हैं। मैं पूर्वी वङ्ग के नोवाखाली गया था। वहाँ **दश महा-विद्या-सिद्ध सर्वानन्द** की **काली माई** के दर्शन किए। उस स्थान के साधकों का सत्सङ्ग भी किया। वहाँ का हाल देख कर मैं तो रो पड़ा। **यजन-पूजन** की कौन कहे, कोई **तर्पण** तथा **तत्त्व-शुद्धि** करना तक नहीं जानता। हाँ, **बिन्दु-स्वीकार** करना सभी जानते हैं और अच्छी तरह जानते हैं! मैं बहुत घूमा हूँ और जहाँ-जहाँ गया हूँ, वहाँ धर्म के नाम पर होनेवाले अनाचार के ही दर्शन हुए।

बड़े ने कहा— तो **बाबा जी,** आपने इस दुरवस्था के सुधारने के सम्बन्ध में भी कभी कुछ विचार किया है?

बाबा जी ने हँसकर कहा— यह सब काम तो बड़े लोगों का है। उस **त्रिगुणात्मिका प्रकृति भवानी** से वही टक्कर ले सकते हैं। मैं तो एक क्षुद्र प्राणी हूँ। उसी के प्रवाह में बहते रहने में अपना कल्याण मानता हूँ। बन्द करो यह पचड़ा। चलो, **माँ का यजन-पूजन** हो।

यह कहकर वे हँस पड़े।

शशिनाथ ने **बड़े** की ओर देखकर कहा— अभी कितनी देर है?

बड़े बोले— तैयारी सब हो गई है। आइए,

हम सब लोग चलें।

यह कह कर वह उठ खड़ा हुआ। उसके साथ **बाबा जी** और **शशिनाथ** हो गए। घर के भीतर जाकर उन सब लोगों ने हाथ-पैर धोएं और उन्होंने **पूजा-घर** में प्रवेश किया। एक छोटा-सा कमरा था, बहुत ही सादे ढङ्ग से पूजोपकरणों से सुसज्जित। **बाबा जी** को **बड़े** ने एक सुन्दर आसन पर आसीन किया। **शशिनाथ** अपने पूजन में लगा। पूजा प्रारम्भ हुई। **बड़े** यथा समय आवश्यक पूजा-सामग्री उपस्थित करते जाते थे। उनका छोटा भाई भी उनके इस काम में यथा-आवश्यक सहायता करता जाता था। यथा-समय पूजा पूर्ण हुई। उसकी पत्नी और बहन ने भी आकर **नीराजन** और **पुष्पाञ्जलि** में भाग लिया। **शक्ति-पूजन** और **वीर-पूजन** हो चुकने पर सब लोग **तर्पण** और **तत्त्व-शुद्धि** करके प्रसाद ग्रहण करने लगे। जब वे सब प्रसाद ग्रहण कर चुके, तब पूजा का **विसर्जन** हो गया।

बाबा जी ने कहा— भाई, तुम तो बड़ी सुन्दर पूजा करते हो। क्यों न हो? तुम्हारे **गुरुदेव** तो **साक्षात् शिव** ही हैं। उन्हीं का प्रसाद है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि तुम्हारा ऐसा ही क्रम बना रहा, तो तुम्हारा तो कल्याण होगा ही, अन्य लोगों का भी होगा, साथ ही **कुल-धर्म** की भी अभिवृद्धि होगी।

शशिनाथ ने हाथ जोड़कर कहा— आप इस प्रकार का आशीर्वाद भर ही न दीजिए, इस महत्-कार्य में हम लोगों की सहायता भी करें। (**बड़े** की ओर मुँह करके) इनका परिवार परम्परा से **कुल-धर्मानुयायी** है। यदि आप जैसे महात्मा का सहयोग इन लोगों को प्राप्त हो, तो बहुत अधिक **लोक-कल्याण** हो सकता है।

यह कहकर उसने **त्रिवेदी** लोगों का परिचय **बाबा जी** को दिया।

बाबा जी बोले— अच्छा, मैं जान गया। **चण्डी-क्षेत्र** में मैं रहा हूँ। अवश्य उनसे भेंट हुई होगी। बहुत दिनों की बात है, इससे ठीक-ठीक याद नहीं पड़ता। यदि उस ओर जाने का अवसर मिला, तो अवश्य (**बड़े** की ओर मुँह करके) तुम लोगों को कष्ट दूँगा।

यह कहकर **बाबा जी** उठ खड़े हुए।

उन्होंने कहा— अब चलना चाहिए। **'यथा-सुखं विहरेत्'**।

यह कहकर वे धीरे से हँस पड़े।

बड़े ने कहा— तो क्या आप स्थान को जाएँगे?

बाबा जी बोले— अवश्य।

बड़े ने कहा— चलिए, आपके लिए सवारी का प्रबन्ध कर दूँ।

बाबा जी हँसकर बोले— नहीं भाई, पद्धति कहती है कि हम लोगों को चोर की तरह विचरण करना चाहिए।

इतने में **बड़े** के छोटे भाई ने दरवाजा खोला और वे सब बाहर आ गए।

बड़े ने कहा— तो आप अकेले इस अवस्था में कैसे जाएँगे?

आगे पैर बढ़ाते हुए **बाबा जी** ने कहा— आप लोग निश्चिन्त रहें। मैं बड़े मजे में पहुँच जाऊँगा।

सब लोगों ने उनको प्रणाम किया और **बाबा जी** चल पड़े। ठीक उसी समय घड़ी ने साढ़े तीन की घण्टी बजाई। भीतर आकर **बड़े** ने दरवाजा बन्द कर लिया। वे सब लोग विश्राम करने को चले गए।

■

धर्म-मार्ग पर

२०. सेठानी जी का स्नेह

दूसरे दिन **शशिनाथ** नित्य की भाँति **सेठ जी** को देखने के लिए गया। जब वह **सेठ जी** के कमरे में घुसा, वे उसे अकेले ही बैठे दिखाई दिए। उसे आता देखकर **सेठ जी** ने कहा— आओ, आओ। मैं तो तुम्हारी राह ही देख रहा था।

पलँग के सामने रखी हुई कुर्सी पर बैठते हुए घबराहट के स्वर में **शशिनाथ** ने पूछा— क्या आज्ञा है? कुशल तो है?

मुस्कराहट के साथ **सेठ जी** ने कहा— जहाँ तुम रहोगे, कुशल क्यों न होगा। अच्छा भाई, यह तो बताओ कि अब मुझे कब स्नान करने दोगे, कब यथा-रुचि भोजन करने दोगे?

शशिनाथ ने कहा— यह सब आपकी इच्छा पर निर्भर है।

कुछ झुँझलाहट के साथ **सेठ जी** ने कहा— यह तो खूब कही? मैं तो तुम्हारी व्यवस्था पर चल रहा हूँ। जो कहते हो, उसी के अनुसार कर रहा हूँ।

शशिनाथ ने धीरे से कहा— ऐसा नहीं है। मैंने तो तभी कह दिया था कि अब आप पूर्ण-रूप से निरोग हैं और स्वेच्छानुसार खा-पी सकते हैं, परन्तु **चाची जी** ने कहा कि जल्दी करने की कोई जरूरत नहीं है।

इतने में ही **सेठानी जी** ने कमरे में प्रवेश किया। उन्हें देखकर **सेठ जी** ने व्यङ्ग के स्वर में कहा— अच्छा तो यह आप हैं, जो मुझे अब तक रोगी बनाए हुए भूखों मार रही हैं!

कुर्सी पर बैठती हुई **सेठानी जी** ने धीरे से कहा— दूध का जला हुआ माठा फूँक-फूँक कर पीता है। **शशिनाथ** ने तभी मुझसे कह दिया था कि आप पूर्ण-रूप से निरोग हैं और यथा-रुचि स्नान-भोजन कर सकते हैं, परन्तु मैंने परहेज से ही रखना मुनासिब समझा। फिर आपके स्नान का मुहूर्त भी नहीं बनता था। कल मुहूर्त है। यथा-विधि स्नान-भोजन करिए।

सेठ जी ने हँसकर कहा— तुम्हारा मुहूर्त तो जहाँ देखो, तहाँ आगे-आगे चलता है!

सेठानी जी ने धीरे से कहा— क्या करें! हम तो मर्दों की तरह धर्म-कर्म की बातें छोड़ने को तैयार नहीं।

इतने में **बड़े** भी आ गए। वे **सेठ जी** से बाजार की बातचीत करने लगे। अवसर देखकर **शशिनाथ** ने कहा— **चाचा जी,** भगवान् की कृपा से आप निरोग हो गए हैं। मुझे घर जाने की आज्ञा दीजिए। घर में बूढ़े **मौसिया जी** हैं। मेरे वहाँ न रहने से उन्हें बड़ा कष्ट मिल रहा होगा।

सेठ जी ने कहा— 'भाई, आज्ञा देना तो तुम्हारी **चाची जी** का काम है। उन्हीं से कहो, सुनो।' यह कहकर वे **सेठानी जी** की ओर देखने लगे।

सेठानी जी ने कहा— 'नहीं-नहीं, अभी नहीं जाने दूँगी।' यह कहकर उन्होंने अपनी थैली खोली और उससे दो नोट निकाल कर **बड़े** को देते हुए बोलीं — ये रुपए **मौसिया जी** के पास भेज देना और लिख देना कि अभी कुछ समय तक **शशिनाथ** नहीं आ सकेगा।

सेठानी जी के मुख-मण्डल पर उस समय अपनेपन का जो भाव झलक उठा था, उसका प्रभाव **शशिनाथ** पर ऐसा पड़ा कि इच्छा होते हुए भी वह कुछ नहीं कह सका।

इसके बाद इधर-उधर की बातें होने लगीं। अन्त में **बड़े** ने कहा— 'आज बाजार में अधिक काम है।' यह कह कर वह उठ खड़ा हुआ।

सेठानी जी ने कहा— कल का भी काम आज ही कर लेना। **मुनीम जी** को तुम जानते ही हो, वे

अपने मन की करने लगते हैं। तुम्हारे बिना मेरा काम नहीं चलेगा।

बड़े ने कहा— 'कल का सारा प्रबन्ध मैं कर चुका हूँ। तो भी ठीक आठ बजे मैं यहाँ आ जाऊँगा। आप निश्चिन्त रहें।' यह कहकर वह वहाँ से चल पड़ा। **शशिनाथ** भी उसके साथ हो लिया।

कोठी के बाहर आने पर **शशिनाथ** ने **बड़े** से कहा— मैं कल ही घर को लिख चुका हूँ कि द्वादशी तक घर के लिए यहाँ से प्रस्थान करूँगा। परन्तु **चाची जी** ने बड़ा अड़ङ्गा लगा दिया।

बड़े ने कहा— **चाजी जी** बड़ी समझदार हैं। उनका अवश्य कोई जरूरी काम होगा। तभी उन्होंने आपको रोका है। ये दो सौ रुपए उन्होंने दिए हैं। इनके पहुँचने से **मौसिया जी** प्रसन्न ही होंगे।

शशिनाथ ने कहा— सो तो तुम ठीक कहते हो, परन्तु धनार्जन करना ही तो मेरा एक-मात्र उद्देश्य नहीं है।

बड़े ने विनम्रता से कहा— सो तो मैं जानता हूँ। इसके साथ यह भी जानता हूँ कि यदि आपके पास पर्याप्त मात्रा में धन हो जाएगा, तो आप अपने उस उद्देश्य की पूर्ति कहीं अधिक सरलता से कर सकेंगे। इसे आप **गुरुदेव** की ही कृपा समझें कि आप यहाँ एक ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क में आ गए हैं, जिनके प्रभाव से कुछ ही काल के भीतर पर्याप्त मात्रा में धन तो प्राप्त हो ही जाएगा, साथ ही ऐसे व्यक्तियों से परिचय भी हो जाएगा, जिनमें से आश्चर्य नहीं कुछ ऐसे भी मिल जाएँ, जो आपके अन्य उद्देश्य की पूर्ति में सहायक बन सकें।

शशिनाथ बड़े ध्यान से **बड़े** की बात सुनता रहा। उनके इस कथन पर कोई टीका-टिप्पणी नहीं की। घर तक पहुँचाकर **बड़े** ने बाजार की राह ली। उधर **शशिनाथ** ने घर में प्रवेश किया। वह प्रसन्न नहीं था। घर जाने का उसका उत्साह भङ्ग जो हो गया था। वह अपने कमरे में जाकर पड़ रहा, किन्तु थोड़ी ही देर के बाद वह उठकर बैठ गया। उसने अपने मन में कहा कि 'यह कायरता मुझमें कहाँ से आ घुसी! **गुरु-देव** ने तो मुझे **कर्तव्य-निष्ठ होने का आदेश** दिया था।' ऐसा विचार आते ही वह मन-ही-मन **गुरु-देव का स्मरण** करने लगा। उसके मन का सारा विषाद थोड़ी ही देर में आप-ही-आप दूर हो गया। उसमें उसकी पहले जैसे ही सजीवता, प्रसन्नता, सावधानता फिर आ गई।

बड़े **शशिनाथ** के पास उस समय पहुँचे, जब पूजा समाप्त करके वह अपने आसन पर आ बैठा था। उन्होंने कहा— **गुरु जी,** पूजा हो गई। आज्ञा हो, तो जल-पान का सामान ले आऊँ। हम लोगों को **चाचा जी** के यहाँ चलना है।

शशिनाथ ने कहा— जल-पान नहीं करूँगा, न तुम्हारे साथ **चाचा जी** के यहाँ ही चलूँगा। वहाँ बैठे-बैठे जी ऊबेगा।

बड़े ने कहा— 'अच्छी बात है। आप यहीं विश्राम करें। भोजन के समय मैं आपको लिवा ले जाऊँगा।' यह कह कर **बड़े** जल्दी-जल्दी घर से बाहर हो गए।

दशमी का मुहूर्त था। **सेठ जी** के घर में बड़ी चहल-पहल थी। उनकी **पत्नी** ने उस दिन के लिए बड़ा आयोजन कर रखा था। ठीक मुहूर्त आने पर उन्होंने **सेठ जी** को **गो-दान-पूर्वक स्नान** कराया। फिर पूजा-घर में **ठाकुर जी** की उनसे पूजा करवाई गई।

वहाँ से बाहर आकर **नव-दुर्गा-रूपी नौ कुमारिकाओं** का उन्होंने पूजन किया। उनके भोजन कर चुकने पर वस्त्राभूषण देकर उन्हें विदा किया। फिर **ग्यारह रुद्र-रूप ग्यारह वेद-पाठी ब्राह्मणों** का उन्होंने पूजन किया। उनके भोजन कर चुकने पर उन्हें वस्त्र और दक्षिणा देकर उन्हें सम्मान-पूर्वक विदा किया। **बड़े** के साथ **शशिनाथ** के आने पर **सेठानी जी** ने आदमी भेजकर उसे तभी बुला लिया था। वह यह सारा कृत्य बड़े ध्यान से देखता रहा। वह आज ही इस बात का अच्छी तरह अनुभव कर सका कि **सेठ जी** और उनकी **पत्नी**— दोनों ही पूर्ण-रूप से आस्तिक ही नहीं, किन्तु **सच्चे भगवद्-भक्त** भी हैं। **वेद-पाठी ब्राह्मणों** से उसकी बातचीत भी हुई थी। उनमें से दो-एक ने यह भी कहा कि 'हम लोग आपसे घर पर मिलना चाहते हैं।' उसने उनसे कहा कि 'नहीं-नहीं, मैं स्वयं आकर आपके दर्शन करूँगा।' ब्राह्मणों के चले जाने पर **सेठ जी** बैठकर सुस्ताने लगे।

शशिनाथ ने कहा— पहले ही दिन आपको

बहुत काम करना पड़ गया। अच्छा है, थोड़ा सुस्ता लें, तब भोजन करें।

सेठ जी बोले— तुम्हारी दवा गजब की है। मैं जरा भी नहीं थका। भूख भी लगी है, परन्तु अभी भीतर **सौभाग्यवती देवियों का पूजन** हो रहा है। उसके बाद ही हम लोगों को खाना मिलेगा।

सेठ जी यह कह ही रहे थे कि वहाँ **बड़े** आ गए। उन्होंने कहा— **चाचा जी,** चलिए। वहाँ का सब काम समाप्त हो गया है। अब हमी लोग रह गए हैं।

सेठ जी उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा— तुमने अपने **गुरु जी** को नहीं पूछा।

यह कहते हुए उन्होंने हँसकर **शशिनाथ** से कहा कि 'चलिए **वैद्य जी**!'

शशिनाथ बिना कुछ कहे हुए उनके साथ हो गए। **सेठानी जी** ने बड़े उल्लास के साथ उन तीनों को ले जाकर भीतर बिठाया और अपने हाथ से ही सजाया थाल लाकर पहले **शशिनाथ** के आगे, फिर **बड़े,** फिर अपने **पति** के आगे रखा। इसके बाद बड़े मृदुल स्वर में कहा 'आप लोग भोजन करें।'

जब वे लोग भोजन करने लगे, तब **सेठानी जी** अपने **पति** से बातें भी करती जाती थीं। इसी सिलसिले में उन्होंने कहा कि— **शशिनाथ** के लिए कोई मकान ठीक हो जाना चाहिए, जिससे वह अपनी **पत्नी** को यहाँ लाकर आराम से रहे।

सेठ जी बोले— अपने ही कई मकान हैं। देख ले, जो पसन्द हो, उसे खाली करवा दूँ।

सेठानी जी ने कहा— तो **शशिनाथ, बड़े** को साथ लेकर कोई मकान अपने मन का चुन लो। वह तुम्हारे लिए खाली करवा दिया जाए।

शशिनाथ ने कहा— **चाची जी,** यह आपकी बड़ी कृपा है, परन्तु एक कठिनाई है। मेरे **मौसिया जी** और **मौसी जी** दोनों ही वृद्ध हैं। हममें से किसी एक का उनके पास रहना बहुत जरूरी है।

सेठानी जी ने कहा— धन्य हो **शशिनाथ!** तुम्हारा विचार बहुत ठीक है। तब भी तुम्हारा यहाँ अपना एक मकान अलग होना बहुत जरूरी है। **बड़े,** तुम्हारे ऊपर इसका भार है। जल्दी ही मकान ठीक हो जाना चाहिए।

इसी तरह की बातचीत में उन लोगों का भोजन समाप्त हुआ और वे लोग हाथ-मुँह धोकर बाहर की बैठक में आकर आराम करने लगे।

कुछ ही देर बाद तश्तरी में पान लिए हुए **सेठानी जी** भी वहीं आ गईं। **शशिनाथ** के आगे तश्तरी रखते हुए उन्होंने **सेठ जी** से कहा— आपका पलँग तो आपके कमरे में लगा हुआ है। यहाँ आप कैसे चले आए?

सेठ जी ने कहा— अब मैं भला-चङ्गा हूँ। जब से भोजन किया है, मुझमें विलक्षण स्फूर्ति आ गई है। फिर आज दूकान जाने का मुहूर्त है। पान खाकर दूकान जा रहा हूँ।

सेठानी जी ने कहा— नहीं, नहीं। आज ही तो भोजन किया है। आज ही से दूकान जाना शुरू करोगे, यह ठीक नहीं है। चार-पाँच दिन और आराम कर लो। उसके बाद काम-काज शुरू करना।

सेठ जी ने पान खाते हुए कहा— नहीं, नहीं। मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। तुम्हारी बात सुनते ही मैं घबड़ा उठा हूँ। तुम चार-पाँच दिन की बात कहती हो! मैं एक दिन में बेकार पड़ा-पड़ा ऊब कर मर जाऊँगा। मैं एकदम अच्छा हूँ। न मानो, तो अपने **शशिनाथ** से पूछ लो।

सेठानी जी चुपचाप **शशिनाथ** की ओर देखने लगीं। प्रश्न के भाव से उन्हें अपनी ओर देखते हुए पाकर **शशिनाथ** ने कहा— **चाचा जी** अब पूर्ण रूप से अच्छे हैं। वे चाहे जहाँ आ-जा सकते हैं। पहले की भाँति अपना सब काम-काज कर सकते हैं। आप किसी तरह की चिन्ता न कीजिए। आज **दशमी** है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि अगले साल की इसी **दशमी** तक के बीच में यदि कभी **चाचा जी** का क्षण भर के लिए सिर भी दुख जाए, तो उस दिन से मैं दवा करना ही छोड़ दूँगा।

सेठानी जी ने प्रसन्नता से कहा— जब **वैद्यराज** ही ऐसा कहते हैं, जब उन्होंने आपको सब तरह से छुट्टी दे दी है, तब आप स्वतन्त्र हैं।

यह कहकर वे भीतर चली गईं।

■

धर्म-मार्ग पर

२१. शशिनाथ की उदार भावना

इधर **बड़े** ने **सेठ जी** के कहने पर मोटर मँगवाई। मोटर के आ जाने पर उन सबको साथ लिए हुए **सेठ जी** मोटर पर जा बैठे। थोड़ी ही देर बाद **सेठ जी** दूकान पर जा पहुँचे। मोटर से उतर कर वे अपनी गद्दी पर गए। **बड़े** और **मुनीम जी** ने आकर उनकी निछावर की। फिर वे बैठकर कारबार की बात करने लगे। इसी बीच में एक और कर्मचारी वहाँ पहुँच गए। इनको देखकर **सेठ जी** ने **मुनीम जी** से पूछा—हाईकोर्ट वाले मुकदमें का क्या हाल है?

मुनीम जी ने कहा— **शर्मा जी** आज ही लौटे हैं। ये तो निराशा की बात कहते हैं। इनका कहना है कि अपना वकील मुकदमें की जुम्मेदारी नहीं लेता है।

सेठ जी बोले— साफ यह क्यों नहीं कहते कि मुकदमा हार जाएगा। डेढ़ लाख की चपत पड़ेगी।

इस तरह वे **मुनीम जी** से तथा अन्य आए हुए कर्मचारियों से दूकान की तथा कारबार की बातचीत करते रहे। कुछ लोगों ने उन्हें कागज-पत्र भी दिखलाए। उन्हें भी देखा-भाला। कोई डेढ़ घण्टे वे बड़े ध्यान के साथ दूकान का काम देखते रहे। इसके बाद उन्होंने **शशिनाथ** से कहा— तुम्हारा तो जी ऊब गया होगा! कहो तो, चलें तुम्हें बाग घुमा लाएँ।

शशिनाथ ने कहा— आज मैं बाग नहीं चल सकूँगा। मुझे पण्डित जी के यहाँ जाना है। मैंने उनसे वादा किया है।

सेठ जी बोले— बड़े, तुम तो इनके साथ जाओगे न? मोटर बाहर खड़ी है, उसी से चले जाओ।

शशिनाथ ने कहा— नहीं चाचा जी, हम लोग पैदल ही जाएँगे।

यह कह वह उठ खड़ा हुआ। उसके साथ बड़े भी। और वे दोनों धीरे-धीरे दूकान से बाहर चले गए।

दूकान से उतर कर सड़क पार कर बड़े एक गली में घुसने लगे, तब **शशिनाथ** ने कहा— इधर कहाँ जा रहे हो?

बड़े ने कहा— सड़क से बड़ा चक्कर पड़ेगा। गलियों से हम लोग बहुत जल्दी पहुँच जाएँगे।

यह कहकर वे आगे-आगे बढ़े। **शशिनाथ** ने उनका अनुसरण किया।

टेढ़ी-मेढ़ी गलियों से होते हुए वे अन्त में एक ऐसे मुहल्ले में पहुँचे, जिसमें शहरपन का बिलकुल अभाव दिखाई दिया।

शशिनाथ ने कहा— हम कहाँ आ गए? यह कैसा मुहल्ला है!

बड़े ने कहा— हम शहर के किनारे पहुँच गए हैं। यह ब्राह्मणों का महल्ला है। इसे **वेदिया टोला** कहते हैं।

शशिनाथ ने कहा— ठीक है, ब्राह्मणों की ऐसी ही बस्ती होनी चाहिए। यहाँ के छोटे-छोटे कच्चे-पक्के सारे ढङ्ग के मकान भी यही बताते हैं कि यहाँ ब्राह्मण ही रहते होंगे।

इतने में **बड़े** उस महल्ले की एक खुली जगह में पहुँचे। वहीं एक तखत पर बैठे हुए एक वृद्ध सज्जन को देखकर **बड़े** ने कहा— हम लोग आ गए। देखिए, **शास्त्री जी** बैठे हैं।

शास्त्री जी बैठे कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। जब ये दोनों उनके समीप पहुँचे, तब उनके पैरों की

आहट पाकर **शास्त्री जी** ने उनकी ओर देखा। हाथ की पुस्तक यथा-स्थान रखते हुए उन्होंने बहुत प्रसन्नता के साथ कहा— अच्छा, आप लोग आ गए। बड़ी कृपा की। आइए, बैठिए!

उन दोनों ने पास पहुँच कर **शास्त्री जी** के चरण-स्पर्श किए और उनके आदेशानुसार उसी तख्त पर बैठ गए।

शास्त्री जी ने कहा— आज मैं आपको अधिक कष्ट दूँगा। यहाँ कई एक रोगी हैं। आस-पास के सब घर हमी लोगों के हैं। सभी रोगियों का देखना पड़ेगा। दवा भी करनी पड़ेगी, परन्तु बदले में केवल आशीर्वाद ही मिलेगा।

शशिनाथ ने हाथ जोड़कर कहा— आप लोगों के आशीर्वाद ही का मैं भूखा हूँ। मैं अपनी शक्ति भर सभी रोगियों की सेवा करूँगा। चलिए, कहाँ हैं रोगी?

शास्त्री जी धीरे से बोले— आपको कुछ देर यहाँ ठहरना पड़ेगा। अभी दो एक आदमी काम पर से लौटे नहीं हैं। वे आते ही होंगे, तब तक आपको यहाँ रुकना पड़ेगा।

बड़े ने कहा— परन्तु **शास्त्री जी,** मुझे तो बाजार में काम है। अधिक देर तक यहाँ ठहर नहीं सकता।

शास्त्री जी बोले— यदि ऐसा है तो आप जाएँ, अपना काम करें। मैं **वैद्य जी** को बड़े आराम के साथ आपके घर पहुँचा दूँगा, आप निश्चिन्त रहें।

शशिनाथ ने कहा— हाँ, हाँ, आप जाइए। यहाँ के काम से छुट्टी पाने पर मैं किसी-न-किसी के साथ घर आ जाऊँगा।

'तो मैं जाता हूँ।'

यह कहकर और **शास्त्री जी** के पैर छूकर **बड़े** वहाँ से चले गए।

बड़े के चले जाने पर **शास्त्री जी शशिनाथ** से बातें करने लगे। उन्होंने धीरे-धीरे **शशिनाथ** का सारा परिचय प्राप्त कर लिया। विद्वान् तो थे ही, बड़े व्यवहार-कुशल भी थे। **शशिनाथ** भी काफी अनुभवी और व्यवहार-कुशल था, तथापि वह साधक भी था, इससे **शास्त्री जी** ने जो-जो बात उससे पूछी, वह सब ज्यों-की-त्यों उसने बता दी। **शास्त्री जी** जान गए कि वह कितना पढ़ा है और क्या-क्या है। उसका परिचय पाकर **शास्त्री जी** की उस पर तनिक भी श्रद्धा नहीं हुई। वे एक तो विद्वान् पुरुष थे, दूसरे शहर के निवासी थे, परन्तु **सेठ जी** की बीमारी में **शशिनाथ** ने जो चमत्कार किया था, उससे वे परिचित थे। अतएव उन्होंने अपने मन में कहा कि 'क्या हर्ज है, दो एक दिन दवा कर लेने में अपनी क्या हानि है।' यह सोचकर **शास्त्री जी** बड़े मजे के साथ **शशिनाथ** से बातचीत करते रहे। जब उन्हें मालूम हुआ कि वे लोग आ गए हैं, तब उन्होंने **शशिनाथ** से कहा— तो क्या आप रोगियों को देखना चाहते हैं? क्या यह समय ठीक होगा? अभी तो कदाचित् दो का ही समय होगा।

शशिनाथ ने बड़ी विनम्रता के साथ कहा— **शास्त्री जी,** मैं तो आपको बता चुका हूँ कि मैं वैद्य नहीं हूँ। साँझ-सबेरे का विचार तो वैद्य लोग ही करते हैं।

शास्त्री जी कुछ झेंप-सा गए, परन्तु तुरन्त सँभलकर बोले— आप भले ही अपने को वैद्य न कहें, परन्तु हमारे **सेठ जी** को निरोग करके आपने इस शहर के सभी वैद्यों और डाक्टरों को हरा दिया है। वैद्य क्या, मैं तो आपको धन्वन्तरि समझता हूँ।

शशिनाथ ने लपक कर उनके पैर छुए। फिर हाथ जोड़कर कहा— कम-से-कम आपको तो ऐसी बात न कहनी चाहिए थी। मैं तो एक बहुत ही नगण्य प्राणी हूँ। गुरुदेव के आदेश के अनुसार मैं लोक-सेवा कर रहा हूँ। अब आज्ञा करें, यहाँ मुझे किस-किसको देखना है?

शास्त्री जी उसके इस कथन पर फिर झेंप-सा गए, परन्तु वे बहुत ही चतुर और कुशल व्यक्ति थे, अतएव उन्होंने अपने को खुद सँभाल लिया। उन्होंने कहा—आप साधक हैं। आपकी **गुरु-भक्ति**

और आपके **सेवा-भाव** को देखकर आप पर किसे श्रद्धा न होगी। अच्छा, मैं पुस्तकें सँभाल कर रख दूँ। फिर आपको लेकर चलूँ।

यह कहकर वे अपनी पुस्तकें सँभालने लगे। इतने ही में पास के घरों के दो सज्जन उनके पास आए। उन्हें देखकर **शास्त्री जी** ने उनसे कहा— आज तुम दोनों ने बड़ी देर लगा दी। **सेठ जी** के इन्हीं वैद्य जी के आने की बात मैंने तुमसे कही थी। ये बड़ी देर से बैठे हैं। चलो, चलो, मैं इनको लेकर आता हूँ।

यह कहकर वे उठे और पुस्तकों का बस्ता उठाकर अपने घर के भीतर चले गए। शीघ्र ही लौटकर उन्होंने **शशिनाथ** से कहा— आइए वैद्य जी।

शशिनाथ तैयार ही था। **शास्त्री जी** जिस ओर चले, वह भी उनके साथ हो गया। वे पास के एक घर में घुस गए। भीतर जाकर उन्होंने **शशिनाथ** से कहा— यह मेरे भतीजे का घर है। उसकी बहू बहुत दिन से बीमार है। बहुत दवाइयाँ की गईं परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ।

यह कहकर उन्होंने अपने भतीजे से कहा— वैद्य जी को भीतर ले आओ।

वह पास ही खड़ा था। उसने कहा— आइए वैद्य जी।

और वह कमरे की ओर चल पड़ा। **शशिनाथ** भी उसके साथ हो लिया। भीतर जाकर उसने रोगी को अच्छी तरह देखा-भाला। देखभाल कर वह बाहर आ गया। **शास्त्री जी** के पास आकर उसने कहा — रोगी साध्य है, परन्तु कुछ समय लगेगा, बीमारी पुरानी हो गई है?

शास्त्री जी ने पूछा— कितना समय लगेगा?

शशिनाथ ने कहा— पचीस दिन में अच्छा हो जाएगा।

शास्त्री जी ने कहा— अच्छा आइए, अब दूसरा रोगी देखिए।

यह कहकर वे घर के बाहर निकले और उसके पास के मकान में घुस गए।

वहाँ जाकर **शास्त्री जी** ने कहा— ये भी मेरे परिवार ही के हैं। इस घर का रोगी मेरा पौत्र लगता है। वह एक श्रेष्ठ **वेद-पाठी** है। इस नगर में उसके मुकाबले कोई **वेद** नहीं पढ़ सकता, परन्तु एक महीने से वह खाट पर पड़ा है। बोल नहीं पाता।

यह कहते-कहते वे उसके पास पहुँच गए।

शशिनाथ ने उसे देखा। फिर कहा— भगवती ने चाहा तो ये **पण्डित जी** तीन ही दिन में चंगे हो जाएँगे।

यह कहकर उसने अपनी जेब से एक डब्बा निकाला और उससे तीन गोलियाँ निकाल कर **शास्त्री जी** को दीं और कहा—एक गोली आज संझा समय, एक कल संझा समय और एक परसों संझा समय दीजिएगा। ऐसे ही निगल जाएँ, ऊपर से दो घूँट पानी पी लें।

शास्त्री जी ने **शशिनाथ** को और तीन रोगी दिखाए। उन सबको भी **शशिनाथ** ने देखा-भाला और सबके लिए दवा भी दी और कहा भी कि 'इन्हीं मात्राओं से सबके सब अच्छे हो जाएँगे।'

शास्त्री जी ने कहा— मेरी बहू के लिए आपने कोई भी दवा नहीं दी।

शशिनाथ ने कहा— उसके लिए दवा घर में दूँगा और क्या आज्ञा है?

शास्त्री जी ने कृतज्ञता भरे स्वर में कहा— यह थोड़ी कृपा नहीं है। हम सभी गरीब **वेद-पाठी** ब्राह्मण हैं। आपका उपकार मानेंगे। आपके कल्याण की कामना करेंगे।

शशिनाथ ने कहा— हमें बस यही चाहिए। दवा लेने कौन मेरे साथ चलेगा?

शास्त्री जी ने कहा— आइए बैठिए, जलपान कर लीजिए। संध्या का समय आ गया है।

शशिनाथ ने कहा— मैं देहात का रहनेवाला हूँ।

यह कहकर उसने हँस दिया। फिर कहा— आज्ञा दीजिए, बहुत देर हो गई है।

शास्त्री जी ने अपने भतीजे की ओर देखकर

कहा— **रामनाथ,** वैद्य जी के साथ चले जाओ, **त्रिवेदी जी** का घर जानते हो न?

रामनाथ ने कहा— हाँ, जानता हूँ।

शशिनाथ ने **शास्त्री जी** के पैर छुए और **रामनाथ** के साथ चल दिया।

गली से निकल कर **रामनाथ** जब सड़क पर पहुँचा। तब उसने **शशिनाथ** से कहा— वैद्य जी, यह तो शहर का किनारा है। यहाँ सवारी बहुत कम मिलती है। हाँ, आगे मिल जाएगी। कुछ दूर तक हम लोगों को पैदल चलना पड़ेगा।

शशिनाथ ने कहा— पण्डित जी, हम लोग पैदल ही चलेंगे। मुझे मार्ग से परिचित होना है। सवारी की कोई जरूरत नहीं।

रामनाथ ने कुछ नहीं कहा।

शशिनाथ उससे बातचीत करते हुए चलने लगा।

मार्ग में उन दोनों की तरह-तरह की बातचीत होने लगी। साँझ होते-होते **रामनाथ** ने उसे ले जाकर **बड़े** के दरवाजे पर खड़ा कर दिया। उसने कहा— वैद्य जी, आपको चलने का अच्छा अभ्यास है।

घर के भीतर घुसते हुए **शशिनाथ** ने हँसकर कहा— मैं देहात का हूँ, शहर का नहीं। आइए-आइए, भीतर चले आइए।

यह कहकर उसने कमरे का दरवाजा खोल दिया। **शशिनाथ** ने **रामनाथ** को भीतर ले जाकर बड़े आदर के साथ बैठाया। कमरे में लालटेन का प्रकाश था। **शशिनाथ** ने कहा— अँधेरा हो चला है। शीघ्र ही दवा देकर मैं आपको विदा करता हूँ।

यह कहकर उसने सन्दूक खोली और उससे दवा निकाली। एक पुड़िया में दवा बाँधकर उसने **रामनाथ** को देकर कहा— इसमें पचीस गोलियाँ हैं। रोज संध्या समय एक गोली दिया करना। गोली समूची निगलकर घूँट भर पानी पी लिया करें।

यह कहकर उसने उन्हें एक शीशी दी और कहा— इसमें तेल है। कमर के चार अंगुल ऊपर-नीचे उसे थोड़ा-सा लेकर रोज रात में मल दिया करना। भगवती ने चाहा तो आठ-दस दिन में वे अपने आप उठने बैठने लगेंगी। यह तेल भी बराबर लगता रहेगा। अच्छा, यह तो बताइए, आप सब लोग दिन में किस समय मिल सकेंगे?

रामनाथ ने कहा— हम सब लोग संध्या समय ही आपसे मिल सकेंगे। चार बजे तक हम सब लोग घर में आ जाते हैं।

शशिनाथ ने कहा— अच्छा, कुछ जल-पान ही कर लीजिए, थक गए हैं।

रामनाथ ने कहा— यह आपकी बड़ी कृपा है। मुझ दीन पर जो आपने यह दया दिखाई है, यह आपकी बहुत बड़ी कृपा है। पानी फिर कभी पियूँगा, आज क्षमा करें।

यह कहकर उसने विदा माँगी। **शशिनाथ** उसे द्वार तक पहुँचा आया। ■

'सप्तशती गीता'

'सप्तशती गीता' का प्रत्येक शब्द 'सिद्ध मन्त्र' है। 'कलि-युग' में जीवों के सब मनोरथ पूर्ण करने में यह कल्पतरु-रूप है। जो शब्द अथवा शब्द-समूह दैव-राज्य से सम्बन्ध रखते हैं और जिनका प्रभाव दैव-राज्य पर पड़ता है, वे 'मन्त्र' कहलाते हैं। 'सप्तशती गीता' कलि-युग में वैदिक मन्त्रों से भी अधिक शक्ति-शालिनी है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-फल देनेवाली 'सप्तशती'-गीता का समुज्ज्वल महत्त्व अति विलक्षण है।

धर्म-मार्ग पर

२२. सेठ जी का प्रस्ताव

सन्ध्या होने में अभी देर थी। **शशिनाथ** और **बड़े** अपने कमरे में बैठे हुए थे। **शशिनाथ** ने कहा— हमारे सभी रोगी अच्छे हो चुके हैं। केवल एक रह गया है, जिसके लिए उतनी चिन्ता नहीं है। कुछ दिनों में वह भी ठीक हो जाएगा। अतएव मैंने निश्चय किया है कि घर चला जाऊँ। **मौसिया जी** का इधर कोई पत्र भी नहीं आया है। आओ चलें, **चाचा जी** से मिलकर घर जाने की बात करें।

बड़े उसकी बात का उत्तर देना ही चाहते थे कि द्वार पर मोटर का हार्न बजा। उन्होंने झाँककर देखा, सेठ जी की मोटर थी। उन्होंने **शशिनाथ** से कहा—**चाचा जी** आए हैं। देखता हूँ कि क्या बात है।

यह कहकर वे घर के बाहर निकल गए। **शशिनाथ** भी उनके पीछे था। दोनों को आया देखकर **सेठ जी** ने कहा— आप लोगों ने कल से दर्शन नहीं दिए। कहाँ रहे? आओ, तुम दोनों को बाग की सैर करा लाऊँ।

यह कहकर उन्होंने मोटर का दरवाजा खोल दिया। **शशिनाथ** भीतर चला गया। **बड़े** ने कहा— दुकान में आज बहुत काम है। आज मैं आपके साथ नहीं चल सकूँगा।

सेठ जी ने कहा— तुम्हारी दुकान का काम कब कम रहता है! चलो, आओ-आओ। ड्राइवर के पास बैठ जाओ।

बड़े ने कुछ नहीं कहा, जाकर ड्राइवर के पास की सीट पर बैठ गए। मोटर चल दी। **सेठ जी** का बाग **गङ्गा जी** के तट पर बहुत ही सुहावना था। थोड़ी ही देर में उनकी मोटर बाग के फाटक पर जाकर खड़ी हो गई। दरबान ने फाटक खोल दिया। **सेठ जी** ने मोटर से उतर कर **शशिनाथ** और **बड़े** को साथ लिए हुए भीतर प्रवेश किया।

सेठ जी ने **शशिनाथ** से कहा—तुम तो यहाँ पहली ही बार आए हो। मुझे अवसर ही नहीं मिला कि तुम्हें यहाँ ले आता। कई दिन से सोच रहा था। कैसा बाग है? पसन्द है?

शशिनाथ ने कहा— मेरे लिए तो बिलकुल ही अनोखा है। मैं तो देहात का आदमी हूँ। शहर में कभी रहा नहीं। मैं इसके गुण-दोष कैसे जान सकता हूँ? मुझे तो यह सबका सब बहुत अच्छा लग रहा है।

सेठ जी ने हँस दिया। इधर-उधर घुमाते-दिखाते तथा जगह-जगह उसकी विशेषताएँ बताते हुए वे बाग के सिरे पर जा पहुँचे, वहाँ छोटा-सा एक बहुत ही सुन्दर बँगला बना हुआ था। बँगले में पहुँच कर जब **शशिनाथ** ने नीचे बहती हुई **कल-कल-निनादिनी जाह्नवी** के दर्शन किए, तब वह एक प्रकार से समाधिस्थ हो गया। **सेठ जी** ने जब उसका हाथ पकड़कर एक कुर्सी पर बैठाया, तभी उसे चेत हुआ।

उसने कहा— सचमुच ही आपका यह उद्यान बहुत ही मोहक है और उसमें का यह बँगला तो सोने में सुगन्ध का काम करता है। क्या ही अनुपम दृश्य यहाँ का है! मुझे खेद है कि इसके पहले मैं यहाँ के आनन्द का उपभोग नहीं कर सका।

सेठ जी ने कहा— तुम्हें छुट्टी ही कहाँ थी। तुम तो **परोपकार का यज्ञ** करने में लगे थे! अब अवकाश मिला है, इच्छा हो, कुछ दिन यहीं

विश्राम करो। यहाँ सब प्रकार का प्रबन्ध है।

शशिनाथ ने कहा—आप कहते तो ठीक हैं। सचमुच यहाँ रहने का यदि अवसर मिला, तो मेरे लिए वह सौभाग्य की बात ही होगी परन्तु मैंने तो यह निश्चय किया है कि कुछ दिन के लिए घर हो आऊँ। घर का इधर कोई हाल-चाल भी नहीं मिला है। फिर यहाँ कोई वैसा काम भी नहीं है।

शशिनाथ की बात सुनकर **सेठ जी** कुछ गम्भीर हो गए। उन्होंने धीरे से कहा— काम तो है और बहुत बड़ा काम है।

शशिनाथ ने कहा— तो आज्ञा कीजिए, वह भी कर दूँ। यदि वह समय-साध्य हो, तो एक बार घर हो आऊँ, फिर कर दूँगा।

सेठ जी ने कहा— यह सब तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है परन्तु मैं जहाँ तक जानता हूँ, तुम्हें घर जाने की अभी छुट्टी नहीं मिलेगी।

शशिनाथ ने कहा— यदि ऐसा है, तो काम ही बताइए।

सेठ जी ने कहा— काम बतानेवाला तो दूसरा ही आदमी है। उसी से पूछना।

शशिनाथ ने कहा— परन्तु आप कुछ-न-कुछ सङ्केत तो उसका दे ही सकते हैं।

सेठ जी ने कहा— तुम्हारे शिष्य **बड़े** को सब मालूम है।

यह सुनकर **शशिनाथ** ने **बड़े** की ओर देखा। **बड़े** ने कहा— हाँ, मुझे मालूम तो है परन्तु बताने का अधिकार मुझे नहीं है।

शशिनाथ चकित-सा होकर कभी **बड़े** को देखता, तो कभी **सेठ जी** को। **सेठ जी** ने प्रसन्नता के स्वर में कहा— तुम इतना चकित क्यों हो रहे हो! काम उतना टेढ़ा नहीं है। एक दिन **शास्त्री जी** आए थे—वही गुजराती **शास्त्री जी,** जिनके यहाँ तुम आजकल दवा कर रहे हो। तुम्हारी बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। तुम्हें **सिद्ध** बता रहे थे। कहते थे कि तुम एक **पीयूष-पाणि वैद्य** ही नहीं हो किन्तु **सिद्ध तान्त्रिक** भी हो। पिछली बात से तुम्हारी **चाजी जी** को बड़ी उत्सुकता हुई है और वे तुमसे कोई खास काम करवाना चाहती हैं। क्या तुम सचमुच **तान्त्रिक** हो?

शशिनाथ ने कहा— **शास्त्री जी** कुछ भी कह सकते हैं। न तो मैं **वैद्य** हूँ, न **तान्त्रिक** ही। हाँ, यह सच है कि इन दोनों विषयों की कुछ मुख्य-मुख्य बातें अवश्य जानता हूँ और इनकी जानकारी मुझे इसलिए कराई गई है कि उनके द्वारा मैं **लोक-सेवा** किया करूँ।

सेठ जी ने कहा— परन्तु **तान्त्रिकों** की तो लोक में बड़ी निन्दा है। ये लोग तो अधिकतर **पञ्च-मकारी** ही होते हैं।

शशिनाथ ने कहा— आपने जो कहा है, वह ठीक है। लोग **तान्त्रिकों** के सम्बन्ध में ऐसा ही कहते हैं परन्तु इस लांछन के अतिरिक्त उनका जो **साधना-तत्त्व** है, उसे लोग नहीं जानते।

सेठ जी ने चकित होकर कहा—वह क्या है? उनका **साधना तत्त्व** कैसा?

शशिनाथ ने कहा— यही तो असल बात है, **पञ्च-मकार** को तो उनके यहाँ गौण स्थान ही प्राप्त है। उनकी **साधना** ही उनकी अपनी एक विशेषता है।

सेठ जी ने कहा— भाई, **साधना** तो सभी लोग करते हैं। **तान्त्रिकों की साधना** में ऐसी कौन-सी विशेषता है?

शशिनाथ ने हँसते हुए कहा— दूसरे लोग किस प्रकार साधना करते हैं, इसका पता मुझे नहीं है परन्तु **तान्त्रिकों** की जो **साधना** है, उसका यत्किंचित् ज्ञान मुझे जरूर है। और वह थोड़े में इस प्रकार है—**'देवो भूत्वा देवं यजेत्'** अर्थात् **'देवता बनकर देवता की पूजा करना'** अर्थात् अपने में ही **देवत्व का भान** करना।

सेठ जी ने कहा— सो कैसे?

शशिनाथ ने कहा— यह बात मैं आपको कैसे बताऊँ परन्तु यदि आप इधर ध्यान देंगे, तो उसके समझने में आपको देरी नहीं लगेगी। यह तो आप मानते ही हैं कि **ब्रह्म** सर्वत्र व्यापक है।

हममें भी उसकी व्याप्ति है। **तान्त्रिक साधक** उसी व्याप्ति को साकार रूप देकर उसका अपने हृदय में अधिष्ठान करता है। तब उसका **यजन-पूजन** करता है। इस प्रकार वह **देवता** बनता है। फिर उसी **देव-भाव** को बाहर लाकर उसका **यजन** करता है और फिर उसे अपने में संस्थापित कर अपने में **देव-भाव की भावना** करता रहता है। इस प्रकार वह सतत प्रयत्न करता रहता है इस आशा से कि उसे अपने **इष्ट का साक्षात्कार** हो जाए। ऐसे **सतत अभ्यास** के बाद जब उसे **इष्ट का साक्षात्कार** हो जाता है, तब उसे अनायास **ब्रह्म-तत्व का साक्षात्कार** हो जाता है। **तान्त्रिक साधना** की यह सरल प्रक्रिया उसकी अपनी एक विशेषता है। गुरु-देव के मुख से ऐसा ही सुना है और उनके इस कथन पर अविचल विश्वास रखता हूँ।

सेठ जी हत-बुद्धि-सा हो गए थे। उसकी बात समाप्त होने पर वे अचकचा कर बोले— ऐसा है! यह बात तो मुझसे किसी ने कभी नहीं बताई। लोग तो उनके **पञ्च-मकारों** की ही बातें किया करते हैं। क्या वे सब झूठ कहते हैं?

शशिनाथ ने कहा— झूठ नहीं कहते हैं। **पञ्च-मकारों** का उनकी साधना में स्थान है परन्तु वह केवल इसलिए है कि साधक अविचल भाव से अपने गन्तव्य मार्ग की ओर बढ़ सके। किसी प्रकार के प्रलोभनों में न पड़े। अत्यधिक प्रलोभन की वस्तुएँ जब उसके आस-पास प्रति-क्षण विद्यमान रहेंगी, तो वह उनके प्रलोभनों में कभी नहीं पड़ सकेगा और अपने मार्ग पर बराबर बढ़ता चला जाएगा तथा अन्त में अनायास ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा। यदि प्रलोभन की वस्तु से वह अपरिचित रहेगा, तो उसके पथ-भ्रष्ट होने की बहुत सम्भावना है। इस सम्बन्ध में गुरु-जनों से मैंने ऐसा ही सुना है और उनके इस कथन को भी ठीक ही मानता हूँ।

सेठ जी ने कहा— मैं नहीं समझता था कि **तान्त्रिक साधना** का इतना गूढ़ रहस्य है। लोग व्यर्थ ही उसे बदनाम करते रहते हैं। तो क्या तुम सचमुच ही ऐसे ही **तान्त्रिक** हो? क्या तुम **प्रयोग** आदि भी करना जानते हो, जैसा कि **तान्त्रिक** लोगों के सम्बन्ध में कहा जाता है?

शशिनाथ ने कहा— इतने दिन से मैं आपके समीप रह रहा हूँ। मैं क्या हूँ, कैसा हूँ, वह सब आपको ज्ञात है। अब रहा **तान्त्रिक साधक** होना, सो मैं उसे बड़े महत्त्व की बात मानता हूँ। वह दिन सचमुच मेरे बड़े सौभाग्य का होगा, जब मैं **तान्त्रिक** बन सकूँगा। अभी तो मैं उस विषय का क, ख भी नहीं जानता। हाँ, **तान्त्रिक साधकों** की सेवा करने का सौभाग्य मुझे अवश्य मिला है और यह उसी का प्रसाद है कि मैं आप लोगों की थोड़ी बहुत सेवा कर सका हूँ।

सेठ जी गहरी निगाह से **शशिनाथ** की ओर थोड़ी देर तक देखते रहे। उन्होंने कहा— निस्सन्देह तुम एक सद्-गुरु के शिष्य हो। आज मैंने तुम्हें पहचाना है। तुम बहुत ठीक कहते हो। सचमुच तुम एक सद्-ब्राह्मण हो और अब मैंने निश्चय किया है कि तुम अपनी **तान्त्रिक साधना** का उपयुक्त व्यक्तियों में प्रचार करो। इसके लिए जो भी सहायता तुम मुझसे चाहोगे, मुझे उसके लिये सदैव प्रस्तुत पाओगे। मैं, मेरा घर, मेरा धन—सब तुम्हारे इस सत्कार्य के लिए सदा तैयार मिलेगा। मैं तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हूँ।

शशिनाथ एक क्षण तक कुछ सोचता रहा, फिर उसने कहा— **चाचा जी,** आपने जो कुछ कहा है, वह सब आपके अनुरूप है। आप समर्थ हैं। जो कुछ भी चाहें, उसे सरलता से कर सकते हैं। परन्तु आपके प्रस्तावित कार्य का भार वहन करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। न मुझमें बुद्धि-बल है, न विद्या-बल है। मैं एक नगण्य अनुभव-हीन युवक हूँ। मेरे मान की बात नहीं है। इस बात को आप स्वयं समझ सकते हैं।

सेठ जी ने हँसकर कहा— तुम कितना नगण्य हो, कितना अनुभव-हीन हो, यह सब मैं अच्छी तरह जानता हूँ। फिर तुमको बैल बनना नहीं पड़ेगा। यह सब काम तो तुम्हारा यह शिष्य

ही (**बड़े** की ओर देखकर) करेगा। तुमको तो केवल **आचार्य** का कार्य करना पड़ेगा।

शशिनाथ ने चौंक कर कहा— क्या **आचार्य** का?

सेठ जी ने तुरन्त उत्तर दिया— हाँ **आचार्य** का ही, जिसे तुम भले प्रकार कर भी चुके हो। देखो, मैं एक बनिया आदमी हूँ। तुम ब्राह्मणों के धर्म आदि के कार्यों से सदा दूर रहा हूँ, परन्तु इधर जब से तुम्हारे सम्पर्क में आया हूँ, बराबर रह-रह कर बार-बार यही मन में उठता रहता है कि अपना शेष जीवन **धर्म की सेवा** में लगाऊँ और सो भी केवल **शाक्त-धर्म** की ही सेवा में। मैं **वैष्णव** हूँ, **शाक्त** नहीं हूँ, तो भी **शाक्त-धर्म** की ही सेवा करूँगा। बताओ, तुम मेरा साथ दोगे या नहीं?

शशिनाथ अचकचा कर बोला— **चाचा जी,** आप जो भी आज्ञा देंगे, उसे अपनी पूरी शक्ति लगाकर करूँगा, परन्तु मेरा एक निवेदन है। पहले उस पर विचार कर लीजिए, तब इस मार्ग पर कदम बढ़ाइए।

सेठ जी ने कहा— मैं अगर-मगर का आदमी नहीं हूँ। क्या कहते हो? कहो।

शशिनाथ ने कहा— **शाक्त-धर्म** बाजार में रखने की वस्तु नहीं है। मैं देखता हूँ, आप इसे बाजार में रख देना चाहते हैं। यह धर्म इस देश की पावन परम्परा का सदा एक प्रकार का रहस्य ही रहा है। इस बात की ओर कदाचित् आप ध्यान नहीं दे रहे हैं।

सेठ जी ने कहा— यहाँ तुम भूलते हो। मैं तो ऐसा कोई काम करने नहीं जा रहा हूँ, जिससे तुम सहमत नहीं होगे। धर्म-कर्म आदि की बातें मैं जानता भी नहीं। मैं तो तुम्हीं लोगों को आगे रक्खूँगा। मेरा उद्देश्य तो केवल इतना ही है कि **शाक्त-धर्म** के सम्बन्ध में हिन्दू-समाज में जो भ्रान्ति फैली हुई है, उसका उन्मूलन हो जाए, साथ ही उसका वास्तविक रूप लोगों को ज्ञात हो जाए।

शशिनाथ ने कहा— आपका कथन ठीक है। आप सब कुछ कर सकते हैं, परन्तु मैं इच्छा होते हुए भी इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कर सकता। मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। इसके अतिरिक्त मुझमें वैसी क्षमता भी नहीं है। **गुरुदेव के आदेश** से मैं बँधा हुआ हूँ। आप मुझे क्षमा करें।

सेठ जी ने कहा— यदि ऐसा है, तो मैं फिर कुछ नहीं कहूँगा। हाँ, यह अवश्य कहूँगा कि आज के प्रचार के युग में तुम्हें आधुनिक साधनों को ग्रहण करना पड़ेगा। अन्यथा सफलता नहीं मिलेगी। खैर, कोई चिन्ता नहीं। मैं तुम्हारे **गुरुदेव के दर्शन** करना चाहता हूँ। आजकल वे कहाँ हैं?

शशिनाथ ने कहा— इस समय वे कहाँ हैं, इसका मुझे कोई पता नहीं है।

सेठ जी जोर से हँस पड़े। उन्होंने कहा— **शाक्त-धर्म** सचमुच ही रहस्य की वस्तु है! (घड़ी की ओर देखकर) अच्छा, अब समय हो गया है, मुझे चैम्बर की सभा में जाना है।

यह कहकर वे उठ खड़े हुए। **बड़े** और **शशिनाथ** ने भी उनका अनुसरण किया। बाग के बाहर आकर **सेठ जी** मोटर में बैठ गए। उन्होंने ड्राइवर से कहा— सीधा **बड़े** के घर चलो। वहाँ इन्हें उतार कर चैम्बर में चलेंगे।

बड़े ने कहा— नहीं, **कोठी** में उतरूँगा, **चाची जी** से मिलना है। पहले **कोठी** ही चलो।

मोटर चल दी। **सेठ जी** ने कोठी में **बड़े** और **शशिनाथ** को उतार दिया। फिर वे वहाँ से चैम्बर को चले गए। इधर **बड़े** और **शशिनाथ** कोठी के भीतर चले गए। **बड़े** को देखकर **सेठानी जी** ने हँसते हुए कहा— आओ बैठो, कहाँ से आ रहे हो? मेरा वह सामान लाए हो?

बड़े ने कहा— **चाचा जी** के साथ बाग गया था। वहीं से आ रहा हूँ। कल नहीं तैयार हो सका। आज देने को पक्का वादा किया है। ६ बजे मिलेगा। यहाँ से वहीं जाऊँगा और ले आऊँगा।

सेठानी जी ने हँसकर कहा— बाग में तो हवा ही खाते रहे होगे। अब यहाँ कुछ जल-पान कर लो, तब जाना।

यह कह कर वे उठ खड़ी हुईं और शीघ्र ही उन दोनों के लिए कुछ मिष्ठान ले आईं और वहीं पास बैठकर बड़े प्रेम के साथ खिलाया-पिलाया। जल-पान कर चुकने पर **बड़े** ने कहा— मुझे आज्ञा दीजिए। मुझे दूकान पर भी जाना है और आपका सामान भी लाना है।

यह कह कर वह उठ खड़ा हुआ। उसके साथ **शशिनाथ** भी उठने लगा। **सेठानी जी** ने कहा— **बड़े** को जाने दो, तुम बैठो। तुमसे मुझे कुछ बात-चीत करनी है।

शशिनाथ बैठ गया और आश्चर्य के साथ **सेठानी जी** के मुँह की ओर देखने लगा। **बड़े** के चले जाने पर **सेठानी जी** ने कहा— अब तो तुम्हारा यहाँ का सब काम खत्म हो गया है। मैं चाहती हूँ कि कुछ दिन के लिए तुम घर हो आओ, परन्तु शीघ्र ही तुमको फिर यहाँ आना होगा। मैं तुमसे अपना एक ख़ास काम लेना चाहती हूँ। तुम देखते थे कि इस विशाल भवन में हमी दो प्राणी हैं। हमारे बाद इसका भार कौन ग्रहण करेगा? तुम्हारे **चाचा जी** इस बात की ओर ध्यान ही नहीं देते। मैंने बहुत कुछ चाहा, परन्तु मेरी कोई नहीं चली। भगवान् की कृपा से तुम मिल गए। मुझे विश्वास है कि तुम मेरी मनो-कामना को पूर्ण करोगे। बेटा **शशिनाथ**, मेरी बात समझते हो या नहीं?

शशिनाथ ने कहा— चाची जी, खूब अच्छी तरह समझता हूँ। यही नहीं, मैंने स्वयं इस अभाव का अनुभव किया था और अब जब आपने स्वयं उसका सङ्केत किया है, तब मैं आपके समक्ष प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपनी ओर से कुछ उठा न रक्खूँगा और भगवती ने चाहा तो आपकी मनो-कामना की अवश्य पूर्ति होगी।

प्रसन्नता-भरे स्वर में **सेठानी जी** ने कहा— क्या करोगे? जो भी व्यय होगा, मैं सब दूँगी।

शशिनाथ ने कहा— पूजन करना होगा और पूजन मैं स्वयं करूँगा यहीं। आपके बाग में रह कर, बड़ी अच्छी जगह है।

सेठानी जी ने पूछा— क्या पूजा करोगे? कितने पण्डित लगेंगे? कितने दिन तक पूजन होगा, क्या खर्च पड़ेगा, आदि-आदि बातें मुझे ब्योरे के साथ बता देना। सङ्कोच न करना।

शशिनाथ ने कहा— पूजा अकेले मैं ही करूँगा। मेरी पूजा में पुष्प आदि का ही व्यय होता है। फिर **चाची जी,** मुझे आप बेटा कहती हैं, बेटे का भी तो कोई कर्तव्य अपनी माँ के प्रति है।

सेठानी जी की आँखें डबडबा आईं, परन्तु उन्होंने शीघ्र ही अपने को सँभाल लिया। अपने ओठों पर बल-पूर्वक मुस्कराहट लाते हुए कहा— मैं हार गई, तुम जीत गए बेटा। अच्छा, घर कब जाओगे?

शशिनाथ ने धीरे से कहा— जब आप आज्ञा करेंगी।

सेठानी जी ने कहा— मैंने सब ठीक कर दिया है। **पण्डित जी** ने परसों का मुहूर्त निश्चित किया है, परन्तु जल्दी ही लौटना। अच्छा, अब जाओ।

यह कह कर वे उठ खड़ी हुईं। **शशिनाथ** भी धीरे-धीरे कोठी के बाहर चला गया। जल्दी-जल्दी **शशिनाथ** घर पहुँचा। कमरे में घुसते ही उसने देखा कि **बड़े** अपनी जगह पर बैठे कुछ लिख रहे हैं। उसने बड़ी प्रसन्नता के स्वर में कहा— **बड़े,** मुझे तो **चाची जी** ने छुट्टी दे दी है। परसों गाँव चला जाऊँगा। यह तो बताओ कि किस गाड़ी से जाने से आराम के साथ घर पहुँच जाऊँगा?

बड़े ने कहा— मुझे पहले ही से मालूम है और गाड़ी से जाने की बात आप क्यों सोच रहे हैं। **चाची जी** ने तो आपके लिए मोटर का प्रबन्ध किया है।

शशिनाथ ने कहा— **चाची जी** में वात्सल्य भाव कूट-कूट कर भरा है। इन दोनों आदमियों के स्नेह-भाव ने मुझे बुरी तरह फाँस लिया है। यहाँ से जाने की इच्छा ही नहीं होती।

बड़े ने कहा— और मेरा भी तो यही हाल

है। कहने को तो फर्म का सबसे बड़ा मुनीम हूँ, परन्तु फर्म का काम करने को छुट्टी ही नहीं मिलती। अपने ऊपर जिम्मेदारी है। इसलिए जब छुट्टी मिलती है, तब अपना काम देखने-भालने लगता हूँ। कुशल तो यह है कि फर्म के सभी आदमी बड़े ईमानदार और स्वामि-भक्त हैं। इसी से उसकी उन्नति पर उन्नति ही हो रही है। मालिक तो कहने भर को मालिक हैं।

शशिनाथ ने कहा— ठीक है, परन्तु असल बात यह है कि ये दोनों ही प्राणी बड़े ही **धर्म-शील** और **उदार** हैं। भाग्य-वश उन्हें आदमी भी अच्छे मिल गए हैं।

बड़े ने कहा— और आपके रोगियों का क्या हाल होगा?

शशिनाथ ने कहा— **जगदम्बा की कृपा** से रोगी तो सभी अच्छे हो गए हैं। एक रोगी में कुछ कसर है। कल सबेरे जाकर उसे दवा दे आऊँगा। दस बारह दिन में वह भी ठीक हो जाएगा।

सन्ध्या हो गई थी। **शशिनाथ** शौच आदि से निवृत्त होकर अपनी **पूजा-पाठ** में लगा। बड़े ने अपने कागज-पत्र सम्भाले, फिर वे जल्दी-जल्दी काम से बाहर चले गए।

दूसरे दिन **शशिनाथ** जल्दी-जल्दी अपने काम-काज से छुट्टी पाकर रोगियों के देखने के लिए बाहर चला गया। वहाँ पहुँचने पर संयोग-वश **शास्त्री जी** के दर्शन हो गए। उन्होंने उसे बड़े आदर से लिया और कहा— भाई, तुम तो सचमुच पीयूष-पाणि हो, साथ ही बड़े दयावान् भी हो। हम ब्राह्मणों पर तुमने बड़ी दया की। बात की बात में तुमने सभी रोगियों को अच्छा कर दिया। हम लोग दरिद्र हैं। तुम्हारी कोई सेवा नहीं कर सकते। हाँ, हृदय से हमारा यह आशीर्वाद है कि दिन-दिन तुम्हारी कीर्ति बढ़े, सदा सुखी रहो।

शशिनाथ ने बड़ी श्रद्धा के साथ **शास्त्री जी** के चरण स्पर्श किए और हाथ जोड़ कर कहा— मैं जिस बात का भूखा हूँ, वह आज मुझे बिना माँगे ही मिल गई। मुझे आप जैसे ब्राह्मणों का आशीर्वाद ही चाहिए। मैं सब कुछ पा गया।

अब तक और लोग भी आ गए थे। **शशिनाथ** ने उनसे कहा— अब तो आप सब लोग अच्छी तरह हैं। आप लोगों से छुट्टी लेने आया हूँ। कल मैं अपने गाँव चला जाऊँगा। (एक रोगी का नाम लेकर) उनको अभी कुछ कष्ट है। वह भी दस पाँच दिन में अच्छी हो जायँगी। दवा आदि देने की कुछ जरूरत नहीं है। अब आप मुझे विदा करें, आशीर्वाद दें।

शास्त्री जी बोले— तो तुम लौटोगे कब तक?

शशिनाथ ने कहा— महीने-डेढ़-महीने के बाद फिर आ जाऊँगा। **सेठ जी** छोड़ते ही नहीं।

शास्त्री जी ने हँसते हुए कहा— वे दोनों ही बड़े गुण-ग्राही हैं। तुमको वे कभी नहीं छोड़ सकते। ऐसा सात्विक आश्रय आज-कल ब्राह्मणों को कहाँ मिलेगा!

शशिनाथ ने सबके चरण-वन्दन किए और उन लोगों से विदा होकर घर को लौट पड़ा। घर पहुँचने पर देखा कि **सेठानी जी** का नौकर मौजूद है। उसने **शशिनाथ** को आते देखकर कहा— मालकिन ने आपको बुलाया है।

शशिनाथ ने कहा— अच्छा, तुम चलो। मैं अभी थोड़ी देर में आता हूँ।

नौकर ने कहा— उन्होंने कहा था कि साथ ही लिवा लाना।

शशिनाथ ने कहा— अच्छा, चलो।

शशिनाथ जब **सेठ जी** की कोठी में पहुँचा, उसने **सेठानी जी** को कमरे में बैठा पाया। वे उसे अधिक चिन्तित देख पड़ीं।

उसने कहा— **चाची जी**, क्या आज्ञा है? आप इस तरह उदास क्यों बैठी हैं?

सेठानी जी बोलीं— बेटा, तुम **फकीरचन्द्र** को जानते हो। यह भी जानते हो कि उनके लड़के को मेरी भाँजी ब्याही है। सुना तो कल ही था कि वह दो एक दिन से बीमार है। आज सबेरे जब

उसे जाकर देखा, मेरे होश ही उड़ गए। डाक्टर-वैद्य दो दिन से हैरान हैं। कोई यही तय नहीं कर पाता कि क्या रोग है। मैंने सोचा, तुमको लाकर दिखाऊँ। चलो तो मेरे साथ।

यह कहकर वे उठकर खड़ी हो गईं और कमरे के बाहर जाने की राह ली। **शशिनाथ** भी उनके पीछे था।

बाहर आने पर उन्हें मोटर तैयार खड़ी मिली। तुरन्त ही वे दोनों मोटर पर सवार हो गए। मोटर चल दी।

थोड़ी ही देर में उनकी मोटर **सेठ फकीरचन्द्र** की हवेली के फाटक में जा घुसी और जनानी ड्योढ़ी के द्वार पर जाकर खड़ी हो गई। **सेठानी जी** जल्दी-जल्दी मोटर से उतरीं और दरवाजे से होकर हवेली के भीतर चली गईं। रोगिणी के कमरे में पहुँच कर उन्होंने देखा कि वह पूर्व-वत् अचेत-सी पड़ी हुई है। उसकी सास के पास जाकर धीरे-धीरे उन्होंने कहा— इन्हीं **वैद्य जी** ने **सेठ जी** को निरोग किया है। इनकी दवा जादू-सी लगती है। इन्हें मैं इसे दिखाना चाहती हूँ। आपकी क्या राय है?

गृह-स्वामिनी ने कहा— इसमें मेरी क्या राय पूछती हो? क्या तुम्हारी लड़की नहीं है? दो दिन से डाक्टर-वैद्यों का ताँता लगा हुआ है। अभी तक कोई कुछ नहीं कर सका।

यह कह कर उसने **शशिनाथ** की ओर मुँह किया और कहा— आइए **वैद्य जी!** देखिए। आपका तो बड़ा नाम सुना है। मेरी बहू की रक्षा कीजिए।

शशिनाथ आगे बढ़ गया। उसने रोगिणी की नाड़ी देख चुकने के बाद कहा— आप लोग चिन्ता न करें। ये सन्ध्या तक बिल्कुल अच्छी हो जाएँगी।

गृह-स्वामिनी ने चकित होकर कहा— ऐसा क्या रोग है? क्या दवा दोगे?

शशिनाथ ने धीरे से कहा— कोई रोग नहीं है, कोई दवा भी नहीं दूँगा। केवल डेढ़ घण्टे तक कुछ उपचार करूँगा। उस समय तक हम लोगों को छोड़ कर और कोई नहीं आ सकेगा, न इसकी बाहर चर्चा ही होने दी जाएगी कि हम लोग क्या कर रहे हैं।

गृह-स्वामिनी ने अचकचा कर पूछा— क्या उपचार करोगे?

शशिनाथ ने कहा— यहाँ बाहर आप आ जाएँ, तो मैं सब बता दूँ।

इस पर वे तीनों ही बाहर निकल आए। बाहर **शशिनाथ** ने कहा— डरने की कोई बात नहीं है। यह **बाधा का फेर** है। एक घण्टे में भली-चङ्गी हो जाएँगी। सुन्दर सुगन्धित फूलों के दो हार, फूल, इतर मँगवा दीजिए। इसके सिवा मेवे तथा केशर पड़ी हुई थोड़ी-सी खीर पकवा दीजिए।

गृह-स्वामिनी अवाक् सुन रही थीं। उसने धीरे से कहा— इस सबका अभी प्रबन्ध किए देती हूँ। आप दोनों ही तब तक रोगिणी के पास बैठें।

यह कह कर वह अपने कमरे की ओर चली गईं। **सेठानी जी** के साथ **शशिनाथ** रोगिणी के कमरे में चला गया।

आध घण्टे के भीतर ही **गृह-स्वामिनी** ने दो नौकरानियों के साथ रोगिणी के कमरे में प्रवेश किया। एक के हाथ में फूलों की डलिया थी, दूसरे के हाथ में खीर का पात्र। **शशिनाथ** ने उठकर डलिया और पात्र लेकर उन्हें पास रखी हुई मेज पर रख दिया। इस पर वे दोनों नौकरानियाँ वहाँ से चली गईं। उनके चले जाने पर **शशिनाथ** ने हार और फूलों से रोगिणी को सजा दिया। ऊपर से थोड़ा इतर भी छिड़क दिया। इसके बाद खीर का पात्र भी खोल कर स्टूल पर रखकर वह **मन्त्र का जप** करने लगा। उसका **जप** समाप्त भी न हो पाया था कि रोगिणी उठकर बैठ गई। वह बहुत प्रसन्न प्रतीत हो रही थी। उसने कहा— क्या बात है?

शशिनाथ ने **'जप'** बन्द कर दिया। उसने हाथ जोड़कर कहा— **दया की भिक्षा** माँग रहा हूँ।

रोगिणी ने **शशिनाथ** की ओर गहरी दृष्टि से देखा। फिर हँसकर कहा— अच्छा, तुम हो! तभी इस प्रकार मेरा सत्कार किया गया है। सुगन्ध की दमक से सारा कमरा भरा हुआ है। यह केशर पड़ी हुई खीर अलग तृप्ति दे रही है। मैं खूब प्रसन्न हुआ हूँ। मैं खूब तृप्त हुआ हूँ। मैं चला।

और वह रोगिणी गिर गई। उसे मूर्छा-सी आ गई। देखकर **दोनों सेठानियाँ** घबड़ा गईं और व्याकुल हो उठीं। **शशिनाथ** ने कहा— आप लोग चुपचाप बैठी रहें। दो ही मिनट में सब ठीक हुआ जाता है।

उसने जल्दी से अपनी जेब से एक डिबिया निकाली और उसके भीतर से एक पुड़िया निकाल कर उसका चूर्ण रोगिणी को सुंघा दिया। उसके नाक में जाते ही रोगिणी को दो छींकें आईं और वह उठकर बैठ गई। वह अब चैतन्य थी। उसने अपनी सास की ओर मुँह करके कहा— माँ जी, यह सब क्या है?

यह कह कर वह इधर-उधर देखने लगी।

शशिनाथ ने कहा— बहू-रानी, आपकी तबियत कुछ खराब हो गई थी। **देवता की पूजा** की गई है और कुछ नहीं।

आप अपना हार उतार कर इस डलिया में रख दीजिए। इस पर **बहू-रानी** ने हार और फूल उस डलिया में रख दिए। **शशिनाथ** ने डलिया उठा ली। साथ ही खीर का पात्र भी उठा लिया और फिर वह कमरे के बाहर आ गया। **गृह-स्वामिनी** भी बाहर आ गईं। उसने उनसे कहा— यह खीर एक पत्तल में रखकर छत पर रखवा दीजिएगा और उसी के पास ये हार और फूल भी। अब आपकी बहू एकदम अच्छी हो गई। अब आप मुझे आज्ञा दीजिए।

गृह-स्वामिनी ने बड़ी कृतज्ञता प्रकट की और वह **सेठानी जी** के साथ वहाँ से जल्दी-जल्दी चल पड़ा। **सेठानी जी** ने घूमकर कहा— शाम को देखने मैं फिर आऊँगी।

यह कहती हुई वह हवेली के बाहर हो गईं। बाहर उनकी मोटर खड़ी थी। मोटर पर सवार होते हुए उन्होंने कहा— **शशिनाथ,** तुम गजब के आदमी हो।

मोटर चल दी। **शशिनाथ** को उसके घर पर उतार कर वह अपनी कोठी को चली गईं।

घर के भीतर जाने पर **शशिनाथ** ने देखा कि **बड़े** बही-खाता देखने में व्यस्त हैं। वह कुछ नहीं बोला। चुपचाप जाकर अपनी जगह पर बैठ गया। थोड़ी देर के बाद जब **बड़े** ने कागज-पत्र देखना बन्द कर दिया, तब उसने कहा— अच्छा, आप आ गए! मुझे एक जरूरी काम से कचहरी जाना है। मैं भोजन नहीं करूँगा। आपका भोजन **चाचा जी** के यहाँ होगा। उनका नौकर आपको लिवा ले जाएगा। हाँ, एक बात और। **चाचा जी** ने मुझसे यह पूछने को कहा है कि आप घर के लिए कौन-कौन सी वस्तु ले जाना पसन्द करेंगे?

शशिनाथ बोला— तुमको मालूम ही है कि मैं किस प्रकृति का हूँ। तुम लोगों के सम्पर्क में आने से मैं तरह-तरह की चीजें खाकर जिह्वा-लोलुप तो हो ही गया हूँ, क्या अब धन-लोलुप भी बना डालना चाहते हो। इतना ही बहुत है। मुझ गरीब पर दया करो। मुझे किसी भी वस्तु की दरकार नहीं है।

बड़े ने हँसकर कहा—**चाचा जी** ने स्वयं यही मुझसे कहा था कि वे ऐसा ही कहेंगे। तो भी उन्होंने पूछने का आग्रह किया। हम सभी लोग आपके स्वभाव को जानते हैं परन्तु आप तो अकेले नहीं है, घर-गृहस्थी भी तो साथ है। उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान रखना तो हमारा कर्तव्य है ही।

यह कहकर वह उठ खड़ा हुआ। उसने फिर कहा—हाकिम बड़ा कड़ा है। इससे मैं कुछ जल्दी ही कचहरी जा रहा हूँ।

यह कहते हुए वह जल्दी-जल्दी वहाँ से चला गया। कुछ देर के बाद **सेठ जी** का आदमी आया। उसने **शशिनाथ** से कहा—चलिए, वहाँ आपके लिये भोजन तैयार है, मालकिन ने आपको

बुलाया है।

यह सुनकर **शशिनाथ** उठ खड़ा हुआ। घर के नौकर से कमरा आदि बन्द कर लेने को कहकर वह **सेठ जी** के नौकर के साथ हो गया। कोठी में पहुँचने पर **सेठ जी** ने उसे बड़े आदर से लिया। उन्होंने कहा— **गुलाबचन्द** के यहाँ तो तुमने बड़ा चमत्कार किया। क्या तुम **भूत-प्रेत** भी झारते हो?

शशिनाथ ने लजाते हुए कहा— नहीं **चाचा जी,** मुझे तो ऐसे कामों से घृणा है। मुझे तो वह **चाची जी** को प्रसन्न करने के लिए करना पड़ा। इसके सिवा अपने घर के लिए क्या-क्या नहीं करना पड़ता। **गुरुदेव के प्रसाद** से मैं इस तरह के काम बड़ी आसानी से कर लेता हूँ।

चाचा जी बोले— सो तो मैं जानता हूँ। तुममें सचमुच बड़ी अद्‌भुत क्षमता है। मैं यह भी कहूँगा कि अपनी **साधना** बराबर करते रहो, जिससे तुम्हारी **आत्म-शक्ति** बराबर बढ़ती रहे।

यह कहकर वे खड़े हुए। उन्होंने कहा— आओ, भीतर चलें। दोनों ही भीतर चले गए। भोजन तैयार ही था। **सेठानी जी** ने उन्हें देखकर कहा— भोजन ठण्डा हो रहा है, चलो बैठो।

दोनों ने हाथ-पैर धोए और चौके में जाकर बैठ गए। भोजन के समय **सेठानी जी** ने **शशिनाथ** की बहुत प्रशंसा की। उन्होंने **शशिनाथ** को लक्ष्य करके यह भी कहा— तुम्हें बहुत दिन घर में नहीं रहने दूँगी। बीच में जरूरत पड़ेगी, तो बुला लूँगी। आओगे न?

शशिनाथ ने हँसकर कहा— मैं तो आपकी अनुमति से जा रहा हूँ।

इस पर **सेठ** और **सेठानी** दोनों हँस पड़े। भोजन कर चुकने पर **शशिनाथ सेठ जी** के साथ बाहर के कमरे में आया। **सेठ जी** ने कहा— अभी यहीं बैठो। मैं जब दुकान जाऊँगा, तब तुम्हारे घर तुम्हें छोड़ता जाऊँगा।

वे दोनों वहाँ थोड़ी देर तक बैठकर इधर-उधर की बातें करते रहे। जब मोटर ने हार्न किया, तब वे उठ खड़े हुए और बाहर आकर मोटर पर सवार हो गए।

शशिनाथ को घर पर छोड़ते समय **सेठ जी** ने कहा— रात को भोजन करने तुम आओगे ही। उस समय तुमसे मेरी बात विशेष न हो सकेगी। मुझे केवल इतना ही कहना है कि यदि तुम्हारी भेंट **गुरुदेव** से हो जाए, तो मेरे प्रस्ताव के सम्बन्ध में उनसे अनुमति लेना न भूलना।

यह कहकर उन्होंने **शशिनाथ** से विदा ली।

रात के भोजन के बाद जब **शशिनाथ** अपने घर चलने लगा तब **सेठानी जी** ने कहा— तुम्हारी यात्रा का सारा प्रबन्ध हो गया है। ठीक चार बजे मोटर तुम्हारे घर पर पहुँच जाएगी। ठण्डे-ठण्डे में ही जाना ठीक होगा। धूप बहुत कड़ी पड़ने लगी है।

यह कहकर **सेठानी जी** ने एक मनी-बेग उसके हाथ में रखते हुए कहा— बेटा, इसमें तुम्हारे जेब-खर्च के लिए कुछ रुपया है। ज्यादा इसलिए नहीं दिया है कि तुम्हें जल्दी ही बुलाऊँगी।

यह कहकर वे हँसने लगीं, परन्तु उस हँसी में प्रसन्नता की ध्वनि नहीं थी। **शशिनाथ** ने उन दोनों को नमस्कार किया और भरी हुई आँखों से उसने विदा माँगी। फिर वह चुपचाप वहाँ से चला गया।

तान्त्रिक साधना!

ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है। हममें भी उसकी व्याप्ति है। **तान्त्रिक साधक** उसी व्याप्ति को साकार रूप देकर उसका अपने हृदय में अधिष्ठान करता है। तब उसका **यजन-पूजन** करता है। इस प्रकार वह **देवता** बनता है। फिर उसी **देव-भाव** को बाहर लाकर उसका **यजन** करता है और फिर उसे अपने में संस्थापित कर अपने में **देव-भाव की भावना** करता रहता है। इस प्रकार वह सतत प्रयत्न करता रहता है इस आशा से कि उसे अपने **इष्ट का साक्षात्कार** हो जाए। ऐसे **सतत अभ्यास** के बाद जब उसे **इष्ट का साक्षात्कार** हो जाता है, तब उसे अनायास **ब्रह्म-तत्व का साक्षात्कार** हो जाता है।

धर्म-मार्ग पर

२३. शशिनाथ की कमाई

साढ़े दस बजे के लगभग **शशिनाथ** रामपुर पहुँच गया। मोटर के द्वार पर पहुँचते ही कुतूहलवश पड़ोस के घरों के लोग बाहर निकल आए। इतने में ही **शशिनाथ** मोटर से बाहर निकला। उसे देखकर सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए। उसने सबका यथा-विधि अभिवादन किया। द्वार पर पहुँच कर **मौसिया जी** और **मौसी जी** के चरण-स्पर्श किए।

मौसी ने कहा—बेटा, पहले से अपने आने की खबर तक नहीं दी। खैर, तुम आ गए, बड़ा अच्छा किया।

शशिनाथ ने कहा— क्या करूँ, छूट ही नहीं पा रहा था। मौका पाते ही भाग खड़ा हुआ, इसी से पत्र नहीं लिख सका।

ड्राइवर ने पड़ोसियों की सहायता से दो सन्दूक उतारे और झाबा भी। यह सब भीतर पहुँचा दिए गए। इसके बाद ड्राइवर ने **शशिनाथ** से कहा— अब मैं वापस जाऊँगा। **सेठ जी** ने कहा था कि यहाँ काम है, आज ही लौट आना।

शशिनाथ ने कहा—ठीक है, भोजन करके चले जाना। जल्दी ही उसका प्रबन्ध करता हूँ।

यह कहकर वह **मौसी जी** के साथ भीतर चला गया। घर के भीतर पहुँच कर **शशिनाथ** ने **मौसी** से कहा— क्या भोजन तैयार हो रहा है? **मौसी** ने कहा— भोजन बन गया है, साग बन रहा है। आषाढ़ का पहला दिन है। भगवान् को भोग लगा कर उसे भोजन करा दो।

मौसिया जी भी आ गए थे और उन तीनों में घर की निजी बातें होने लगीं, जिनका आशय यही था कि **शशिनाथ** घर में ही रहे और साधारण ब्राह्मण की तरह शान्ति के साथ रहकर अपना जीवन बिताए। शहर का जीवन ब्राह्मणत्व के लिए अहितकर है। इस बातचीत के बाद **मौसिया जी** ने रसोईघर में जाकर भगवान् को भोग लगाया। उधर **शशिनाथ** ने ड्राइवर के भोजन की व्यवस्था चौपाल में की। जब वह खा पी चुका, तब उसे बिदा किया। उसके चले जाने पर उसने भी **मौसिया जी** के साथ भोजन किया। उनके भोजन कर चुकने पर वे दालान में चले गए। **मौसिया जी** चारपाई पर पड़ रहे और वह उनके पास जमीन पर बैठकर शहर की बात बताने लगा। इतने में उसकी **मौसी जी** भी भोजन करके आ गईं। उसने पूछा— इन सन्दूकों में क्या है?

शशिनाथ ने कहा— मैं कुछ नहीं जानता। **सेठ जी** के यहाँ से बन्द आई थीं, मैंने खोल कर नहीं देखा है। यह कह कर उसने दो कुञ्जियाँ उन्हें निकाल कर दे दीं।

मौसी ने जल्दी-जल्दी सन्दूकें खोल डालीं। दोनों में ही कपड़े और आभूषण थे। सभी में पुरजे लगे हुए थे, कौन किसके लिए है। नोटों का एक बण्डल भी था। **मौसिया जी** और उनकी पत्नी दोनों ही उस सामान को देखकर हक्के-बक्के रह गए। देर तक उनके मुँह से आवाज तक न निकली। अन्त में **मौसिया जी** ने कहा— बेटा **शशिनाथ,** हम लोग तो गरीब ब्राह्मण हैं। हम इन बहुमूल्य वस्तुओं का कैसे उपयोग कर सकते है। यदि उपयोग करेंगे और कोई देखेगा, तो लोग जलेंगे। यही नहीं, चोर डाकू अलग अपनी ताक में रहेंगे कि कब मौका मिले और उड़ा ले जाएँ। मुझे तो डर लग रहा है।

शशिनाथ ने कहा—पिता जी, मैं कब कहता हूँ कि इनका प्रदर्शन किया जाए। भगवान् की कृपा से प्राप्त हुआ है, वही इनकी रक्षा भी करेंगे। रहे हम लोग, सो जैसे रहते हैं वैसे ही रहेंगे। आप चिन्ता न करें। हम सबका रक्षक परमेश्वर है। जो राह चलाएगा, वही चलेंगे।

मौसी बोली— बेटा, ये तो सठिया गए हैं। जन्म

भर सूखी रोटियों में ही रक्खा। अब तेरी कमाई में जब ये सुख के दिन आए हैं, तब भी ये चाहते हैं कि हम लोग उसी तरह मरते खपते रहें। मैं तो इन सबका उपयोग करूँगी। जिसको जलना हो, जले। यह कहते हुए उसने झाबा खोल डाला। उसमें अच्छे ढङ्ग से सजाए हुए फल चुने हुए थे, जिनको उसने एक-एक करके अलग किया। सबसे नीचे एक पिटारी निकाली, जिसमें मिठाई भरी हुई थी।

गृह-स्वामिनी ने **बहू** को पुकारा— **बहू,** यहाँ तो आ। यह सब सामान उठा कर कोठरी में रख आ। मुझसे अकेले नहीं उठेगा। तुरन्त ही **बहू** आ गई और उन दोनों ने वह सामान कोठरी में पहुँचा दिया।

अब **शशिनाथ** ने अपना मनीबेग निकाल कर **मौसिया जी** के हाथ में रख दिया और कहा कि **सेठानी जी** ने चलते समय मुझे यह दिया था।

मौसिया जी ने पूछा— इसमें क्या है, इसे खोलो। **शशिनाथ** ने उसे खोला। उसके भीतर के नोट निकाल कर उन्हें गिने। उसने कहा— दस-दस के बीस नोट हैं।

मौसिया जी बोले— घर के लिए **सेठ जी** ने अलग रुपया भेज दिया है। ये तुम्हारे निजी खर्च के लिए हैं। इन्हें अपने पास ही रक्खो।

उन्हें आलस्य में देखकर **शशिनाथ** दरवाजे चला गया। वहाँ चारपाई पर पड़कर वह भी आराम करने लगा।

वैद्य जी जब सोकर उठे, तब उन्होंने पानी माँगा। **गृहिणी** ने आकर पानी दिया। उसे देखकर पहले तो वे पहचान न सके। फिर मधुर हँसी हँसते हुए उन्होंने कहा— अच्छा, तुमने सगुन कर ही लिया। इस वेष-भूषा में तुम नव-वधू सी लगती हो। परन्तु तुम्हें सबसे पहले **बहू** को पहनाना चाहिए था।

पत्नी ने **बहू** से पुकार कर कहा— आकर अपने ससुर के पैर क्यों नही छूती!

लजाती और सकुचाती हुई **बहू** ने धीरे-धीरे आकर **वैद्य जी** के पैरों पर अपना सिर रख दिया। उसे देखकर वे आवाक् रह गए। फिर शीघ्र ही अपने को सँभाल कर उन्होंने कहा— बेटी, तुम्हारा सौभाग्य दिन-दिन बढ़े। आज तुम वास्तव में हमारे घर की लक्ष्मी जान पड़ती हो। **सेठ** ने बहुत मूल्यवान् सामान दिया है। यह सब तुम्हारे ही सौभाग्य से मिला है। हमारा **शशी** चिरञ्जीवी हो। वह इसी तरह तुम्हें राजरानी बनाता रहे।

यह कहते-कहते उनका गला भर आया और उनकी आँखों से आनन्दाश्रु टपकने लगे।

इस बीच में **शशिनाथ** भी बाहर से घर के भीतर आया। उसकी आहट पाकर **बहू** धीरे से दालान के भीतर चली गई। **शशिनाथ मौसी** के पास आकर बड़ी प्रसन्नता के साथ बोला— माँ, यह सब तो तुम्हारी देह में बहुत अच्छा लगता है। तुम यह सब रोज पहना करो।

वैद्य जी बोले— ये सब रोज के पहनने की चीजें नहीं हैं। पर्व-त्यौहार पर ही इनका पहनना ठीक है। यह कहकर वे बाहर चले गए। **शशिनाथ मौसी** के पास बैठकर उसके आभूषणों और वस्त्रों की प्रशंसा करने लगा। **मौसी** आनन्द-सागर में डूबी हुई थीं। वह **शशी** को आशीर्वाद पर आशीर्वाद दे रही थीं।

इतने में बाहर से किसी ने **शशिनाथ** को पुकारा। वह बाहर चला गया।

वैद्य जी ने कहा— बेटा, अब तुम आ गए हो। गाँव के ये रोगी बैठे हैं। अब तुम्हीं इनको देखो-भालो।

शशिनाथ अब गाँव के रोगियों की देखभाल में लग गया। उसे पाकर रोगी भी बहुत प्रसन्न हुए। जो आए थे, उनको देख-भाल करके उनको दवा दी और जिनको घर जाकर देखना था, उनको वहाँ जाकर देख आया और दवा भी दे आया।

सन्ध्या-समय वह खेत-पात भी देख आया और बाग से आम भी लिवा लाया। उसकी मुस्तैदी को देखकर **वैद्य जी** मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए।

२४. चण्डिका जी में 'शत-चण्डी'

दूसरे दिन **शशिनाथ** ने **वैद्य जी** के पास आकर कहा— पिता जी, सेठ जी के सन्तान नहीं है। मेरी इच्छा है कि **चण्डिका जी** में जाकर इसके लिए एक **'शत-चण्डी'** करूँ। उनके दिए ये दो सौ रूपए उन्हीं के कार्य में लगा दूँ।

वैद्य जी बोले— बेटा, तुम्हारा विचार सर्वथा ब्राह्मणोचित ही है। फिर वे तुम्हारे आश्रय-दाता हैं। उनकी हित-कामना करना हम सबका **'धर्म'** है। आषाढ़ के शुक्ल पक्ष में इस **यज्ञ का समारम्भ** करना चाहिए। वहाँ मेरे एक पुराने मित्र **पण्डित वासुदेव जी** हैं। मैं तुम्हारें साथ चलूँगा और सब प्रवन्ध कर दूँगा। आज चतुर्दशी है। कल सवेरे हमें यहाँ से चल देना चाहिए। कौन बहुत दूर है!

शशिनाथ ने कहा— हमने **नन्दा सिंह** से कह रखा है। वे अपनी गाड़ी देने को तैयार हैं। **मौसी जी** भी दर्शन करने जाना चाहती हैं।

वैद्य जी ने कहा—अच्छी बात है। तब चलने की तैयारी करो। जल्दी ही चलो, ठण्डे-ठण्डे पहुँच जाएँ।

शशिनाथ गाड़ी ठीक कर आया। इधर **मौसी** ने पूजा की सब सामग्री ठीक कर ली। भोजन भी वना लिया।

सबेरे ही **वैद्य जी** सपरिवार गाड़ी पर सवार हो **'चण्डी'-क्षेत्र** के लिए चल पड़े। घर अपने विश्वास-पात्र मजदूर को सौंप दिया था। बैल तेज थे। रास्ता भी सीधा था, सात बजते-बजते वे **'क्षेत्र'** में पहुँच गए। पण्डे के घर में सामान रखकर उन सबने **गङ्गा स्नान** किया। फिर मन्दिर में जाकर **'भगवती का यजन-पूजन'** विधिवत् किया। **शशिनाथ** की **मौसी** ने **कुमारिकाओं को भोजन** भी कराया। वहाँ से वे सब पण्डे के घर लौटे आए। पूजन-भोजन से छुट्टी पाकर **वैद्य जी** ने **शशिनाथ** से कहा— चलो, अब तुम्हारा काम करें।

यह कह कर उन्होनें कपड़े पहने और **शशिनाथ** को साथ लेकर वे **पण्डित वासुदेव** के घर गए। **वासुदेव जी** अपने द्वार पर ही बैठे थे।

वैद्य जी को आया देखकर उन्होंने उन्हें बड़े आदर से आसन देकर बिठाया। कुशल-प्रश्न के बाद काम की बातचीत शुरू हुई। उन्होंने उन्हें **शशिनाथ** का परिचय दिया और यह भी बताया कि इसे मैं आपके पास इस मतलब के लिए लाया हूँ। मुझे पूरा भरोसा है कि आप इसकी **'शत-चण्डी'** सविधि करवा देने में हमारे सहायक होंगे।

वासुदेव जी बोले— **वैद्य जी,** आप हमारे पुराने मित्र हैं। मैं आपकी सेवा करने को सदैव तत्पर हूँ। परन्तु आजकल शत-चण्डियाँ दुवन्नी, चवन्नी प्रति-पाठ के हिसाब से हो रही हैं। इससे मैंने यह काम छोड़ दिया है। मैं अब शत-चण्डियों में भाग नही लेता।

वैद्य जी बोले— मुझे सब हाल मालूम है। इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ। जो **'दक्षिणा'** आप कहेंगे, वही दी जाएगी।

वासुदेव जी ने कहा— प्रति पाठ एक रुपया दक्षिणा। इसके अतिरिक्त भोजन-सामग्री तथा जल-पान के लिए भी। हवन की सामग्री अलग देनी पड़ेगी। साथ ही उसकी दक्षिणा भी। सब पण्डित यहीं ठहर कर यह **यज्ञ** करेंगे।

वैद्य जी ने प्रसन्न होकर कहा— मुझे सब स्वीकार है।

यह कह कर उन्होंने **पण्डित जी** के आगे दस-दस रुपये के दो नोट रक्खे और कहा कि— **शशिनाथ** यहीं रहेगा। पण्डितों के लिए भोजन और जल-पान का प्रबन्ध वह नित्य करेगा। अन्तिम दिन आकर मैं शेष रुपया उपस्थित करूँगा।

वासुदेव जी ने धीरे से कहा— मैं इस तरह रुपए नही लेता। फिर आपसे ! ये रुपए **शशिनाथ** ही अपने पास रक्खेंगे। आप निश्चिन्त रहें। **'शत-चण्डी'** कल से शुरू हो जाएगी। क्या आप नहीं रहेंगे?

वैद्य जी ने कहा— नहीं, यह रुपया तो आप ही अपने पास रक्खें। **शशिनाथ** यहाँ कहाँ

रक्खेगा? स्त्रियाँ भी साथ आई हैं। इसी से मैं नहीं ठहरूँगा। आपने यह भार स्वीकार कर मुझ पर बड़ी कृपा की है। **शशिनाथ** आपकी ही सेवा में रहेगा। मुझे अब आज्ञा दीजिए।

यह कहकर वे उठ खड़े हुए और उन्हें नमस्कार कर **पण्डे के घर** चले आए।

पण्डे के घर आकर चलने की तैयारी की। स्त्रियों को गाड़ी पर सवार कराकर उन्होंने **नन्दासिंह** से कहा कि— तुम धीरे-धीरे चलो। अमुक स्थान पर ठहरना। मै बाजार से होकर वहीं आ जाऊँगा।

वैद्य जी के आदेशानुसार गाड़ी चल दी और वे **शशिनाथ** को लेकर बाजार गए। उन्होंने अपने एक परिचित बनिए और हलवाई को समझा दिया कि यहाँ हमारी **'शत-चण्डी'** होगी। पण्डितों के लिए भोजन-सामग्री और मिठाई देनी होगी। **शशिनाथ** यहीं रहेगा। यह सामान तुम्हारे यहाँ से ले जाया करेगा। बाद को तुम्हारा हिसाब दे दिया जाएगा।

उन दोनों ने **वैद्य जी** की आज्ञा शिरोधार्य की। अब **वैद्य जी** गाड़ी की ओर चले। **शशिनाथ** उन्हें वहाँ तक पहुँचाने गया। जब गाड़ी चलने लगी, तब **वैद्य जी** ने कहा— बेटा, आराम से रहना। किसी तरह का कष्ट न उठाना।

शशिनाथ गाड़ी के चल देने पर **पण्डे के घर** लौट आया। वहाँ से अपने सामान लेकर **पण्डित वासुदेव** के घर चला गया। **पण्डित जी** ने उसे अपनी चौपाल ही में एक ओर अच्छी जगह में आसन लगाने को कहा, जहाँ वह आसान लगाकर आराम करने लगा।

सन्ध्या-समय शौच आदि से निवृत्त होने पर जब **शशिनाथ** लौट कर आया, तब अँधेरा हो चुका था। उसे देखकर **वासुदेव जी** ने कहा— आओ, आओ बैठो, सन्ध्या आदि से छुट्टी पा गए? तुम्हारे भोजन आदि का क्या प्रबन्ध किया जाए? पास पड़ी हुई चारपाई पर बैठते हुए **शशिनाथ** ने कहा— हाँ, सब काम से छुट्टी पा चुका हूँ। भोजन मेरे पास है। अभी कल तक चलेगा। अब बताने की कृपा कीजिए कि मुझे क्या करना होगा?

वासुदेव जी बोले— सारा भार मैंने अपने ऊपर ले लिया है। यह मेरे घर का काम है। संयोगवश आवश्यक पण्डित यहाँ पहले ही से आ गए थे। मैंने उन सबको रोक लिया है। भगवती ने चाहा तो यह **'शत-चण्डी'** बड़े उत्तम ढङ्ग से सम्पन्न होगी। इच्छा हो तो तुम भी शामिल हो जाओ।

शशिनाथ ने कहा— नहीं, मैं सेवा भर करूँगा। जब समय मिलेगा, अपनी **'पूजा-पाठ'** कर लिया करूँगा, **मौसिया जी** ने बनिया और हलवाई ठीक कर दिया है और कहा है कि अपनी आँखों देखकर पण्डितों के लिए सब सामान ठीक ढङ्ग से पहुँचाते रहना। आप बता देने की कृपा करें कि कौन-कौन सामान कितना लाना होगा।

वासुदेव जी हँस पड़े। उन्होंने कही— **वैद्य जी** पक्के आदमी हैं। मैं कल सब बता दूँगा। तुम निश्चिन्त रहो।

इतने में ही तीन-चार आदमी वहाँ और आ गए और वे सब पड़ी हुई चारपाइयों पर बैठ गए। **वासुदेव जी** ने उनका परिचय **शशिनाथ** को दिया। फिर परस्पर **'शत-चण्डी'** के सम्बन्ध में बातचीत होने लगी। किसलिए **'शत-चण्डी'** हो रही है? कैसा **सङ्कल्प** पढ़ा जायगा? किस समय कार्य आरम्भ होगा? आदि-आदि समस्त बातें निश्चित हो गईं। उनकी बातचीत से **शशिनाथ** बहुत प्रसन्न हुआ। उसने समझ लिया कि **'शत-चण्डी'** सविधि होगी।

थोड़ी देर के बाद वे पण्डित वहाँ से चले गए। **वासुदेव जी** ने कहा— अच्छा, तुम भी खाओ पियो। मैं भी खा पी आऊँ। तुम्हारे पास जल है न?

शशिनाथ ने कहा— हाँ, घड़े में काफी जल है।

इस पर **पण्डित जी** घर के भीतर चले गए।

शशिनाथ ने भी अपना भोजन निकाल कर खाया पिया। इसके बाद वह अपना बिस्तर लगाकर सोने का उपक्रम करने लगा। थोड़ी ही देर में वह गहरी नींद में हो गया।

दूसरे दिन **शशिनाथ** सोकर तड़के ही उठा। उसने देखा कि **पण्डित वासुदेव जी** अपनी चारपाई पर बैठे **राम-राम** कर रहे हैं। उसने **प्रणाम** किया और पूछा— मैं स्नान कर आऊँ?

पण्डित जी ने कहा— मैं भी चलता हूँ। अभी तुम यहाँ से परिचित नहीं हो।

यह कहकर वे उठ खड़े हुए और बिस्तरा चौपाल में रखकर **शशिनाथ** को साथ लेकर **गङ्गा जी** की ओर चले गए। वहाँ उन्होंने शौचादि से निबट कर **स्नान, सन्ध्या-वन्दन** आदि किया। लौटते समय मार्ग में **शशिनाथ** ने कहा— **पण्डित जी,** मुझे क्या-क्या करना होगा, यह सब बता देने की कृपा करें।

पण्डित जी हँसकर बोले— तुम केवल यही देखते रहना कि कहाँ क्या त्रुटि हो रही है। आज दस बजे से तुम्हारी **'शत-चण्डी'** का कार्य आरम्भ होगा।

शशिनाथ ने बड़े विनम्र स्वर में कहा— आप लोग मेरे लिए गुरु-वत् हैं। फिर त्रुटि देखने की योग्यता भी नहीं है। मैं तो सेवा करने की बात कहता हूँ।

पण्डित जी ने कहा— तुम्हें कोई भी सेवा नहीं करनी पड़ेगी। हम सब लोग **'व्रत'** में हैं। किसी प्रकार की किसी से सेवा नहीं लेते। हमारे पास दो आदमी हैं, जो पण्डितों के लिए बाजार से भोजन-सामाग्री ला देंगे और उनका चौका-बर्तन भी वही कर देंगे। फूल-पत्ती माली दे जायगा। हाँ, तुमको यह जरूर करना होगा कि उन आदमियों को ले जाकर बनिए और हलवाई से यह कहना पड़ेगा कि इनको इतना-इतना यह-यह सामान प्रतिदिन दे दिया करना। पण्डितों का भोजन सन्ध्या-समय केवल एक बार बना करेगा। क्या-क्या सामान होगा, यह मै अभी घर में बता दूँगा।

इस प्रकार बात-चीत करते हुए वे घर पहुँचे। **पण्डित जी** ने घर पहुँच कर अपनी **पूजा की सामग्री** निकाली। एक झोली से एक पुरजा निकाल कर **शशिनाथ** को दिया और कहा— यही सब चाहिए।

शशिनाथ ने उसे पढ़ा। उसने धीरे से कहा— **पण्डित जी,** यह तो बहुत साधारण सामग्री है। आटा, दाल, चावल और साग भर है ! घी भी बहुत परिमित है। जल-पान के लिए मिठाई भी आपने नहीं लिखी। दूध भी नहीं है।

पण्डित जी ने रोष भरे स्वर में कहा— तुम शहर के सेठों के पण्डित हो, मैं देहात का ब्राह्मण हूँ। बहुत बड़ा अन्तर है ! मैं अपना काम जानता हूँ। अपने यजमान का कार्य हम लोग इसी विधि से करते हैं। **'व्रत'-पूर्वक** रहते हैं। निष्ठा के साथ **यजन-पूजन** करते हैं। पूड़ी-कचौड़ी चाभकर हम लोग किसी का **यजन-पूजन** नहीं करते।

इतना कहकर उन्होंने **पूजा-सामग्री** को उठाकर कहा— अब मैं मन्दिर जाकर **'भगवती का यजन-पूजन'** करूँगा। दस बजे तक तुम भी आ जाना।

यह कहकर जल का लोटा हाथ में लिया और वे चुपचाप **मन्दिर** की ओर चले गए। **शशिनाथ** अवाक् था। उसे आज तक ऐसा निर्लोभ ब्राह्मण नहीं मिला था। वह मन-ही-मन अत्यधिक लज्जित हो रहा था। उसने अपने मन में कहा कि 'मै अपने को लगाता तो हूँ, परन्तु यह मेरी बड़ी भारी भूल है। इस संसार में अभी सच्चे ब्राह्मण हैं। मुझे यहाँ के इन ब्राह्मणों से बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है। इस सत्सङ्ग से अवश्य लाभ उठाऊँगा।' यह सोचता हुआ वह उस घर की ओर चला, जहाँ **पण्डित लोग** बैठे थे।

शशिनाथ को आया देखकर रातवाले **पण्डित** ने उनका अपने साथियों से परिचय देते हुए **शशिनाथ** को बुलाकर आदर से बैठाया। वह उनके पास बैठ गया। वहाँ केवल तीन व्यक्ति बैठे

थे। अन्य लोग सामने की दलान में बैठे **पूजा-पाठ** कर रहे थे। उसने उन **पण्डित** से कहा— यहाँ जो काम करते हैं, वे कहाँ हैं?

एक ने कहा— अभी काम से छुट्टी पाई है, जल लेने गए हैं।

उनमें परस्पर इधर-उधर की बातचीत होने लगी। थोड़ी ही देर में वे दोनों आदमी घड़ों में जल लेकर आ गए। एक **पण्डित** ने उनमें से एक से कहा— देखो **मङ्गल,** इन **शर्मा जी** के साथ बाजार चले जाओ। ये तुम्हारे सामने बनिया और हलवाई से कह देंगे। उन्हीं के यहाँ से तुम्हें सामान लाना होगा।

घड़े को यथा-स्थान रखकर **मङ्गल** ने कहा— चलिए महाराज, मैं तैयार हूँ।

शशिनाथ मङ्गल को अपने साथ लेकर बाजार गया। वहाँ उसने बनिए और हलवाई को बता दिया कि— इतना-इतना सामान सब ठीक ही देना।

उन दोनों ने कहा— आप निश्चिन्त रहें। हम लोग **पण्डित वासुदेव जी** को और **वैद्य जी** को भी अच्छी तरह जानते हैं। हम उन्हीं के आदमी हैं। आपको शिकायत करने का मौका नहीं मिलेगा।

इसके बाद वहाँ से वह अपना **पूजा का सामान** लेकर **मन्दिर** को चला गया। दस बजते-बजते सब **पण्डित** मन्दिर में आ गए। सब लोगों ने हाथ-पैर धोकर अपने-अपने आसन लगाए। इसके बाद **पण्डित वासुदेव जी** ने उनका विधान के साथ **''चण्डी-याग''** में **'वरण'** कर **'सङ्कल्प'** पढ़ा। फिर उन्होंने सब **पण्डितों** के साथ मन्दिर में जाकर **'भगवती का सविधि पूजन'** किया। फिर वहाँ से आकर वे सब अपने-अपने आसनों पर बैठकर **'सप्तशती का पाठ'** करने लगे। **शशिनाथ** उनका यह सब क्रिया-कलाप बड़े ध्यान से देख रहा था। जिस भक्ति-भाव से उन सब पण्डितों ने मिलाकर **'भगवती का पूजन'** किया था और जिस तन्मयता और उत्साह के साथ वे सब अब **'सप्तशती का पाठ'** कर रहे थे, वह उसके लिए नई बात थी। उसने कभी इस प्रकार के नैष्ठिक ब्राह्मणों को नहीं देखा था। उसे भासित हो गया कि इन लोगों का यह **'यजन-पूजन'** अवश्य ही सुफल प्रकट करेगा। वह मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। फिर आसन पर जाकर वह भी **पूजा** करने लगा।।

पाँच दिन तक यह **'शत-चण्डी'** सविधि होती रही। पाँचवें ही दिन उसका **'हवन'** भी हो गया। **वैद्य जी** तो नहीं आए, परन्तु उन्होंने **'हवन'** आदि के सम्बन्ध की आवश्यक सामग्री भेज दी थी। सन्ध्या-समय **'ब्राह्मण-भोजन'** हुआ। इस भोज की व्यवस्था करने की **शशिनाथ** को पूरी छूट थी। अतएव उसने ब्राह्मणों को जैसा सम्भव हो सका, अच्छे-से-अच्छा भोजन कराया और उन्हें उपयुक्त **'दक्षिणा'** भी दी। **'पाठ की दक्षिणा'** उन्हें अलग दी गई। सभी ब्राह्मण सन्तुष्ट और प्रसन्न हुए।

शशिनाथ की **'शत-चण्डी'** निर्विघ्नता के साथ सम्पन्न हुई। वह बहुत प्रसन्न था। दूसरे दिन जब सब पण्डित अपने-अपने घरों को चले, तब **पण्डित वासुदेव** ने **शशिनाथ** से पूछा— तुम्हारा क्या विचार है?

शशिनाथ ने कहा— मैं **अष्टमी** के बाद जाऊँगा। मेरा **'जप'** अभी पूरा नही हुआ है।

यह कहकर वह **मन्दिर** को चला गया। **'शत-चण्डी'** के फल-स्वरूप उसका बहुत से लोगों से मेल-ज़ोल हो गया था। हाँ, बस्ती के दो-चार पण्डित उससे कुछ खिंचे से रहते थे। इसका कारण यह था कि वे **'शत-चण्डी'** में लिए नहीं गए थे। यह बात वह जान भी गया था, परन्तु वह लाचार था। उसने दूसरे उपाय से उन्हें सन्तुष्ट करने का उपाय किया। सन्ध्या समय जब वह अपनी पूजा से छुट्टी पाता, तब वह बस्ती के दर्शनार्थियों की गोष्ठी में बैठता और उनसे विनम्रता के साथ बातचीत करता तथा जो लोग रोगी होते, उन्हें दवा भी देता। अपने इस प्रकार के व्यवहार से उसने बस्तीवालों को भी प्रसन्न कर

लिया था। एक वृद्ध पण्डित सन्ध्या समय दर्शनार्थ मन्दिर में आया करते थे। वे **शशिनाथ** पर विशेष कृपा करते थे। उनकी वह बड़ी आव-भगत करता और उनके पास बैठकर वह बड़ी देर तक बातचीत किया करता था। एक दिन **शशिनाथ** ने उन **पण्डित जी** से कहा— मैंने इस स्थान की बड़े-बूढ़ों से बड़ी महिमा सुनी है, परन्तु अब तो यहाँ सूनसान ही दिखाई देता है। ऐसा क्यों हुआ?

पण्डित जी बोले— जो कुछ तुमने सुना है, वह सब मैंने अपने इन्हीं आँखों से देखा है। उसकी जब याद आती है, मन मसोस कर रह जाता हूँ। आँखों से आँसू भी नहीं गिरते। ऐसा क्यों हुआ है, वह सब भी मैंने देखा है। परन्तु उन बातों की चर्चा करने की इच्छा तक नहीं होती।

शशिनाथ ने बड़ी नम्रता के साथ कहा— मुझ पर दया करके कुछ-न-कुछ अवस्था बताइए। मैं इस दरबार का अनन्य भक्त हूँ। आपका आँखों देखा हुआ हाल जानकर मेरे हृदय को बड़ी शान्ति मिलेगी।

पण्डित जी बोले— यदि ऐसा है तो सुनिए। मेरे लड़कपन में यहाँ इतनी बड़ी बस्ती भी नहीं थी। पण्डों के भी घर इतने नहीं थे। बाजार भी इतना नहीं था। पण्डितों के घर भी इने-गिने थे, परन्तु दूर-दूर से पण्डित आकर यहाँ ठहर कर **'यजन-पूजन'** किया करते थे। ये सब अधिक संख्या में आते थे। इनमें प्रायः सभी अच्छे पण्डित तो होते ही थे, साधना-परायण भी ये कम नहीं होते थे। इन्हीं में से कुछ यहाँ स्थाई रूप से बस गए। उन्होंने यहाँ रहकर कुछ ऐसे चमत्कार किए कि लोगों का यहाँ मेला-सा लगा रहने लगा। वह सब कथा बड़ी प्राञ्जल है, बड़ी रोचक है।

मैंने उन्हें अच्छी तरह देखा है। वे सब कितने दिव्य पुरुष थे, कितने पर-दुःख-कातर थे, कितने निर्लोभ थे ! वह सब कहूँ तो एक पोथी बन जाए। राव से रङ्क तक उनकी सेवा में उपस्थित होते और मैंने किसी को निराश जाते नहीं देखा। परन्तु उनके बाद उनके उत्तराधिकारियों ने बड़ा माया-जाल फैलाया और उन्होंने खूब दिल खोलकर दूसरे के धन के द्वारा मौज उड़ाई और यह उन्होंने **'शाक्त-धर्म'** के नाम पर किया। उनका एक अधमतम उदाहरण यही महाशय हैं, जिन्हें तुम भी **ब्रह्मचारी जी** कहकर आदर करते हो।

शशिनाथ ने चकित होकर कहा— आप इन **ब्रह्मचारी जी** को उनका अधमतम उदाहरण बताते हैं !

पण्डित जी ने उसी स्वर में कहा— मैंने जो कहा है, ठीक कहा है। पहले के लोगों को कोई जानता भी नहीं था कि वे **'शाक्त'** हैं कि **'वैष्णव'**। वे किसकी पूजा करते हैं तथा किस प्रकार की पूजा करते हैं, यह जानने का कोई साहस तक नहीं कर सकता था। परन्तु दूसरों का कल्याण करने की उनमें विलक्षण शक्ति थी। लोग अपने कष्टों से मुक्त होकर उन्हें महात्मा मानकर उनकी पूजा किया करते थे। उनके न रहने पर उनके तपो-बल ने अयोग्य होते हुए भी उनके उत्तराधिकारियों का अधिक समय तक साथ दिया। परन्तु बाद को असली रूप प्रकट हो गया; ताव देने पर मुलम्मे का पानी उतर गया। लोग इन्हें जान गए कि ये लोग कितने गहरे पानी में हैं। **'शाक्त-धर्म'** की आड़ में इन लोगों ने जो लीलाएँ कीं, उन्हीं का यह परिणाम हुआ है कि इस पुनीत क्षेत्र में आज **'सदाचार'** का नाम तक नहीं रह गया। एक **वासुदेव जी** हैं, सो अकेले क्या कर सकते हैं !

शशिनाथ ने धीरे से कहा— और **ब्रह्मचारी जी?**

पण्डित जी बोले— मैं उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहूँगा। तुम स्वयं उनका सत्सङ्ग कर एक ही दो दिन में जान जाओगे कि वे क्या और कैसे हैं।

यह कहकर **पण्डित जी** उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा— भई, अँधेरा हो चला है, अब घर चलूँगा।

यह कहते हुए वे लकुटिया लेकर चल पड़े।

शशिनाथ ने उन्हें प्रणाम किया। वह भी अपने स्थान को चला आया। उसे आया देखकर **वासुदेव जी** ने कहा— कहाँ रहे, आज बड़ी देर हो गई।

शशिनाथ ने कहा— **बलदेव महाराज** की बातों में पड़ गया।

वासुदेव जी बोले— वे इस बस्ती के बड़े स्वाभिमानी, ब्राह्मण हैं। **भगवती चण्डिका** के बड़े भक्त हैं। अपने ८५ वर्ष के वय में भी दोनों समय मन्दिर में दर्शनार्थ आते हैं। उनको इस क्षेत्र का पूरा इतिहास ज्ञात है। यहाँ की वर्तमान दशा को देखकर बहुत दुखी रहते हैं। यहाँ अब जुआरियों और नशेबाजों का बोलबाला है। चोरों और गुण्डों का आतङ्क छाया रहता है। दो-चार पण्डितों के घर थे, वे भयभीत होकर पड़ोस के गाँवों में जा बसे हैं। मेरे कोई नहीं है, धन भी नहीं है, इसी से यहाँ पड़ा हूँ।

शशिनाथ ने कहा— यह अवस्था तो ठीक नहीं। इस क्षेत्र का सुधार होना चाहिए। क्या आपने इस सम्बन्ध में कभी कोई विचार किया है?

वासुदेव जी बोले— इस गाँव के स्वामी बहुत कुछ कर सकते थे परन्तु वे यहाँ से बहुत दूर रहते हैं। इसके सिवा उनकी प्रवृत्ति भी इस क्षेत्र के अनुकूल नहीं है। हाँ, एक और उपाय है। यदि यहाँ एक **संस्कृत पाठशाला** खोल दी जाए, तो बहुत कुछ सुधार हो सकता है।

शशिनाथ ने कहा— आपका विचार बहुत ठीक है। यहाँ अवश्य एक पाठशाला होनी चाहिए।

यदि माई की कृपा हो गई, **पाठशाला** अवश्य खुलेगी।

थोड़ी देर तक उन दोनों में इसी प्रकार की बातचीत होती रही। भोजन का समय होने पर **पण्डित जी** घर के भीतर चले गए। इधर **शशिनाथ** भी अपने सोने की तैयारी करने लगा।

नवमी के दिन **शशिनाथ** ने **हवन** किया, **कुमारिकाओं को भोजन** कराया। इस प्रकार उसने अपना पूजन समाप्त किया। सन्ध्या समय **पण्डित वासुदेव जी** से विदा लेकर उसने अपने गाँव को प्रस्थान किया। घर पहुँचने पर **वैद्य जी** ने पूछा— कहो बेटा, तुम्हारा **यजन-पूजन** ठीक ढङ्ग से हुआ या नहीं?

शशिनाथ ने कहा— आशा से अधिक सब कुछ पूर्ण-रूप से सम्पन्न हो गया। **पण्डित वासुदेव जी** बड़े योग्य नैष्ठिक ब्राह्मण हैं।

यह कहकर वह घर के भीतर चला गया।

■

कल्याण-दायक शाक्त धर्म

'शाक्त धर्म' परम शक्तिशाली और कल्याण-दायक है। जब-जब अपार सङ्कट का समय आया, तब मनुष्यों ने क्या देवताओं ने भी **भगवती की शरण** ली। **'सप्तशती गीता'** में महा-माया के प्रति देवों की ऐसी ही स्तुतियाँ हैं। जब उन्हें और कोई सहारा नहीं मिला, तब अन्त में उन्होंने **भगवती की ही शरण** ली।

श्रीरामचन्द्र जी ने भी **रावण पर विजय पाने के लिए भगवती का सविधान अनुष्ठान** किया था। कुरु-क्षेत्र में कौरव सेना के सम्मुख जब **अर्जुन** युद्ध करने खड़े हुए, तब **श्रीकृष्णचन्द्र** ने उन्हें इन शब्दों में **दुर्गा का ध्यान** करने को कहा था—

शुचिर्भूत्वा महा-बाहो, संग्रामाभिमुखे स्थितः। पराजयाय शत्रूणां, दुर्गा-स्तोत्रमुदीरय॥

श्रीकृष्ण के आदेशानुसार तब **अर्जुन** ने **विजय-प्राप्ति के लिए श्री दुर्गा जी का एक सुन्दर स्तोत्र** पढ़ा था।

धर्म-मार्ग पर

२५. गुरु-पूर्णिमा

पूर्णिमा के दिन जब **शशिनाथ** गङ्गा-स्नान करके घर आया, तब देखा कि उसके द्वार पर **त्रिवेदी जी** की बैलगाड़ी खड़ी है। उसने गाड़ीवान से पूछा— कहो क्या बात है? कुशल तो है?

गाड़ीवान ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने जेब से निकाल कर एक चिट्ठी उसे थमा दी। चिट्ठी **बड़े त्रिवेदी जी** की थी। उसमें लिखा था— आज **'गुरु-पूर्णिमा'** है। पूजा की विशेष रूप से तैयारी की गई है। और-और लोग तो हैं ही, **बड़े** भी शहर से आ गए हैं। पूर्ण विश्वास है, आप पधारने की अवश्य कृपा करेंगे।

जब वह घर की ओर जाने लगा, तब **गाड़ीवान** ने कहा— जल्दी ही चलना ठीक होगा। वर्षा के दिन हैं। रास्ता बहुत खराब है।

शशिनाथ ने कहा— क्या भोजन करके नहीं चलोगे?

गाड़ीवान ने कहा— नहीं महाराज, दोपहर को पानी बरस सकता है।

शशिनाथ घर के भीतर चला गया। उसे देखकर **वैद्य जी** ने कहा— तुम्हें ले जाने के लिए सवारी आई है।

मौसी ने ममता भरे स्वर में कहा— लड़का पर्व भी घर में न करने पाएगा क्या? लोग अपना ही अपना मतलब देखते हैं। बेटा, गाड़ी लौटा दो।

वैद्य जी बोले— नहीं, नहीं, शिष्यों ने बुलाया है। **'गुरु-पूर्णिमा'** है। बेटे की पूजा होगी। उसका गौरव बढ़ेगा। उसे रोकना नहीं चाहिए।

शशिनाथ बोला— गाड़ीवान कहता है कि अभी चलो। वर्षा का समय है।

वैद्य जी ने कहा— वह ठीक कहता है। तुम भी जल-पान कर लो। उसको भी जल-पान करा दो। अभी अच्छा समय है, निकल जाओ।

शशिनाथ मौसा और **मौसी जी** के पैर छूकर गाड़ी पर जा बैठा, गाड़ीवान ने बैल चला दिए। बैल तेज थे ही, वे ले उड़े। धूप बहुत तेज थी, परन्तु **शशिनाथ** ने उसकी कुछ परवाह न की। दोपहर लौटते-लौटते वह **त्रिवेदी जी** के गाँव पहुँच गया। उसे आया देखकर द्वार पर बैठे लोगों ने बड़े हर्ष से उसका स्वागत किया। बूढ़े **त्रिवेदी जी** ने उसे आसन पर बैठाते हुए बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा— मुझे विश्वास था कि अवश्य आओगे। **बड़े** बड़ी तत्परता से पूजा के काम में लगे हुए हैं। तीन-चार सज्जन बाहर से भी आए हुए हैं। गाँव के अपने लोग तो हैं ही। रात में और भी कुछ लोगों के आने की आशा है परन्तु यदि तुम न आते, तो मुझे अच्छा न लगता। इसमें सन्देह नहीं कि भगवती अनुकूल हैं और आज के **महा-याग** से वह अवश्य हम लोगों के ऊपर कृपा करेंगी।

शशिनाथ ने हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से कहा— पिता जी, मैंने तो यहाँ आकर आपके दर्शन करके यही देखा है कि उसी **महिमा-मयी** का खेल यहाँ खेला जाता है। मैं तो आपका दास हूँ। आपकी सेवा करके अपने को धन्य करने आया हूँ।

यह कहकर वह वहाँ बिछी हुई चटाई पर बैठ गया। थोड़ी देर सुस्ता चुकने पर **शशिनाथ** ने हाथ-मुँह धोया। इसके बाद ही **बड़े** भी उसके पास आ गए। उन्होंने कहा— आपने तो अभी तक कुछ खाया-पिया भी नहीं है। आज्ञा दें, तो कुछ

ले आऊँ।

शशिनाथ ने हँसकर कहा— तुम तो सब जानते हो। फिर आज यहाँ **'महा-याग'** है, कैसे खाऊँगा-पिऊँगा?

इसके बाद उन दोनों में इधर-उधर की बात-चीत होती रही। **शशिनाथ** ने **'चण्डी'-क्षेत्र के यजन-पूजन** का हाल भी उनसे कहा और यह भी कहा कि 'उसका प्रसाद भी **सेठ** और **सेठानी जी** के लिए मेरे पास सुरक्षित है। मैं जानता था कि तुम **पूर्णिमा** को अवश्य आओगे और वह तुम्हारे द्वारा उन्हें भेज दूँगा।'

बड़े ने कहा— बड़ी मुश्किल से आ पाया हूँ। कल सबेरे ही मुझे यहाँ से चले जाना होगा। **चाची जी** ने तो कहा था कि आपको भी लेता आऊँ परन्तु मैंने समझा दिया था कि अभी न बुलाइए। इस **यजन-पूजन** की बात जानकर वह बहुत प्रसन्न होंगी।

२६. स्वामी जी का आमन्त्रण

दूसरे दिन जब **शशिनाथ** सोकर उठे, तब उन्होंने देखा कि उनके गाँव का एक आदमी उनके पास खड़ा है। उन्होंने उससे पूछा— **रामनाथ,** तुम कैसे आए? सब कुशल तो है?

उन्होंने कहा— हाँ भैया, सब कुशल है। यह मैं दो चिट्ठियाँ ले आया हूँ, जो कल आपके नाम से आई थीं।

पहली चिट्ठी **शशिनाथ** ने जो खोली, वह **सेठानी जी** की लिखी हुई थी। उसमें लिखा था—

बेटा शशिनाथ,

तुम जब से यहाँ से गए हो, मेरा मन तुम्हारे ही प्रति लगा हुआ है। आशा है कि **श्री जगदम्बा की कृपा** से तुम सपरिवार सुख से होगे। यह पत्र लिखने की इसलिए आवश्यकता आ पड़ी कि **चतुर्दशी** को मैंने तड़के ही यह स्वप्न देखा कि तुम अपने घर में **पूजा के आसन पर** बैठे हुए हो और एक दैवी तेज से तुम्हारा सारा शरीर प्रकाशमान है। उसके दो ही दिन बाद मुझे प्रातः-काल दूसरा स्वप्न दिखाई दिया, जिसमें मैंने **माँ दुर्गा के दर्शन** प्राप्त किए। इसके बाद प्रायः प्रति-दिन मुझे बड़े सुखद स्वप्न होते रहे हैं और सबसे विलक्षण स्वप्न तो आज प्रातः मैंने यह देखा कि मेरी गोद में एक बहुत ही सुन्दर बालक बैठा किलकारियाँ मार रहा है। उसी को देख कर मैं यह पत्र तुम्हें लिखने बैठ गई। मैं तो यह समझती थी कि तुम गाँव से वापस आकर यहाँ बगीचे में कुछ **पूजा-पाठ** करोगे, जैसा कि तुमने कहा भी था। परन्तु इन स्वप्नों से मुझे ऐसा लगता है कि गाँव में — अपने परिवार के बीच पहुँच कर भी मुझ अभागिन का ध्यान तुम्हें बना हुआ है। मैं यह नहीं चाहती कि तुम इतनी जल्दी घर छोड़कर यहाँ आओ। परन्तु मेरे इन **स्वप्नों** का समाधान यदि तुम लिखकर भेज सको, तो मुझे बड़ा सन्तोष होगा।'

पत्र पढ़कर **शशिनाथ** प्रसन्न हो उठा।

अब दूसरी चिट्ठी खोली तो देखा कि वह **स्वामी जी** की थी। उसमें उन्होंने **शशिनाथ** को बुलाया था कि 'तुम जल्दी से जल्दी आ जाओ। बड़ा जरूरी काम है।'

यह पत्र पढ़ कर **शशिनाथ** व्यग्र हो उठा। शौच आदि से निवृत्त होकर उसने अपने चलने की तैयारी की। इसी बीच में **त्रिवेदी जी** आ गए। उन्होंने **शशिनाथ** को तैयारी करते देखकर पूछा — सब कुशल तो है?

'हाँ, सब कुशल है। यह चिट्ठी **स्वामी जी** की आई है और उन्होंने मुझे बुलाया है। अब तुरन्त ही जाऊँगा।'

त्रिवेदी जी ने कहा— अच्छी बात है। **'गुरूणां आज्ञा गरीयसी।'** क्या सीधा ही जाओगे?

शशिनाथ ने कहा— नहीं, घर जाऊँगा। घर से भी आज ही चला जाऊँगा। दूर जाना है।

इतने में **बड़े** भी आ गए। **त्रिवेदी जी** उन्हें **शशिनाथ** के जाने की बात बताकर आवश्यक तैयारी करवाने चले गए। **शशिनाथ** ने **बड़े** को **सेठानी जी का पत्र** दिखाया और कहा— तुम उन्हें

'शत-चण्डी का प्रसाद' देकर समझा देना कि **माँ दुर्गा की कृपा** से उन्हें इसी वर्ष **पुत्र-रत्न** का लाभ होगा। उनके स्वप्न इसी बात के सूचक हैं। इसमें सन्देह नहीं। मैं **स्वामी जी** से अनुमति लेकर शीघ्र ही आऊँगा।

शशिनाथ की बात पूरी होते-होते सवारी भी आ गई और वह उसमें बैठकर चल पड़ा। चलने से पहले घर के सब आदमियों से उसने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी।

जब **शशिनाथ** अपने गाँव पहुँचा, तब वहाँ ठहर कर भोजन कर **मौसा जी** को सब हाल बताया। उन्होंने भी अनुमति दे दी। तब **शशिनाथ** ने अपनी लम्बी यात्रा की तैयारी की।

२७. अन्तिम आदेश

शशिनाथ ठीक समय पर **विन्ध्य-गिरि** के अपने सुपरिचित स्थान में पहुँच गया। **ठाकुर भवानीसिंह** ने उसका स्वागत किया, परन्तु उन्होंने कहा— **स्वामी जी** अभी नहीं आए हैं। आज आ जाएँगे। और सब लोग आ गए हैं।

यह कहकर **ठाकुर साहब शशिनाथ** को आश्रम में ले गए और उसके रहने की पूरी व्यवस्था कर दी। वहाँ **शशिनाथ** अपने परिचित इष्ट-मित्रों से मिला। सब लोग बड़े प्रसन्न थे। मालूम हुआ कि आज शाम तक **स्वामी जी** आ जाएँगे। सब लोग बड़े उत्सुक थे, परन्तु **शशिनाथ** कुछ चिन्तित था कि इस आमन्त्रण का वास्तव में क्या रहस्य है? उसने अपने दो एक मित्रों से पूछा भी, परन्तु कोई भी ठीक-ठीक न बता सका।

साँझ होते-होते **स्वामी जी** आ गए। **ठाकुर साहब** और अन्य सब शिष्यों ने मिलकर उनका स्वागत किया। **स्वामी जी** बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने कहा— मेरे आकस्मिक आमन्त्रण से तुम लोग चकित न होना। **माँ के विशेष आदेश** से मैंने तुम सबको बुलाया है और मैं स्वयं भी आया हूँ।

सबको आशीर्वाद देकर **स्वामी जी** अपने स्थान में चले गए। उनके विश्राम आदि की व्यवस्था **ठाकुर साहब** ने पहले ही से कर रखी थी। **ठाकुर साहब** ने कहा— आप विश्राम करें। यात्रा से आप थक गए होंगे।

स्वामी जी ने कहा— वैसी कोई थकावट नहीं है। मैं स्नान करके **पूजा** करूँगा। तब उसके बाद कल की व्यवस्था के सम्बन्ध में बातचीत करूँगा।

स्वामी जी यह कहकर चुप हो गए। **ठाकुर साहब** ने **स्वामी जी** के स्नान आदि की व्यवस्था कर दी। स्नान-पूजन से छुट्टी पाकर जब वे अपने आसन पर बैठे, तब **शिष्य-मण्डली** उनके पास आई। **स्वामी जी** ने उनसे कहा— कल **बड़ा पूजन** है। आप लोग भी उसकी तैयारी के लिए अभी से प्रबन्ध में लग जाएँ।

कुलानन्द से उन्होंने कहा— कल की व्यवस्था का सारा प्रबन्ध तुमको करना होगा। **शशिनाथ** भी तुम्हारी सहायता करेगा।

यह कहकर **स्वामी जी** ने आदेश किया— जाओ, खाओ-पियो और विश्राम करो। कल बहुत काम करना है। मैं भी मार्ग का थका हुआ हूँ। विश्राम करूँगा।

उनका आदेश पाकर सब **शिष्य-मण्डली** उठ गई। चलते समय **ठाकुर साहब** ने कहा— **स्वामी जी महाराज!** आज आप यात्रा से थके हुए हैं और जहाँ तक समझता हूँ, कुछ खाया-पिया भी न होगा।

स्वामी जी ने कहा— खाने-पीने की कोई चिन्ता नहीं है। मैं केवल थोड़ा दूध पियूँगा और आराम करूँगा।

ठाकुर साहब ने तुरन्त उसकी व्यवस्था कर दी। **स्वामी जी** दूध पीकर विश्राम करने लगे।

शशिनाथ ने **ठाकुर साहब** से कहा— **स्वामी जी** का मनो-भाव समझ में नहीं आ रहा है। क्या करना चाहते हैं, इसका स्पष्ट सङ्केत नहीं किया है। कल की **पूजा** कैसी होगी, यह भी समझ नहीं पा रहा हूँ। कुछ भी हो, हम लोग सेवा करने को तैयार हैं। जो आदेश होगा, वही किया जाएगा।

ठाकुर साहब ने कहा— कोई चिन्ता की बात नहीं है। महात्मा हैं। **पूजन-यजन** ही करेंगे। सब

व्यवस्था हो जाएगी। उन्हें आराम करने दें। आप लोग भी आराम करें।

यह कहकर **ठाकुर साहब** चले गए; परन्तु **कुलानन्द** और **शशिनाथ** दोनों ही चिन्तित थे।

कुलानन्द ने **शशिनाथ** से पूछा— कल के **पूजन** का क्या रहस्य है?

शशिनाथ ने कहा— रहस्य तो मैं नहीं जानता, परन्तु **पूजा** जो हमेशा होती है, वही होगी। **स्वामी जी** का क्या उद्देश्य है, यह **स्वामी जी** जानें। हम लोग तो सेवक हैं। जो आदेश हो, वही हम लोगों को करना चाहिए।

यह कहकर वे लोग भी अपने-अपने स्थान को चले गए।

दूसरे दिन सबेरा होने पर जब **स्वामी जी** उठे, तो देखा कि सब लोग उठ चुके हैं और स्नानादि करके उनके अभिनन्दन को द्वार पर सब खड़े हैं। **स्वामी जी** उन्हें देखकर हँस पड़े। उन्होंने कहा — **कुलानन्द,** तुम सब लोग तैयार हो?

सब लोगों ने **स्वामी जी** को प्रणाम किया और कहा— आप आज्ञा दें, हम लोग सेवा करने को तैयार हैं।

स्वामी जी ने कहा— मैं भी तैयार होकर आता हूँ। तुम सब लोग **पूजा-स्थान** में एकत्र हो।

सब लोग आज्ञानुसार **पूजा-गृह** में चले गए। **स्वामी जी** भी शीघ्र ही आ गए। आसन पर बैठ कर उन्होंने कहा— आप सब लोग अपना-अपना पूजन कर **चण्डी का पाठ** प्रारम्भ करें। दिन भर आज **चण्डी का पाठ** होगा। सबको **व्रत** से रहना पड़ेगा। मैं भी **व्रत** करूँगा और **चण्डी के पाठ** में आप लोगों के साथ शामिल रहूँगा।

आज्ञा के अनुसार सब लोग अपने **पूजन**-कार्य में लग गए। **स्वामी जी** भी आसन पर बैठकर **पूजन** करने लगे। **पूजा** होने लगी। दिन भर **सप्तशती का पाठ** होता रहा। **सन्ध्या** होने पर **पाठ का क्रम समाप्त** हुआ। अब **स्वामी जी विशेष पूजा में संलग्न** हो गए। अन्य लोग भी **स्वामी जी** के सङ्केत पर अपने-अपने **इष्ट-देवता का पूजन** करने लगे। यह **पूजन-क्रम रात तक** जारी रहा। निशा में **स्वामी जी** ने **जगदम्बा का पूजन** किया। उसे समाप्त होने पर सबको **प्रसाद** दिया। सब लोग **प्रसाद**-ग्रहण कर **स्वामी जी के आदेश** के अनुसार विश्राम करने को चले गए। **स्वामी जी** भी अपने स्थान में चले गए।

अगले दिन सबेरा होने पर जब सब लोग सोकर उठे, तब वे सब स्नान आदि कर **स्वामी जी** के स्थान पर आए, किन्तु उनका दरवाजा बन्द था। यह देखकर सब लोग चकित हुए क्योंकि **स्वामी जी** प्रायः सबसे पहले उठते थे। किसी की हिम्मत न हुई कि उनका दरवाजा खोले। जब काफी देर हो गई और **ठाकुर साहब** भी उनके दर्शनार्थ आ गए, तब उन्होंने कहा— आज **स्वामी जी** ने बड़ी देर की है! बात क्या है?

कुलानन्द ने कहा— कुछ समझ में नहीं आता। **स्वामी जी** तो प्रातः ही उठ जाया करते हैं!

ठाकुर साहब ने दरवाजे को धीरे से ठेला। वह खुला हुआ था। भीतर जाकर देखा कि कमरा खाली है। **स्वामी जी** वहाँ नहीं हैं। उन्होंने **कुलानन्द** से कहा— **स्वामी जी** तो यहाँ नहीं हैं! शौचादि के लिए कहीं बाहर तो नहीं चले गए?

कुलानन्द ने कहा— इतनी देर तो कभी लगती नहीं।

सब लोग बड़े चकित थे। **शशिनाथ** ने ध्यान से देखा कि **स्वामी जी** के आसन पर भी कुछ नहीं है। एक कागज पड़ा उनको दिखाई दिया। उसे जल्दी से उठाकर उन्होंने पढ़ना शुरू किया। उसमें लिखा था—

"ठाकुर साहब तथा प्रिय बन्धुओं,

आप सब लोगों का मैं कल्याण चाहता हूँ। कल के **पूजन** में आप सब लोगों के **कल्याण की कामना माता जी से** की गई है। आप लोगों में जो **धर्म-भाव** जाग्रत् हुआ है, वह **चिर-स्थायी** रहे, यही मेरी कामना है। जो सेवा मुझसे बनी, आप लोगों की की। मेरे **गुरु-देव** अब अत्यन्त वृद्ध हो गए हैं। उनकी सेवा करने को मैं बाध्य हूँ। अतः अब मैं अपने **गुरु-आश्रम** को जा रहा हूँ। आप लोगों का

जगदम्बा कल्याण करे। **कुलानन्द** पूर्ण विज्ञ हो गए हैं। **ठाकुर साहब** के साथ रहकर वे यहाँ का कार्य सँभालेंगे। **शशिनाथ** भी पूर्ण है। उसे एक धर्मात्मा वैश्य दम्पत्ति का सहयोग भी प्राप्त हो गया है। उनकी सहायता से वह अपने प्रदेश में रहकर **धर्म-कार्य** करेगा, परन्तु मेरी कामना है कि दोनों समूह काल में एक बार यहाँ पर एकत्र होकर **धर्म-प्रचार** के कार्य में भाग लिया करें और सब **जगदम्बा** के आधीन है। तुम सब लोगों का कल्याण हो, यह मेरी उनसे बार-बार प्रार्थना है। किसी तरह का **मत-भेद** तुम लोगों में न हो, यह मैं हृदय से चाहता हूँ। यह **कुल-धर्म— सनातन** है। इसमें **भेद-भाव** को स्थान नहीं है। **भेद-भाव** होने से **धर्म की हानि** होती है। **जगदम्बा** से मेरी प्रार्थना है कि तुम सबमें वह यह भाव दृढ़ करे। मेरी खोज मत करना। समय मिलने पर मैं कदाचित इधर फिर आऊँगा, परन्तु मैं यह निश्चय-पूर्वक नहीं कह सकता कि कब आऊँगा। तुम सब लोगों का **कल्याण** और उन्नति **जगदम्बा** करेगी, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।''

यह पत्र पढ़कर **शशिनाथ** बड़ी कठिनाई से सुना सका। सभी लोग सुनकर स्तम्भित हो गए। **ठाकुर भवानी सिंह** एकदम खड़े रहे। **कुलानन्द** ने कहा— **गुरु-देव** का इस तरह लुप्त हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उन्होंने हम लोगों को, जो कुछ उनके पास था, सब दे दिया है। हम लोगों का यही **धर्म** है कि उनके उपदेश के अनुसार हम सब लोग मिलकर उनके बताए हुए **मार्ग** का अनुसरण करें। इसी में उनकी **कृपा** हम लोगों को बराबर मिलती रहेगी। इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है। उन्होंने हम लोगों को सब कुछ दिया है। यह सच है कि उनके वियोग का दुःख सहना सबके लिए असह्य होगा, तथापि हमें **जगदम्बा से प्रार्थना** करनी चाहिए कि हमें उनका **दर्शन** मिले। उन्होंने वादा भी किया है कि वे आएँगे। वे कभी मिथ्या नहीं बोलते। इस बात को हमें याद रखना चाहिए। किसी दिन वे हमें दर्शन अवश्य देंगे, इसी धारणा को हृदय में दृढ़ रखकर हमें उनके बताए हुए **मार्ग** को अपना **धर्म-मार्ग** समझ कर दृढ़ता से पालन करना चाहिए। **जय गुरुदेव, जय गुरुदेव!**

कुलानन्द के साथ ही अन्य सभी शिष्य-गण ने **जय-जयकार** की, जिसकी प्रति-ध्वनि से वह स्थान गुञ्जित हो उठा।

यह सब घटना-क्रम स्वाभाविक ही था किन्तु **स्वामी जी** के चले जाने से सभी लोग बहुत ही निराश से प्रतीत हो रहे थे।

यह देखकर **ठाकुर भवानी सिंह** ने कहा— आप सब लोग निराश दिखाई दे रहे हैं। मै भी कम निराश नहीं हुआ हूँ, परन्तु इससे **गुरुदेव** का अब तक का सारा **उपदेश** व्यर्थ जा रहा है। उनकी **शिक्षा** तो हमेशा आशान्वित रहने की रही है। तब हम क्यों निराश हों और एक बने बनाए **सन्मार्ग** का ध्वंस करें। मुझे पूरी आशा है कि उनकी **कृपा** से हम लोग अवश्य प्रयत्न-शील रहेंगे और सफल भी होंगे। आइए, हम सब लोग उनका स्मरण करें और इस बात की प्रतिज्ञा करें कि **गुरुदेव** ने हमको जो **उपदेश** किया है, उसे हम **चिर-स्थायी** रखेंगे। इससे हमारा **कल्याण** ही होता रहेगा। यह **निराशा की भावना** कल्याणकारी नहीं है। क्यों **कुलानन्द महाराज,** आपका क्या मत है?

कुलानन्द ने कहा— मेरी बुद्धि दुःखी जरूर है, परन्तु **गुरुदेव की कृपा** से मैं निराश नहीं हूँ। मैं तो यही कहूँगा कि हम सब लोगों का यह कर्तव्य है कि हम उनकी **स्मृति** ही न बनाएँ रखें, किन्तु उनके बताए हुए **धर्म-मार्ग** की दिन-प्रतिदिन उन्नति करते रहें। यही **धर्म की दृढ़ता** है और यही उसकी सच्चाई है।

सभी लोगों ने **कुलानन्द** के कथन का समर्थन किया, परन्तु **शशिनाथ** कुछ नहीं बोला। **ठाकुर साहब** ने **शशिनाथ** की ओर देखकर कहा— आप तो कुछ नहीं कह रहे हैं!

शशिनाथ ने कहा— मैं क्या कहूँ! **गुरुदेव का उपदेश** बातें करने का नहीं रहा है और न उन्होंने बातें कभी की हैं। उनसे तो सदा **काम करने का**

आदेश भर मिला है। जाते-जाते भी वे यही कर गए हैं। मैं उसी का **चिन्तन** कर रहा हूँ, किन्तु साथ ही आप लोग जो निश्चय करेंगे, वह मुझे स्वीकार होगा।

शशिनाथ के कथन का प्रसन्न-चित्त से सबने समर्थन किया।

ठाकुर साहब ने कहा— मैं देखता हूँ कि सब लोग सहमत हैं और मैं भी सबके साथ हूँ। आप लोग जो निश्चय करेंगे, उससे मैं कभी विमुख नहीं होऊँगा। मैं यह कहने को तैयार हूँ कि जिस तरह से यहाँ का **सङ्गठन** पूर्व-वत् क्रिया-शील रहे, उस उपाय में पूर्ण रूप से सहयोग करने को आजीवन प्रयत्न-शील रहूँगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस महत्कार्य में जो भी धन व्यय होगा, वह सब अपनी ओर से दूँगा। अब रहा उसका कार्य-सञ्चालन, उसकी जिम्मेदारी **कुलानन्द जी** लें।

कुलानन्द ने कहा— मैं भी विमुख नहीं हूँ। मैं तो घर-द्वार छोड़ चुका हूँ। **स्वामी जी की सेवा का व्रत** लिया था। अब इस रूप में उसी को कार्यान्वित करूँगा। मैं सब प्रकार से तैयार हूँ।

ठाकुर साहब बोले— यदि ऐसी बात है, तो आज ही से कार्य प्रारम्भ हो। आज **गुरु-देव** के नाम पर उनका **विशिष्ट पूजन** हो और इसका सारा प्रबन्ध आप करें।

यह कहकर वे चले गए। उपस्थित सभी लोग **कुलानन्द** के साथ उठकर अपने निवास स्थान को गए।

कुलानन्द ने अपने स्थान में जाकर **शशिनाथ** को बुलाया और उससे कहा— भाई **शशिनाथ,** आज के **पूजन-विधान** का भार आप ग्रहण करें।

शशिनाथ ने कहा— मैं सेवा करने को तैयार हूँ। सब कार्य मैं करूँगा, परन्तु **आचार्य-पद** आपका है। अनुचित काम नहीं करूँगा। आप जो आज्ञा करें, वह काम करने को मैं तैयार हूँ।

कुलानन्द हँसने लगे— अच्छा भाई, जो आप कहते हैं, वही होगा।

सब लोग **पूजा** की तैयारी करने लगे। **पूजा** की सामग्री लेकर **कुलानन्द** आसन पर जा विराजे। **पूजा** होने लगी। **पाठ** करनेवाले **पाठ** करने लगे। यह क्रम जब समाप्त हुआ, तब सन्ध्या समय **ठाकुर भवानी सिंह** आए। उन्होंने **कुलानन्द** से पूछा— महाराज, **निशा-पूजन** को कितनी देर है? सामान सब तैयार है।

कुलानन्द ने कहा— सब लोग शौचादि से निवृत्त हो जाएँ। हम लोग **निशा-पूजा** में प्रवृत्त होंगे।

यथा समय **निशा-पूजा** प्रारम्भ हुई। बड़े भाव और भक्ति से पूजा होती रही। **पूजा** के अन्त में **स्वामी जी** का खूब **जय जयकार** हुआ। **विसर्जन** के बाद सब अपने-अपने स्थान को चले गए।

दूसरे दिन **कुलानन्द, शशिनाथ** तथा अन्य सहयोगी इकट्ठे हुए। उन लोगों ने आपस में बड़ी देर तक बातचीत की। सब सहमत थे। यही निश्चय रहा कि इस स्थान की जाग्रति की जाए। **स्वामी जी की प्रतिमा** आदि की स्थापना की भी चर्चा की गई, किन्तु **कुलानन्द** ने कहा— इन सब बातों के वे विपरीत थे। यहाँ तक कि हम लोग उनका **नाम-धाम** तक नहीं जानते। यही क्या कम है कि उनकी **शिक्षा-दीक्षा** को हम अमर बनाने की चेष्टा करें। यही उनकी **सबसे बड़ी यादगार** होगी।

अन्त में प्रति वर्ष **गुरु-पूर्णिमा** को **भवानी पाठशाला** में एकत्र होकर परस्पर **सत्सङ्ग** परामर्श करने का सबने निश्चय किया। तदनन्तर सब लोगों ने एक दूसरे से विदा ली। **शशिनाथ** भी अपने **कार्य-क्षेत्र** को चल पड़ा।

* * *

'चण्डी' के प्रवर्त्तक पं0 देवीदत्त शुक्ल जी का विश्वास :
'भारत' अपनी पूर्व-स्थिति को पुनः प्राप्त करेगा !
एक बार फिर 'भारत'–संसार को 'धर्म-मार्ग' का निर्देश करेगा !!

हम निराश क्यों हों ?

हिन्दुओं के आगे आज जीवन-मरण का प्रश्न है। वे सदियों से दयनीय दशा को प्राप्त हैं और उनकी विशाल संख्या का ह्रास हो गया है। जिस भारत में एक दिन सभी हिन्दू थे, उसी में आज उनके चतुर्थांश भी उनके नहीं रह गए! यह एक ऐसी बात हुई है, जो हिन्दुओं के भविष्य का स्पष्ट रूप से संकेत करती है। यह उनके ह्रास का सबसे अधिक प्रबल प्रमाण है और इसको देखकर भी वे आज भी सजग नहीं होना चाहते हैं !

जिस 'धर्म' ने हिन्दुओं को संसार में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया था, उसके अनुयायी वही हिन्दू आज वर्तमान अधो-गति को क्यों प्राप्त हैं? क्या यह विचार करने की बात नहीं है? परन्तु विचार करे कौन? यहाँ तो सबको अपनी-अपनी पड़ी है! जिस जाति के लोगों को जब केवल अपनी-ही-अपनी बात सूझने लगती है, तब उसके पराभव का सूत्र-पात होता है। ऐसी दशा में उसका महान्-से-महान् बल-शाली 'धर्म' भी उसका साथ किसी भी तरह नहीं दे पाता।

कौन नहीं जानता है कि वही वेद, पुराण आदि 'धर्म-ग्रन्थ' यहाँ हैं, गंगा-यमुना जैसी पुनीत नदियाँ, काशी-प्रयाग जैसे पवित्र तीर्थ आज भी लाखों नर-नारियों का उद्धार कर रहे हैं। और यही कौन भूल गया है कि इस देश के निवासी वशिष्ठ, कश्यप जैसे महर्षियों की सन्तानें हैं? तब आज यह दशा क्यों है? यही न कि हमारा दृष्टि-कोण बदल गया है और अब हम केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति करना चाहते हैं!

परन्तु लोगों के निजी स्वार्थों की बलि-वेदी पर –राष्ट्र के महान् स्वार्थ का हनन नहीं होने दिया जाएगा। इस महान् देश का यह प्राचीन-तम आदर्श रहा है और यह आदर्श आज भी लोगों को ज्ञात है। ज्ञात ही नहीं, उनमें से अनेक उसे अपने जीवन का ध्येय बनाए हुए हैं। उनके रहते यह विनाशकारी 'स्वार्थ-वाद' कितने दिन ठहर सकता है, यही देखना है।

कम-से-कम आशावादी तो इसी भावना से अपने विश्वास पर अटल हैं। फलतः उनका कहना है कि भारत अपनी पूर्व-स्थिति को पुनः प्राप्त करेगा और राम-कृष्ण की यह जन्म-स्थली एक बार फिर संसार को 'धर्म-मार्ग' का निर्देश करेगी। यदि यह बात न होती, तो भारत को 'रहस्य-वादी' होने का गौरव न दिया जाता। अतएव हम निराश क्यों हों ?

– देवीदत्त शुक्ल

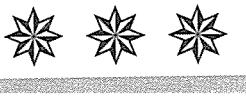

रजि॰ सं. ३२६८१/५७ ए॰डी॰ ६१

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

६२ वाँ वर्ष

धर्म-मार्ग पर

'चण्डी' के प्रवर्त्तक पूज्य शुक्ल जी की ११६ वीं जयन्ती के प्रति समर्पित

महा-समुद्र, रायपुर (छत्तीसगढ़) में 'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल ने कुछ काल तक अध्यापक-रूप में कार्य किया था। उस समय आपने पद्यों में अपना परिचय इस प्रकार लिखा था–

बैसवार देश शुभ 'बकसर' ग्राम नाम, 'चण्डी'-क्षेत्र परम पुनीत मेरो थान है।
गंग की तरंग जहँ विमल विभासि रही, पाप-पुञ्ज धोय जात लखे मात्र ज्ञान है॥
कान्यकुब्ज द्विज–वृन्द वेद-पाठी राजि रहे, परम अचारी जेहि जानत जहान है।
'देवीदत्त शुक्ल' तहँ करत निवास वेस, 'चण्डिका' की भक्ति धारे अति ही अमान है॥

शुक्ल जी ने उक्त 'आत्म-परिचय' उस समय लिखा था, जब 'चण्डी'-पत्रिका के आविर्भाव की बात तो दूर रही, उसके प्रकाशन की कल्पना तक कदाचित् ही किसी ने की होगी। भगवती चण्डी के प्रति पूज्य शुक्ल जी की निष्ठा कितनी गहरी थी, यह उक्त 'आत्म-परिचय' से स्पष्ट है। साथ ही, यह भी स्पष्ट होता है कि 'चण्डी'-पत्रिका का सूत्रपात शुक्ल जी के द्वारा श्री जगदम्बा ने पहले से निर्दिष्ट कर रक्खा था।

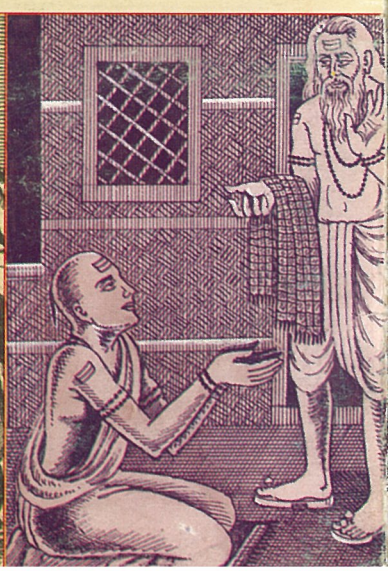

संपादक/प्रकाशक :